MAPA- 606

वित्तीय प्रशासन (भाग- 2)

FINANCIAL ADMINISTRATION

(Part- 2)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई-मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्या शाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0के0 रुस्तगी, रीडर, राजनीति विज्ञान जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन

डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर)
लोक प्रशासन विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 शालिनी चौधरी, अर्थशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	1, 2
डॉ0 गगन सिंह, वाणिज्य विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	3
डॉ0 नंदिता कौशल, लोक प्रशासन विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	4, 5, 6, 7, 8, 9
डॉ0 मनीषा माथुर, लोक प्रशासन विभाग, कनोरिया पी0 जी0 महिला महाविद्यालय, जयपुर, राजस्थान	10, 11, 12, 13

प्रकाशन वर्ष- 2022

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण- 2022

प्रकाशक निदेशालय- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
प्रकाशन से पूर्व की प्रति।

अनुक्रम

खण्ड- 1 सार्वजनिक निधियों का निवेश एंव विनिवेश	
1. वित्तीय मूल्यांकन	1 – 12
2. आर्थिक और सामाजिक मूल्यांकन	13 – 27
3. भारत में विनिवेश उद्देश्य एंव चुनौतियां	28 – 39
खण्ड- 2 विधायी, वित्तीय और कार्यकारी नियंत्रण	
4. विधायी नियंत्रण	40 – 51
5. वित्तीय समितियों की व्यवस्था	52 – 64
6. कार्यकारी नियंत्रण	65 – 74
खण्ड- 3 लेखा एवं अंकेक्षण	
7. भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली	75 – 85
8. भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली	86 – 96
9. लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की भूमिका	97 – 107
खण्ड- 4 सार्वजनिक उपक्रमों एवमं स्थानीय शासन का वित्तीय प्रशासन	
10. सार्वजनिक उपक्रमों का वित्तीय प्रशासन	108 – 117
11. सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं जबाव देही	118 – 129
12. शहरी शासन का वित्तीय प्रशासन	130 – 141
13. ग्रामीण शासन का वित्तीय प्रशासन	142 – 152

इकाई- 1 वित्तीय मूल्यांकन

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 वित्तीय मूल्यांकन
1.2.1 सार्वजनिक निवेश के उद्देश्य एवं महत्त्व
1.2.2 सार्वजनिक निवेश के प्रकार एवं निर्धारक तत्व
1.2.3 सार्वजनिक निवेश के निर्णय निर्माण की प्रक्रिया
1.2.4 परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति
1.2.5 वित्तीय मूल्यांकन की तकनीकें
1.2.5.1 कुल वर्तमान मूल्य
1.2.5.2 लागत लाभ अनुपात
1.3 सारांश
1.4 शब्दावली
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

अब तक आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि आधुनिक सरकारें विकासात्मक कार्यों पर आपार धन राशि खर्च करती है। सरकार द्वारा किया गया कुल व्यय जनता को अधिकाधिक सेवाएं एवं वस्तुएं प्रदान करने के लिए बड़ी संख्या में निवेश परियोजनाओं में वितरित होता है। इन परियोजनाओं में सड़कें, पुल, बंदरगाह, परिवहन, दूर संचार, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि सम्मिलित हैं। आधुनिक सरकारों को देश के विकास हेतु विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक गतिविधियाँ भी अपनानी पड़ती है। उदाहरण के तौर पर आधुनिक सरकारें देश के बैंकों एवं बीमा कंपनियों का स्वामित्व व नियंत्रण अपने हाथ में रखती हैं। औद्योगिक एवं उपभोक्ता वस्तुओं जैसे इस्पात, विद्युत उपकरण, दूध एवं ब्रेड का उत्पादन करती है। इन सभी गतिविधियों के लिए दिन प्रतिदिन के व्यय के अलावा दीर्घकालीन निवेश, जो पूँजीगत निवेश भी कहलाता है, की भी आवश्यकता होती है। सरकार एवं जन अभिकरणों द्वारा किया गया निवेश भी पूँजीगत निवेश कहलाता है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- वित्तीय मूल्यांकन के संबंध में जान पायेंगे।
- सार्वजनिक निवेश के प्रकार एवं निर्धारक तत्व और निर्णय निर्माण की प्रक्रिया की व्याख्या कर पायेंगे।
- परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति को समझ पायेंगे।
- वित्तीय मूल्यांकन की तकनीकों को जान पायेंगे।

1.2 वित्तीय मूल्यांकन

आईये वित्तीय मूल्यांकन को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

1.2.1 सार्वजनिक निवेश के उद्देश्य एवं महत्व

भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में सार्वजनिक निवेश का उद्देश्य अधिकतम लोगों को अधिकतम लाभ पहुँचाना होना चाहिए। निजी निवेश, लाभ अथवा निजी हित से संचालित होते हैं, सार्वजनिक निवेश सामाजिक उपयोगिता अथवा लाभ पर आधारित होता है क्योंकि प्रजातांत्रिक देश सामान्यतः निर्वाचक गुणों की ओर से बोलते एवं कार्य करते हैं। यह राज्य की समस्त जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है। व्यापक अर्थों में, हम यह कह सकते हैं कि सार्वजनिक निवेश के उद्देश्य लगभग राज्य के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के अनुरूप होते हैं। विशेष अर्थों में सार्वजनिक निवेश राष्ट्रीय सुरक्षा एवं कानून तथा व्यवस्था की आवश्यकताओं एवं जरूरतों से दिशा निर्देशित होते हैं। यह सामाजिक उपयोगिता एवं जनोपयोगिता से भी निर्देशित होते हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, ऊर्जा, परिवहन एवं दूर संचार के क्षेत्रों में किया गया सार्वजनिक निवेश सामान्यतः इस श्रेणी में आते हैं सड़कों, पुलों, बंदरगाहों, रेलों, शक्ति संयंत्रों इत्यादि में किया गया सार्वजनिक निवेश सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं के रूप में न्यायसंगत ठहराये जाते हैं, यह विकास एवं वृद्धि के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं में किया गया सार्वजनिक निवेश इसलिए भी तार्किक है क्योंकि इसमें अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है तथा इनकी प्रतिफल देने में सक्षम होने की अवधि भी लंबी होती है; बाह्य बचतों के कारण यह निजी निवेश के दृष्टिकोण से अनाकृष्ट तथा अनुप्रयुक्त हो जाते है। निजी व्यवसायिकों के पास साधन सीमित होते हैं। तथा वह उनके स्वयं के अलावा दूसरों को होने वाली बचतों अथवा प्रतिफल में रुचि नहीं दर्शाते। इसके दूसरी ओर सरकार के हाथों में उनकी कर लगाने की शक्ति एवं घाटे के वित्त के कारण अपार धन राशि होती है, वह एक समाज अथवा समुदाय के रूप में दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपना सकती है एवं अच्छे तथा बुरे प्रभावों या जो पश्चगामी और अग्रवर्ती कड़ियाँ अथवा इनके निवेशों से होने वाली बाह्य बचतें भी कहलाती हैं, का मूल्यांकन कर सकती है। आधारभूत संरचनाओं में निवेश एक अर्थव्यवस्था के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से भी आवश्यक है। ऐसे कई क्षेत्रों में निवेश का सुझाव निजी एकाधिकार को समाप्त करने तथा कुछ लोगों के हाथ में संपत्ति एवं धन का केंद्रीकरण रोकने के लिए भी दिया जाता है।

सार्वजनिक निवेश का महत्व इस तथ्य से भी जाना जा सकता है कि यह एक अर्थव्यवस्था के वर्तमान को इसके भविष्य से जोड़ता है। भारत जैसी अर्थव्यवस्था की वृद्धि की दर अधिकांश रूप से सार्वजनिक निवेश पर निर्भर करती है। यह निजी पूंजी एवं उद्यम की भूमिका को नकारने के लिए नहीं है। परंतु इस तथ्य के कारण कि सार्वजनिक निवेश निजी निवेश के विकास एवं प्रोत्साहन के लिए आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं के विकास का आधार प्रदान करता है, यह अति महत्वपूर्ण हो जाता है।

1.2.2 सार्वजनिक निवेश के प्रकार एवं निर्धारक तत्व

सार्वजनिक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार विभिन्न कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं। सार्वजनिक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार निर्धारित करने वाले कारक सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था के विकास का स्तर, अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ इत्यादि पर निर्भर करते है। राज्य की प्रकृति, उसकी विचारधारा, प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय क्षमताएं एवं सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में उसकी भूमिका भी सार्वजनिक निवेश के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत जैसे देश में जिसने मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं राष्ट्रीय विकास योजनाओं को अपनाया है, सार्वजनिक निवेश विकास कार्यनीति का एक घटक है। भारत ने यह संकल्प किया है कि वह समाज

की समाजवादी व्यवस्था को अपनायेगा तथा अर्थव्यवस्था की बागडोर लोक क्षेत्र में होगी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भारत में सार्वजनिक निवेश पिछली कई वर्षीय योजनाओं के दौरान निजी निवेश से कई अधिक गुणा बढ़ गया है। गरीबी एवं बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि भारतीय योजनाओं का मूलभूत उमूलभूत उद्देश्य है। इसे पाने के लिए सार्वजनिक निवेश का भारी उद्योगों एवं सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं में सक्रिय उपयोग किया जा रहा है। भारतीय सरकार की रोजगार संबंधी चिंता के कारण पुरानी एवं रुग्ण, कपड़ा, पटसन एवं अभियांत्रिक उद्योगों में भारी निवेश हुआ है। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं का वर्गीकरण नवीन परियोजनाओं के विस्तार, आधुनिकीकरण एवं विविधीकरण के रूप में किया जा सकता है। विचाराधीन परियोजनाओं में से कुछ परस्पर निवारक भी हो सकती है जिसका अर्थ है कि एक को स्वीकृति प्रदान करने से दूसरी परियोजनाओं की स्वीकृति प्रतिबंधित हो जाती है। पुराने संयंत्र की पूरी तरह से मरम्मत अथवा प्रतिस्थापन किया जाना परस्पर निवारक परियोजना का उदाहरण है। वैकल्पिक परियोजनाएं परस्पर निवारक परियोजनाओं का एक अन्य उदाहरण है। उदाहरण के लिए विद्युत उत्पादन के लिए तीन वैकल्पिक परियोजनाएं हो सकती हैं। ताप बिजली संयंत्र अथवा जल विद्युत संयंत्र अथवा परमाणु ऊर्जा संयंत्र। एक अन्य उदाहरण के लिये लघु सिंचाई परियोजनाओं द्वारा अतिरिक्त सिंचाई क्षमता बढ़ाने के लिए कई विकल्प हो सकते हैं, जैसे नल कूप, उत्थापन सिंचाई, गुरुत्वाकर्षी नहरें, वर्तमान कुओं का चैड़ा करना तथा सुधारना। इसके अलावा स्वतंत्र परियोजनाएं भी हो सकती हैं। किसी नये उत्पादन का प्रवर्तन तथा अन्तरा विभागीय प्रशिक्षण संस्थान का आरंभ ऐसी दो स्वतंत्र परियोजनाएं हो सकती है जो परस्पर निवारक नहीं है।

1.2.3 सार्वजनिक निवेश के निर्णय निर्माण की प्रक्रिया

सार्वजनिक निवेश कई उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। तथा इन्हें निर्देशित करने वाले विभिन्न लोक निकाय होते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि सार्वजनिक निवेश से संबंधित निर्णयों के लिए उनकी अपनी संगठनात्मक प्रक्रियाएं होती हैं। यहां पर हम आपको भारत में सार्वजनिक निवेश निर्णय निर्माण प्रक्रिया का एक व्यापक ढांचा बतलाने का प्रयत्न करेंगे। जैसा कि आपको ज्ञात होगा, भारत ने मध्यम काल योजनाओं को अपनाया है। जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के विकास के लिए वर्षीय योजनाओं को बनाया जाता है। वर्षीय योजनाओं को तैयार करना योजना आयोग का उत्तरदायित्व है, जो कि 1950 में स्थापित किया गया था। इसके कई पूर्णकालिक एवं अंशकालिक सदस्य होते हैं। तथा यह भारत के प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करता है। योजना आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता है जो कि दिन प्रतिदिन के कार्यों को देखता है। योजना आयोग प्रत्येक योजना के अंतर्गत किया जाने वाला कुल निवेश तथा लोक क्षेत्र में उसके अंश का निर्णय करता है। योजना आयोग निवेश का क्षेत्रीय एवं अन्तर राज्यीय आबंटन भी करता है। यह वित्त मंत्रालय के साथ विचार-विमर्श करके केंद्रीय वार्षिक योजना तथा राज्य सरकारों के साथ विचार विमर्श करके राज्य वार्षिक योजना को अंतिम रूप प्रदान करते हैं। योजना निवेश का क्षेत्रीय एवं अन्तरराज्यीय आवंटन विकास कार्यनीति, प्राथमिकताओं की रूपरेखा तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास के महत्व को प्रतिबिम्बित करते हैं। यह आवश्यक रूप से बृहत स्तर के सार्वजनिक निवेश निर्णय हैं जो कि संपूर्ण सीमाओं का निर्धारण करता है। यहां पर यह भी कहा जा सकता है कि बृहद स्तर पर सार्वजनिक निवेश निर्णय योजना की राजनीति तथा विकास के सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं को भी प्रतिबिम्बित करती है। चूँकि पिछले दशक में अन्तर क्षेत्रीय, अन्तर राज्कीय एवं अन्तर सामयिक संगति का प्रश्न लगातार उछाला जाता रहा है, वैज्ञानिक योजनाओं के तहत अपनाई जाने वाली विभिन्न तकनीकें जैसे कि आगत निर्गत विश्लेषण एवं अर्थव्यवस्था के बृहत प्रतिमान योजना प्रक्रिया में अपनाये गये।

सार्वजनिक निवेश के बृहत स्तर के निर्णयों के अलावा संपूर्ण आकार एवं क्षेत्रीय तथा राज्यीय आवंटन से संबंधित प्रश्न महत्वपूर्ण होते हैं। एक अन्य स्तर है सूक्ष्म स्तर अथवा परियोजना स्तर पर सार्वजनिक निवेश निर्णय। योजना

द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंदर उसके आकार, क्षेत्रीय आवंटन से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम जो कि वर्तमान व्यय एवं दीर्घकालीन परिसंपत्तियों के निर्माण दोनों को सम्मिलित करने हैं, तैयार किये जाते हैं। यह निर्णय सामान्यतः संबंधित मंत्रालयों में प्रशासनिक विभागों द्वारा एवं विशिष्ट कार्यक्रम प्राधिकारियों द्वारा योजना आयोग एवं वित्त मंत्रालय द्वारा वार्षिक बजट की निर्माण प्रक्रिया के रूप में किये जाते है। वार्षिक बजट में महत्वपूर्ण, विशाल एवं वृद्धिपरक पूंजीगत बजट होता है यहीं कारण है कि पूंजीगत निवेश निर्णय अथवा परियोजना निवेश निर्णय अति महत्वपूर्ण हो जाते है। प्रत्येक सार्वजनिक निवेश परियोजना को वार्षिक बजट में सम्मिलित करने से पूर्व उसके निर्माण एवं मूल्यांकन के लिए एक व्यवस्था की गई है। योजना आयोग के अलावा ऐसे कई सरकारी अभिकरण हैं जो कि परियोजना स्तर पर सार्वजनिक निवेश निर्णयों से संबंधित है। निवेश के आकार के संबंध में कुछ सीमाओं के अंदर, परियोजनाएं विभिन्न मंत्रालयों की व्यय वित्त समिति द्वारा स्वीकृति की जाती हैं। रोजमर्रा की एवं कम मूल्य की परियोजनाओं पर आंतरिक वित्तीय सलाहकार अथवा वित्त मंत्रालय द्वारा विचार विमर्श किया जाता है। कुल केंद्रीय निवेश का लगभग दो तिहाई भाग नित्यचर्या के वित्तीय निर्णयों के रूप में स्वीकृति किया जाता है। भारी निवेश वाली परियोजनाओं का विस्तृत परियोजना मूल्यांकन किया जाता है। सार्वजनिक निवेश परियोजनाओं का मूल्यांकन करने के लिए दो मुख्य अभिकरण हैं- योजना आयोग का परियोजना मूल्यांकन प्रभाग एवं सार्वजनिक निवेश मंडल। इन अभिकरणों को मूल्यांकन के लिए भेजे जाने वाली परियोजनाओं की वित्तीय सीमा समय-समय पर निर्धारित की जाती है।

1.2.4 परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति

यहाँ पर हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि प्रत्येक निवेश परियोजना में आवश्यक रूप से बहुगुणात्मक गतिविधियां सम्मिलित होती हैं जो कि परियोजना स्थापना के तर्काधार एवं उद्देश्यों, तकनीक का चुनाव; संयंत्र एवं मशीनों का चुनाव, उपयोग में आने वाले कच्चे माल का निर्धारण, उत्पाद का बाजार अथवा परियोजना की सेवा लागत, वित्त के साधन एवं प्रत्याशित लाभ को निर्धारित करती हैं। इसके पश्चात इस प्रकार की गतिविधियाँ जैसे कि भूमि का अधिग्रहरण, मशीनरी एवं संयंत्र वित्त का प्रबंध, सरकारी एवं अन्य वैधानिक निकासियां प्राप्त करना इत्यादि अपनाई जाती हैं। ये गतिविधियाँ परियोजना के आरंभ से शुरू हो जाती हैं जो कि परियोजना के उद्देश्यों को पूरा करती हैं।

परियोजना मूल्यांकन में आंकड़ों का संकलन, लागतों का अनुमान, लाभों एवं लाभदायकता को आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाता है। संबद्ध आंकड़े प्राथमिक साधनों जैसे कि बाजार अथवा सहायक साधनों जैसे कि सरकारी प्रकाशनों अथवा उद्योग एवं अनुसंधान निकायों के प्रकाशनों से एकत्रित किये जा सकते हैं। एक बार संबद्ध आंकड़े एकत्रित हो जायें तो परियोजना की संभावित लागत तैयार की जा सकती है जो कि भूमि एवं भवन की लागत से शुरू होकर, संयंत्र एवं मशीनरी की लागत, कर एवं शुल्क, विविध स्थायी परिसंपत्तियाँ, स्थायी कार्यकारी पूंजी की आवश्यकताएं अनुमानित संचालन पूर्ण व्यय एवं आकस्मिक व्यय का अनुमान लगाती हैं।

एक बार परियोजना की लागत का अनुमान लगा लिया जाये तो यह आवश्यक हो जाता है कि कार्यान्वयन की सूची, क्षमता उपयोगिता, कच्चे माल की लागत एवं अन्य संबंधित लागतों, संभावित विक्रय मूल्य इत्यादि से संबंधित कुछ निश्चित पूर्वानुमान लगा लिये जायें जिससे अनुमानित प्रतिलाभ एवं परियोजना की लाभदेयता का अनुमान हो जाये। अनुमानित एवं अपेक्षित प्रतिफल की तुलना परियोजना की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का आधार बनती है। अनुमानित/अपेक्षित प्रतिफल में क्या सम्मिलित किया जाता है? यह वास्तव में परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति एवं केन्द्र बिन्दु पर निर्भर करता है। परियोजना मूल्यांकन के कई आयाम हो सकते हैं जो कि इस बात पर निर्भर करते हैं कि मूल्यांकन परियोजना अधिकारी अथवा वित्त प्रदान करने वाले अधिकारियों द्वारा किया जा रहा है जबकि परियोजना अधिकारियों का संबंध सामान्यतः तकनीकी, वित्तीय एवं आर्थिक अथवा

सामाजिक मूल्यांकन से होता है। वित्त प्रदान करने वाले अधिकारी इसके अलावा प्रबंधकीय मूल्यांकन से भी दिलचस्पी लेते हैं। आइये हम परियोजना मूल्यांकन के इन आयामों की संक्षेप में व्याख्या करें।

तकनीकी मूल्यांकन तकनीकी स्थिति, यंत्रों की क्षमताओं, उत्पादन कार्यक्षमता एवं अवस्थापन प्रभावों को ध्यान में रखकर परियोजना की तकनीकी व्यवहार्यता का मूल्यांकन करती है। सरल शब्दों में यह निर्णय लेने का प्रयास किया जाता है कि क्या परियोजना प्रस्ताव में विचारित उत्पादन गतिविधि प्रस्तावित स्थान पर संभव है तथा क्या उसके द्वारा इच्छित उत्पादन स्तर अनुमानित लागत पर उपलब्ध होगा।

वित्तीय मूल्यांकन परियोजना की व्यावसायिक व्यवहार्यता को परखने का प्रयास करता है। यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि एक तर्कसंगत समयावधि में क्या परियोजना उसे वित्त प्रदान करने के लिए प्राप्त ऋण को चुका पायेगी एवं समदृष्टि निधि की पूर्ति करने वालों को समुचित लाभ प्रदान कर पायेगी। यह परियोजना की निश्चित वित्तीय लागतों एवं परियोजना को प्रायोजित करने वाले निकायों के लाभों पर केंद्रित होता है।

आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन अर्थव्यवस्था अथवा समाज का व्यापक दृष्टिकोण अपनाता है। यह परियोजना की न्यायसंगतता आर्थिक अथवा सामाजिक लागतों एवं परियोजना से समस्त अर्थव्यवस्था अथवा समाज को होने वाले लाभों की तुलना करके आंकने का प्रयत्न करता है। प्रबंधकीय मूल्यांकन को प्रोत्साहनकर्ताओं की ईमानदारी एवं परियोजना निर्माण एवं कार्यान्वयन करने वाले प्रबंधकीय दल की क्षमता को आंकने का प्रयत्न करता है। इसका लक्ष्य प्रोत्साहनकर्ताओं एवं प्रबंधकों की परियोजना को नियोजित रूप से चलाने की प्रतिबद्धता की परख करने का होता है।

आप यह जान गये होंगे कि परियोजना मूल्यांकन के चार मुख्य आयाम होते हैं, जैसे कि तकनीकी मूल्यांकन, वित्तीय मूल्यांकन, आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन एवं प्रबंधकीय मूल्यांकन। जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रबंधकीय मूल्यांकन परियोजना को वित्त प्रदान करने वाले अभिकरणों द्वारा लागू किया जाता है, यह वित्तीय संस्थाएं जैसे कि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम अथवा अंर्तराष्ट्रीय निकाय जैसे कि विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक इत्यादि भी हो सकती हैं। लोक क्षेत्र में परियोजना अधिकारी तकनीकी, वित्तीय एवं आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन पर ध्यान केंद्रीत करते हैं। आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन इकाई 2 में विवेचना का विषय होगा। अगले भाग में हम निवेश परियोजनाओं के वित्तीय मूल्यांकन की कुछ तकनीकों की व्याख्या करेंगें।

1.2.5 वित्तीय मूल्यांकन की तकनीकें

आपने यह देखा होगा कि निवेश परियोजनाओं में अपार धन राशि लगी होती है। इन परियोजनाओं से प्रतिफल भविष्य में उपलब्ध होता है जो कि दूरस्थ एवं कई वर्षों तक फैला हुआ हो सकता है। आप यह पाते हैं कि इन निवेशों में लगाया गया धन तथा इनसे प्राप्त होने वाला धन अलग-अलग समयावधि से संबंधित होता है। मुद्रास्फीति के इस दौर में, जिसमें कि हम सब रह रहे हैं आज का एक रुपया भविष्य के एक रुपये से अधिक मूल्यवान है। इसके अलावा भविष्य की अनिश्चितताएं हाथ में आये एक रुपए को भविष्य में प्राप्त होने वाले रुपये से अधिक मूल्यवान बना डालती है। परिणामस्वरूप परियोजनाओं का वित्तीय मूल्यांकन करते समय धन का यह समय मूल्य अति महत्वपूर्ण हो जाता है। पिछले कई वर्षों से मूल्यांकन की कई तकनीकें विकसित हुई हैं। इनमें से मुख्य हैं प्रतिफल प्राप्त होने की अवधि, प्रतिफल की लेखा दर, वर्तमान शुद्ध मूल्य, आंतरिक प्रतिफल दर एवं लागत लाभ अनुपात अथवा लाभदेयता सूचकांक। प्रथम दो यानि वे प्रतिफल प्राप्त होने की अवधि एवं प्रतिफल की लेखा दर तकनीकें धन के समय मूल्य की धारणा को नहीं मानते। अतः उन्हें सार्वजनिक निवेश के कार्यों के लिए नहीं अपनाया जाता। वर्तमान शुद्ध मूल्य, प्रतिफल की आंतरिक दर एवं लागत लाभ अनुपात सार्वजनिक

निवेश परियोजनाओं के वित्तीय मूल्यांकन के लिए सामान्य रूप से अपनाया जाता है। आईये हम प्रत्येक का संक्षेप में विवेचन करें।

1.2.5.1 कुल वर्तमान मूल्य (Total Present Value)

वर्तमान शुद्ध मूल्य जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है, ऐसी तकनीक है जिसमें निवेश परियोजनाओं का वित्तीय मूल्यांकन परियोजना के नकद लागत एवं निर्गत के अंतर वर्तमान मूल्य के आधार पर किया जाता है। तदनुसार, वर्तमान शुद्ध मूल्य के आधार पर परियोजना मूल्यांकन के लिए हमें निम्न कार्य करने होंगे।

1. परियोजना की आर्थिक जिन्दगी के दौरान (वर्ष प्रति वर्ष) नकद आगत एवं निर्गत का अनुमान लगाना।
2. परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान नकद आगतों एवं निर्गतों की तुलना करके शुद्ध नकद प्रवाह का निर्धारण करना।
3. शुद्ध नकद प्रवाह में कटौती जिसमें उपयोग में लाई गई कटौती की दर अपेक्षित प्रतिफल की दर के समान होती है।
4. परियोजना का कटौती के बाद शुद्ध मूल्य अथवा वर्तमान मूल्य का निर्धारण।
5. अगर वर्तमान शुद्ध मूल्य धनात्मक है तो परियोजना को स्वीकृति प्रदान करना तथा अगर वर्तमान शुद्ध मूल्य ऋणात्मक है तो परियोजना को अस्वीकृत करना।

आप यह आसानी से अवलोकन कर पायेंगे कि वर्तमान शुद्ध मूल्य तकनीक से परियेजना मूल्यांकन करने के लिए हम केवल परियोजना से संबंधित नकद लागत एवं निर्गत में रुचि लेते हैं तथा लेखा के तरीकों आय एवं व्यय में नहीं जो कि नकद के अलावा अन्य घटकों को भी सम्मिलित करते हैं। एक उदाहरण के लिए, एक निश्चित अवधि में लाभ एवं हानि खाते का मूल्य ह्रास एक महत्वपूर्ण मद होती है, यह उसी अवधि के दौरान नकद निर्गतों का भाग नहीं होता है। अतः एक परियोजना के वर्तमान शुद्ध मूल्य का परिकलन करने के लिए हम केवल परियोजना से संबंधित नकद लागत एवं निर्गत पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं तथा समस्त गैर नकद आय एवं व्यय को नजर अंदाज कर देते हैं। इसके अलावा यह भी महत्वपूर्ण है कि इसे वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के लिए ध्यान में रखा गया। नकद प्रवाह करों की कटौती के पश्चात परंतु ब्याज प्रभार से पहले होता है। यह कर के बाद क्यों किये जाते हैं? यह समझना आसान है। चूंकि कर उत्तरदायित्व किसी भी आय ‘अथवा नकद प्रवाह परियोजना अधिकारियों के पास उपलब्ध होने से पूर्व निभाना पड़ता है, अतः परियोजना से संबंधित कुल नकद प्रवाह कर उत्तरदायित्व प्रदान करने के पश्चात् ही लिया जाता है। परंतु यह ब्याज से पूर्व क्यों होता है। इसके लिये कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है, ब्याज से पूर्व नकद प्रवाह का निर्धारण इसलिए किया जाता है, क्योंकि परियोजना के नकद प्रवाह में कटौती करने के लिए अपेक्षित प्रतिफल दर में ब्याज भी सम्मिलत होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अपेक्षित प्रतिफल दर और कुछ नहीं बल्कि वित्त के विभिन्न स्रोत्रों जिसमें ऋण भी सम्मिलित है का भारित औसत लागत है। वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के संबंध में, यह भी महत्वपूर्ण है कि किसी परियोजना से संबंधित नकद प्रवाह परियोजना के आर्थिक जीवन के काल में ही विचार में रखा जा सकता है। अन्य शब्दों में इसका अर्थ है कि एक परियोजना के नकद प्रवाह उसके उपयोगी एवं लाभदायक आर्थिक जीवन के दौरान ही

विचार के लिए जायेंगे एवं उसके भौतिक जीवन काल तक नहीं। एक निवेश परियोजना का आर्थिक जीवन उसके भौतिक जीवनकाल से छोटा होता है। वर्तमान शुद्ध मूल्य की तकनीक को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेंगे। परंतु उससे पूर्व हमें संक्षेप में वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के लिए अपनाई गई कटौती की प्रक्रिया को समझना होगा।

शुरू करने के लिए यह याद रखना आवश्यक होगा कि वर्तमान मूल्य भविष्य मूल्य का कटौती मूल्य है। यह अधिक परिचित वर्तमान राशि की मिश्रित मूल्य का विपरीत होता है। अतः वर्तमान मूल्य की भविष्य राशि की कटौती द्वारा परिकलन की प्रक्रिया को समझने के लिए, हम चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्र से जो कि आपने विद्यालय में पढ़ा होगा, आरंभ करेंगे। आपको याद होगा कि एक रुपया 100 रुपयों की राशि (Po=100 #i,) का अगर एक वर्ष ;(n=1) के लिए 10 प्रतिशत ब्याज की दर से निवेश किया जाये तो एक वर्ष के पश्चात् वह 110 रुपये तथा दो वर्षों के अंत में यह 121 रुपये हो जायेगा तथा यह राशि तीन, चार, पांच अथवा इससे अधिक वर्षों के अंत में क्या हो जायेगा? यह निम्न सूत्र के साथ आसानी से जाना जा सकता हैः

$P_1 = P_0 (1+r)^n$

जहां पर P_1 = एक वर्ष के अंत में भविष्य राशि है।

P_0 = वर्तमान राशि है।

r = ब्याज की दर है।

n = समयावधि है।

अतः एक वर्ष के अंत में यह हो जायेगा

$P_1 = 100 (1+ 10)^1 = 110$

दो वर्षों के अंत में यह हो जायेगा।

$P_2 = 100 (1+ 10)^2 = 121$

$P_3 = 100 (1+ 10)^3 = 133.10$

$P_4 = 100 (1+ 10)^4 = 146.41$

$P_5 = 100 (1+ 10)^5 = 161.05$

इसी प्रकार से आप वर्तमान राशि का भविष्य मूल्य किसी भी समयावधि के अंत में एक दी गई ब्याज दर पर निकाल सकते है।

अब अगर हम इन परिकलनों पर अन्य प्रकार से देखें तो हम कह सकते हैं कि 100 रुपये इस वर्ष के अंत में मिलने वाली 110 रुपयों की राशि का वर्तमान मूल्य है जहां पर कटौती की दर 10 प्रतिशत है। अथवा 100 रुपये दो वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत कटौती की दर से मिलने वाली 121 रुपयों की राशि का वर्तमान मूल्य है। तथा 100 रुपये 5 वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत कटौती की दर से मिलने वाली 161.05 की राशि का वर्तमान मूल्य है। इसे एक सूत्र के रुप में रखे तो: जहां पर चिन्ह (16.1) के समान की महत्त्व रखते हैं। अतः एक वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत की कटौती दर से 110 रुपयों का वर्तमान मूल्य है: = 100 (1 + 10) = 110 एक भविष्य राशि के वर्तमान मूल्य का निर्धारण करने के लिए आप वर्तमान मूल्य सूत्र की मदद से गणनाओं के समय खर्च करने की बजाय, आप वर्तमान मूल्य सारणी का उपयोग कर सकते हैं।

आईये अब हम वर्तमान शुद्ध मूल्य तकनीक के अध्ययन के लिए एक विशिष्ट उदाहरण लेकर करें।

उदाहरण-1 एक सार्वजनिक संस्था एक निवेश परियोजना पर विचार कर रही है जिसका नकद प्रवाह निम्न प्रकार से है-

वर्ष	1	2	3	4	5
नकद प्रवाह (लाख रुपये)	8	20	15	10	5

अगर अपेक्षित प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत प्रति वर्ष है, तो इस परियोजना को स्वीकृति किया जाये अथवा नहीं? आइये पहले हम इस मामले के तथ्यों को समझें। उपरोक्त तथ्य यह दर्शाते हैं कि सार्वजनिक संस्था एक परियोजना पर विचार कर रही है जिसमें आरंभ में नकद 30 लाख रुपयों, की जरूरत होगी।

परियोजना की पांच वर्षों की अवधि में यह प्रत्येक वर्ष क्रमशः 8 लाख रुपये 20 लाख रुपये, 15 लाख रुपयें, 10 लाख रुपये एवं 5 लाख रुपये पैदा करेगी। कुल नकद प्रवाह के यह आंकड़ें मूल्यह्रास एवं ब्याज से पूर्व परंतु करों के पश्चात् की राशि दर्शाते हैं। यह आंकड़ें परियोजना के आरंभ होने के पश्चात् की शुद्ध नकद लागत भी है एवं परियोजना के अंत में उपलब्ध अवशिष्ट मूल्य अथवा शेष बचा हुआ मूल्य भी है।

अब, इस परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिये सार्वजनिक संस्था निम्न प्रकार से एक सारणी तैयार करेगी-

परियोजना वर्ष	कुल नकद प्रवाह	वर्तमान साधन वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)	मूल्य 15% पर (लाख रुपयों में)
0	-30	1.000	-30.00
1	8	0.870	6.96
2	20	0.756	15.12
3	15	0.658	9.87
4	10	0.572	5.72
5	5	0.497	2.49

आपने नोट किया होगा कि इस परियोजना का वर्तमान कुल मूल्य 10.16 लाख रुपये है अतः इसे कार्यान्वयन के लिए स्वीकृति किया जा सकता है। अब मान लीजिए कि सार्वजनिक संस्था के पास चार परियोजना प्रस्ताव विचारधीन थे, जिनका कुल मूल्य निम्न प्रकार से था-

परियोजना	वर्तमान शुद्ध मूल्य (लाख रुपयों में)
A	10.16
B	**-8.64**
C	9.50
D	12.50

वर्तमान मूल्य की तकनीक के अनुसार सार्वजनिक संस्था को A C एवं D परियोजनाओं को स्वीकृति कर देना चाहिए, अगर उसके पास इन्हें कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक धन राशि है। परियोजना B को इसलिये स्वीकृत नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उसका वर्तमान शुद्ध मूल्य ऋणात्मक है। अब अगर वित्त के अभाव के कारण सार्वजनिक संस्था को कोई एक परियोजना स्वीकृत करनी हो तो परियोजना D को स्वीकृत किया जाना चाहिए क्योंकि उसका वर्तमान कुल मूल्य सबसे अधिक है। अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान कुल मूल्य तकनीक द्वारा परियोजना मूल्यांकन के अनुसार धनात्मक वर्तमान कुल मूल्य वाली परियोजना स्वीकृत की जानी चाहिए। अगर एक से अधिक परियोजनाओं में चुनाव करना हो तो अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य वाली परियोजना

को स्वीकृत किया जाना चाहिए। आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत हम वह कटौती दर निकालते हैं जिस पर समस्त भविष्य कुल नकद प्रवाह का कुल वर्तमान मूल्य आरंभिक नकद प्रवाह के बराबर होता है, अन्य शब्दों में कुल वर्तमान मूल्य शून्य होता है। यह **कटौती दर आंतरिक प्रतिफल की दर** कहलाती है। इस तरह सबसे प्राप्त आंतरिक प्रतिफल दर की तुलना अपेक्षित प्रतिफल दर से की जाती है जिससे कि परियोजना की स्वीकार्यता का पता चल जाये। निणर्य नियम एकदम सरल है। अगर आंतरिक प्रतिफल की दर अपेक्षित प्रतिफल के बराबर अथवा उससे ज्यादा है तो परियोजना स्वीकार कर ली जाती है अथवा नहीं आंतरिक प्रतिफल दर का परिकलन करने के लिए परीक्षण प्रणाली को अपनाना पडता है। आइये हम एक मामले का अध्ययन उदाहरण के लिये करें।

उदाहरण-2 सार्वजनिक संस्था के पास एक निवेश परियोजना विचाराधीन है जिसके अनुमानित शुद्ध नकद प्रवाह निम्नलिखित हैं-

वर्ष	1	2	3	4	5	6
शुद्ध नकद प्रवाह (लाख रुपयों में)	-50	20	17.5	15	12.5	10

अगर अपेक्षित प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत है तो क्या सार्वजनिक संस्था को यह परियोजना स्वीकृत करनी चाहिये अथवा नहीं? आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत पहले कदम के रूप में हम उस कटौती दर को ढूढ़ने का प्रयत्न करेगें जो कि भविष्य की सभी नकद प्रवाह के वर्तमान मूल्य को आस्मिक नकद बाहिर्वाह यानी कि इस मामलों में 50 लाख रुपयों के बराबर करती हो अथवा शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य है। इसलिए इसे परीक्षण प्रणाली कहते हैं। आइये, शुरुआत के तौर पर हम 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष कटौती दर से परीक्षण करें परिणामों को निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है-

परियोजना वर्ष	कुल नकद प्रवाह	वर्तमान साधन वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)	मूल्य 20% पर (लाख रुपयों में)
0	-50	1.000	-50.00
1	20	0.833	16.66
2	17.5	0.694	12.15
3	15	0.579	8.69
4	12.5	0.482	6.02
5	10	0.402	4.02

कुल वर्तमान मूल्य = -2.46

आपने यह देखा होगा कि 20 प्रतिशत कटौती दर पर वर्तमान कुल मूल्य शून्य नहीं है। वह -2.46 है। अतः हमें किसी ओर कटौती दर से परीक्षण करना होगा। अब क्या वह 20 प्रतिशत से अधिक होना चाहिए अथवा कम? वह 20 प्रतिशत से कम होनी चाहिये, क्योंकि हमने 16.6.1 में पाया था कि कटौती दर के कम होने से वर्तमान मूल्य बढ़ता है एवं इसके विपरीत होता है। आइये अब हम 16 प्रतिशत कटौती दर से प्रयत्न करें।

परियोजना वर्ष	कुल नकद प्रवाह	वर्तमान साधन वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)	मूल्य 20% पर (लाख रुपयों में)
0	-50	1.000	-50.00
1	20	0.862	14.24

2	17.5	0.743	13.00
3	15	0.641	9.62
4	12.5	0.552	6.90
5	10	0.476	4.76

वर्तमान कुल मूल्य = -1.52

हम पाते हैं कि 16 प्रतिशत कटौती दर पर भी वर्तमान कुल मूल्य शून्य नहीं है। परंतु अब एक चीज स्पष्ट हो गई कि वह कटौती दर जिस पर भविष्य के समस्त नकद प्रवाह का वर्तमान मूल्य आरंभिक नकद लागत के बराबर हो जाएगा (अथवा वर्तमान शुद्ध मूल्य शून्य हो जायेगा) 16 प्रतिशत एवं 20 प्रतिशत के मध्य में स्थित है परंतु उस निश्चित दर को कैसे प्राप्त किया जाये ? क्या हम 16 प्रतिशत एवं 20 प्रतिशत के मध्य कोई और कटौती दर का परीक्षण कर सकते हैं। निश्चित रूप से, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम अपनी उपलब्ध जानकारी की मदद से सुनिश्चित कटौती दर अन्तर गणन सूत्र की सहायता से प्रदान कर सकते हैं। अन्तर गणन सूत्र निम्न प्रकार से हैः

आंतरिक प्रतिफल दर जहां पर,

= कटौती की निचली दर (उपयोग में लाई दो दरों में से)

= कटौती की उच्च दर (उपयोग में लाई दो दरों में से)

= निचली कटौती दर पर वर्तमान शुद्ध मूल्य (धनात्मक अथवा ऋणात्मक चिन्ह को हटा कर)

= उच्च कटौती दर पर वर्तमान शुद्ध मूल्य (धनात्मक/ऋणात्मक चिन्ह को हटाकर)

आइये अब हम उपयोग सूत्र में संख्या मूल्यों का प्रतिस्थापन करके आंतरिक प्रतिफल दर निकालें

आंतरिक प्रतिफल दर

$$= 16 + \frac{1.52}{1.52 + 2.46} \times (20 - 16)$$

$$= 16 + \frac{1.52}{3.98} \times 4$$

$$= 16 + 1.53 = 17.53$$

अतः इस परियोजना की आंतरिक प्रतिफल दर 17.53 है। चूंकि अपेक्षित प्रतिफलज दर 15 प्रतिशत है, परियोजना जिसकी आंतरिक प्रतिफल दर 17.53 प्रतिशत है। निश्चित रूप से स्वीकार्य है।

1.2.5.2 लागत लाभ अनुपात

वर्तमान कुल मूल्य एवं आंतरिक प्रतिफल दर के अलावा वित्तीय मूल्यांकन के लिए लागत लाभ अनुपात अथवा लाभदेयता सूचकांक प्रणाली का भी उपयोग कर सकते हैं। सभी तकनीक के अंतर्गत परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान शुद्ध नकद अन्तर्वाह का वर्तमान मूल्य शुद्ध नकद बाहिर्वाह के वर्तमान मूल्य के अनुपात के रूप में दर्शाया जाता है।

इसका सूत्र है: कुल नकद बाहिर्वाह का वर्तमान मूल्य/ कुल नकद अन्तर्वाह का वर्तामान मूल्य *100

उदाहरण में लिये गये परियोजना आंकड़ों से लागत लाभ अनुपात निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है:

$$= \frac{40.16}{40} \times 100 = 1.34 = 134\%$$

अतः लागत लाभ अनुपात एक अनुपात (अथवा प्रतिशत) के में निकाला जा सकता है। लागत लाभ अनुपात का उपयोग एकदम सरल है। एक परियोजना स्वीकृति होती है यदि लागत लाभ अनुपात एक या एक सौ प्रतिशत से

अधिक हो। लागत लाभ अनुपात के आधार पर अगर एक लागत लाभ अनुपात से अधिक परियोजना में से चुनाव करना हो तो, नियम यह है कि जितना उच्च अनुपात हो उतना ही बेहतर है।

हम वित्तीय मूल्यांकन पर अपने विचार विमर्श को यह कहकर समाप्त करते हैं कि उपरोक्त व्याख्यायित तीनों तकनीकें समान रूप से लोकप्रिय हैं तथा अधिकांश रूप से संयोजन द्वारा न कि अलग-अलग उपयोग में लाई जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. वर्तमान मूल्य भविष्य मूल्य का ……… है।
2. वर्तमान कुल मूल्य तकनीक द्वारा परियोजना मूल्यांकन के अनुसार ………….. परियोजना स्वीकृत की जानी चाहिए।
3. अगर एक से अधिक परियोजनाओं में चुनाव करना हो तो ….......परियोजना को स्वीकृत किया जाना चाहिए।
4. आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत हम वह कटौती दर निकालते हैं जिस पर समस्त भविष्य कुल नकद प्रवाह का कुल वर्तमान मूल्य ……………के बराबर होता है।
5. कटौती दर …………कहलाती है।
6. आंतरिक प्रतिफल की दर अपेक्षित प्रतिफल के बराबर अथवा उससे ज्यादा है तो परियोजना ………………कर ली जाती है।

1.3 सारांश

वर्तमान इकाई में हमने सार्वजनिक निवेश के उद्देश्यों एवं महत्व की व्याख्या की है। जबकि व्यापक अर्थोंत में सार्वजनिक निवेश का उद्देश्य "अधिकतम जनता को अधिकतम लाभ" पहुँचाना है, विशिष्ट अर्थों में इसका उद्देश्य एक प्रजातांत्रिक राज्य में सार्वजनिक निवेश की सामाजिक उपयोगिता अथवा सामाजिक लाभ को अधिकतम बनाना है। यह नोट किया गया है कि सार्वजनिक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार विभिन्न कारकों जैसे कि आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति, अर्थव्यवस्था के विकास का स्तर, अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ इत्यादि पर निर्भर करते हैं। सार्वजनिक निवेश निर्णय निर्माण प्रक्रिया के दोनों समष्टि एवं व्यष्टि आयाम हैं तथा इसमें विभिन्न सरकारी अभिकरण सम्मिलित हैं। परियोजना स्तर पर, परियोजना मूल्यांकन में आवश्यक रूप से आंकड़े एकत्र करना एवं परितुलन, लागत का अनुमान, लाभ एवं लाभदेयता तथा परियोजना चुनाव मापदण्ड अथवा अपेक्षित प्रतिफल दर से उसकी तुलना करके यह निर्णय लिया जाता है कि परियोजना को अपनाया जाये अथवा नहीं। परियोजना मूल्यांकन के कई आयाम हो सकते हैं जैसे कि तकनीकी, वित्तीय, आर्थिक अथवा सामाजिक एवं प्रबंधकीय। वित्तीय मूल्यांकन जो कि इस इकाई का मुख्य केंद्र बिंदु है, परियोजना की व्यवसायिक व्यवहार्यता को परखता है। शुद्ध वर्तमान मूल्य आंतरिक प्रतिफल दर एवं लागत लाभ अनुपात वित्तीय मूल्यांकन को तीन व्यापक रूप से उपयोग में आने वाली तकनीकें हैं। इस इकाई के पश्चात् हम इकाई 15 में परियोजना के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की विस्तृत रूप से व्याख्या करेंगे।

1.4 शब्दावली

आर्थिक और सामाजिक मूल्यांकन- परियोजना की आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन निर्धारण की प्रक्रिया।

वित्तीय मूल्यांकन- परियोजना की व्यावसायिक व्यवहार्यता या लाभकारिता निर्धारण की प्रक्रिया।

प्रबंधकीय मूल्यांकन- परियोजना के पीछे प्रबंधन समूह के समर्थन की निष्ठा और क्षमता निर्धारण की प्रक्रिया।

परियोजना मूल्यांकन- किसी निवेशित परियोजना की स्वीकार्यता को आँकने की प्रक्रिया।
तकनीकी मूल्यांकन- परियोजना की तकनीकी व्यवहार्यता निर्धारण की प्रक्रिया।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कटौती मूल्य **2.** धनात्मक वर्तमान कुल मूल्य वाली **3.** अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य वाली **4.** आरंभिक नकद प्रवाह **5.** आंतरिक प्रतिफल की दर **6.** स्वीकार्यता

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dasgupta, A.K. and Pearce, D. W., 1972, Cost-Benefit Analysis-Theory and Practice, Macmillan, London.
2. Layard, R. (ed.), 1 972, Cost-Benefit Analysis, Penguin, Harmonsworth.
3. Little, I.M.D. and Mirrlees, J.A., 1990. Project Appraisal and Planning for Developing Countries, Heinemann Educational Books, London.
4. Pearce, D. W, and Nash, C.A., 198 1. The Social Appraisal of Projects: A Text in Cost Benefit Analysis, Macmillan, London.
5. Perkins, Frances. 1952, Practical Cost-Benefit Analysis: Basic Concepts and Applications, Macmillan, Australia.
6. Squire, L. and Van der Tak, H.G., 1975, Economic' Analysis of Projects, Johns Hopkins University Press, Baltimore.
7. UNIDO, 1972. Guidelines for Project Evaluation, United Nations, New York.

1.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. C.P. Kindleberger and Herick, Economic Development, 2/e, 1965.
2. Simon Kuznets, 'Economic Growth and Income Inequality, "AER. March
3. 1955.
4. Simon Kuznets, "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations: Distributions of Income by Size, "Economic Development and cultural Change, January 1963.

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. किसी परियोजना का वित्तीय विश्लेषण कब करना चाहिए?
2. किसी परियोजना के वित्तीय विश्लेषण में कुल वर्तमान मूल्य का मूल्यांकन कैसे करेंगे?
3. किसी परियोजना के वित्तीय विश्लेषण में लागत लाभ अनुपात का मूल्यांकन कैसे करेंगे?

इकाई- 2 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन
2.2.1 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की आवश्यकता
2.2.1.1 बाजार विकृतियां
2.2.1.2 बाह्यताएं
2.2.1.3 सामाजिक वस्तुएं
2.2.1.4 कर
2.2.2 व्यावसायिक लाभदेयेयता की सीमाएं
2.2.3 राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयेयता
2.2.4 लाभ एवं लागत
2.2.5 सकल राष्ट्रीय लाभदेयता
2.2.6 सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण
2.2.6.1 लागत एवं लाभ की माप
2.2.6.2 छाया कीमतें
2.2.6.3 सामाजिक भार
2.2.6.4 सामाजिक ब्याज दर
2.3 सारांश
2.4 शब्दावली
2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री/सहायक
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

इकाई-1 में हमने परियोजना विश्लेषण तथा मूल्यांकन की तकनीकों एवं संकल्पनाओं की व्याख्या की है। उनमें चर्चा का केंद्र बिन्दु मुख्यतः एक परियोजना से संबंधित नकद अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह ही थे। निर्विवाद रूप से, मूल्यांकन की तकनीक उन परिणामवाचक एवं मौद्रिक लाभों एवं लागतों से संबंधित थी जो कि परियोजना अधिकारी अथवा उद्यम को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होते थे। परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अन्य कोई प्रासंगिक विचारणीय मुद्दे नहीं हैं। वास्तव में, विभिन्न आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण से संबंधित विचार अर्थात गैर वित्तीय विचार कुछ स्थितियों में वित्तीय विचारों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

वित्तीय प्रतिफलनों के अतिरिक्त, अर्थात परियोना से परियोजना अधिकारियों को होने वाले प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त एक परियोजना से संबंधित कुछ गैर वित्तीय प्रतिफल भी होते हैं जो व्यापक रूप से आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय लागत एवं लाभ होते हैं। ये समस्त समाज अथवा अर्थव्यवस्था को प्राप्त होते हैं। परियोजना के आर्थिक लाभ एवं लागत देश की अर्थव्यवस्था को परियोजना से होने वाले अवसर लागत एवं लाभ होते हैं।

क्षेत्रीय अवसर लागत यह आय या प्रतिफल हानि है जो कि निवेश के वैकल्पिक उपयोग के कारण होती है। अवसर लाभ निवेश के वैकल्पिक उपयोग से होने वाली अतिरिक्त आय अथवा प्रतिफल है। परियोजना की सामजिक लागत एवं लाभ समाज के विभिन्न वर्गों को को होने वाली हानियों अथवा लाभों के रूप में देखे जा सकते हैं। पर्यावरण लाभ एवं लागत भी परियोजना के महत्वपूर्ण गैर वित्तीय पहलू हैं। पिछली इकाई में चर्चित वित्तीय मूल्यांकन परियोजना के आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी आयामों को कितना आच्छादित करता है?

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन के विषय में जान पायेंगे।
- आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन आवश्यकता क्यों है, इसे समझ पायेंगे।

2.2 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन

आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझते हैं-

2.2.1 आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की आवश्यकता

हम यह समझ सकते हैं कि परियोजनाएं समाज, या जीवन से अलग-अलग नहीं होती हैं। उनका एक सामाजिक संदर्भ होता है। भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में निवेश परियोजना अधिकतर आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय स्थापित करने के साधन के रूप में देखें जाते हैं। लोक निवेश परियोजनाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सामान्य लाभ में अधिकतम सहयोग प्रदान करेगी। क्या वर्तमान कुल मूल्य जैसे वित्तीय मूल्यांकन के मापदण्ड अधिकतम जनसंख्या को अधिकतम लाभ सुनिश्चित करते हैं। इस प्रश्न के उत्तर का कुछ भाग समाज के आर्थिक एवं औद्योगिक संगठन पर निर्भर करता है। सामान्यतः वर्तमान शुद्ध मूल्य विश्लेषण के लिए उपयोग में लाई गई कीमतें एवं लागतें आर्थिक मूल्यों का सही प्रतिबिंब है तो कुल वर्तमान लागत का नियम समाज के कुल आर्थिक कल्याण को अधिकतम बनाता है। अगर कीमतें एवं लागतें आर्थिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करने में असफल होती हैं तो यह निष्कर्ष लागू नहीं होगा। वस्तुतः ऐसे असंख्य कारण होते हैं जो एक ओर तो आर्थिक मूल्यों एवं दूसरी ओर प्रतीमान कीमतों एवं लागतों के मध्य विसंगतियों उत्पन्न करते हैं। आइये हम उनमें से कुछ का अध्ययन करें।

2.2.1.1 बाजार विकृतियां (Market Distortion)

विकृति का सबसे सामान्य रूप अधिशेष श्रम अर्थव्यवस्था के श्रम बाजार में पाया जाता है, जहां पर मजदूरी की दर श्रम की सामाजिक अवसर लागत के समान नहीं होती। अर्थव्यवस्था के आधुनिक संगठित क्षेत्रों में (आधुनिक उद्योग एवं वाणिज्य, सरकार एवं बागान) श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी (श्रमिक भूमिहीन हो अथवा नहीं हो सकता है) ग्रामीण क्षेत्रों में दी जाने वाली मजदूरी से कहीं अधिक होती है। अतः संगठित क्षेत्रों में श्रमिकों का लागत मूल्य ग्रामीण क्षेत्रों से कहीं अधिक है अगर हम यह मान लें कि संगठित क्षेत्रों में श्रम का मुख्य स्रोत्र ग्रामीण (कृषि) क्षेत्र है जैसा भारत के अधिकांश भागों में विद्यमान है। अतः आधुनिक संगठित क्षेत्रा में दी जाने वाली मजदूरी श्रम की समाज के प्रति अवसर लागत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

भारत एवं सायद कई अन्य विकासशील देशों में पूँजी बाजार अपूर्ण माने जाते हैं। जिसका प्रमाण ब्याज दर की एक विस्तृत श्रेणी का विद्यमान होना है। उदाहरण के लिए, भारत में विभिन्न संगठित क्षेत्रा वित्तीय संस्थानों द्वारा ली गई

ब्याज दर पारंपरिक मुद्रा बाजार (ग्रामीण ऋण दाता, व्यापारी जमींदार इत्यादि) से सर्वथा विभिन्न है। जहाँ पर जोखिम समान हो वहां ब्याज दर भी समान होनी चाहिये। परंतु ऐसा कम ही होता है, क्योंकि सरकार पूंजी बाजार के स्वतंत्रा कार्य करने में हस्तक्षेप करती है तथा कई अन्य अपूर्णतायें भी होती हैं। एक अन्य मुख्य कारण जो विश्व बाजार के साथ आर्थिक एकीकरण को रोकता है वह सरकारी व्यापारी नीति है। कई विकासशील देशों में (जिनमें भारत भी सम्मिलित है) सरकारें कई प्रकार के सीमा शुल्क, आयात प्रतिबंध तथा कई बार तो निर्यात प्रतिबंध अथवा रोक लगा देती है। सीमा शुल्क एवं प्रतिबंध जो आयात पर लगायें जाते हैं वह घरेलू कीमतों को उनकी लागत जमा बीमा तथा वाहन शूल्क कीमतों से कहीं अधिक बढ़ा देती है। निर्यात प्रतिबंध एवं कोटा एक विपरीत दिशा में कार्य करते हैं। बहुधा एक संरक्षित उद्योगों के उत्पादन अन्य घरेलू उद्योगों के लिए कच्चे माल का काम करते हैं। यह परवर्ती उद्योगों के लिये निर्यात निरूत्साहन का कार्य करती है। संरक्षण से कई बार घरेलू कीमत स्तर इतने बढ़ जाते हैं कि संरक्षित उद्योगों के मूल्य योग अनुपात उससे कहीं अधिक होते हैं जो संरक्षण के अभाव में हो। मुद्रा अधिमूल्यन कई विकासशील देशों का आम लक्षण है, तथा उपरोक्त संरक्षण उपायों में प्रतिबिंबित होता है। अगर विनियम दर (जो सरकार द्वारा नियंत्रित होती है) मुद्रास्फीति के अनुरूप नहीं बदली जाती तो आयात एवं निर्यात की कीमतें घरेलू बाजार की कीमतों की तुलना में अत्याधिक कम हो जाती है। इससे विदेशी मुद्रा की भारी माँग हो जाती है, तथा कई बार महत्त्वपूर्ण विश्व मुद्राओं की बाजार कीमत ज्यादा हो जाती है जो विनियम की बैंक दर से भिन्न होती है। सरकार वित्त उपलब्ध करनें के एक साधन के रूप में कर का स्वतंत्रा रूप में उपयोग करती है। करों द्वारा विशेषतः वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष करों द्वारा उपभोग वस्तुओं का घरेलू कीमत स्तर काफी बढ़ जाता है। बहुधा मध्यवर्ती वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता है जिससे अंतिम उत्पादों की कीमतें और भी बढ़ जाती हैं। दूसरी और अनुदान कीमत स्तर को नीचे गिरा देते हैं। कर लगाई गई अथवा अनुदान दी गई वस्तुओं की बाजार कीमतें उनकी सही सामाजिक लागत को नहीं दर्शाती है जिसमें उसकी खरीद बिंदु के समय उपलब्ध उसे उत्पादित करने में लगे साधनों की अवसर लागत ही सम्मिलित होती है। अतः हम यह पाते हैं कि उपरलिखित कारणों की वजह से बाजार कीमतें आर्थिक कीमतों से भिन्न होती हैं।

2.2.1.2 बाह्यताएं (Externalities)

अधिकांश ऐसा होता है कि एक नई परियोजना आरंभ करने पर इसके आस-पास की आर्थिक गतिविधियों में कई परिवर्तन अथवा प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो जाए। ये सकारात्मक भी हो सकती हैं और नकारात्मक भी हैं। नकारात्मक पहलू क्षेत्रा में अन्य आर्थिक गतिविधियों के कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, अर्थात् सामाजिक लागतों का निर्माण करती है। सकारात्मक पहलू नई आर्थिक गतिविधियों एवं अतिरिक्त लाभ उत्पन्न करती हैं। इन अंतः संबंधों को बाह्यताएं भी कहा जाता है। संक्षेप में, बाह्यताएं उन लागतों एवं लाभों की ओर संकेत करती है जिनका निजी फर्म अपने वर्तमान कुल मूल्य विश्लेषण में नजर अंदाज कर देती है (जैसा कि वह लागत एवं लाभ जो कि फर्म के लिए तो बाह्य है परंतु समाज के लिए आंतरिक है)। इसके कई दर्जन उदाहरण है परंतु यहां पर केवल दो ही पर्याप्त होंगे।

माना कि एक इस्पात मिल का निर्माण किया जाता है, जिस स्थान पर वह बनाई जायेगी वहाँ के आस-पास की हवा तथा जल को दूषित करेगी। इसके बावजूद मिल की यह गंदगी वातावरण में छोड़ने की स्वतंत्राता प्राप्त होगी। प्रदूषण के लिए कोई शुल्क अथवा दण्ड नहीं होगा। अतः इस्पात कंपनी, गंदगी फैकनें की व्यवस्था का चुनाव करते समय यह मान लेगी कि पर्यावरण सुरक्षा की कोई लागत नहीं है, और उसी के अनुसार अपना आकलन करेगी तथा मिल बनाने का निणर्य लेगी। तथापि प्रदूषण के परिणामस्वरूप समाज को वास्तविक लागतें उत्पन्न होगी चूंकि कंपनी उन्मुख वर्तमान कुल मूल्य विश्लेषण इन लागतों को नजर अंदाज करेंगे। इससे यह निष्कर्ष

निकलता है कि फर्म के लिये वर्तमान कुल मूल्य के अधिकतम होने से यह जरूरी नहीं कि समाज कल्याण भी अधिकतम हो।

एक अन्य वैकल्पिक स्थिति लें। मान लें। मान लें कि श्रम लागत दिल्ली की तुलना में गुड़गांव में थोड़ी कम है। अतः एक नये निवेश को लागू करने पर, फर्म गुड़गांव में एक नई फैक्ट्री लगाने का निर्णय लेगी। परंतु इससे दिल्ली में बेरोजगार हुए व्यक्तियों को संभालने के लिए समाज पर पड़ने वाली उच्च संभावित लागत का क्या होगा ? यह लागतें फर्म के लिए बाह्य है परंतु समाज के लिए आंतरिक हैं, यहाँ पर फर्म का वर्तमान कुल मूल्य अधिकतम होने से समाज का आर्थिक कल्याण नहीं बढ़ेगा।

2.2.1.3 सामाजिक वस्तुएं (Social Goods)

ऐसी कई वस्तुएं होती हैं, जैसे कि शिक्षा, संस्कृति, शांति, सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं आधारभूत वैज्ञानिक अनुसंधान, जिन पर समाज उच्च मूल्य लगाता है, परंतु वह किसी न किसी कारणवश अपने मूल्य के बराबर बाजार कीमत नहीं जुटा पाते। अगर इनमें निवेश करने के लिए वर्तमान कुल मूल्य ही अकेला मापदण्ड हो तो समाज इन क्षेत्रों से संभवतः इतना कम निवेश करें कि इनकी संभावित क्षति ही हो। अतः समाज की उच्च आर्थिक अधिकतम की ओर ले जाने के लिये, वर्तमान कुल मूल्य नियम को परिवर्तित करना होगा।

2.2.1.4 कर (Tax)

अंतिम तथा अत्यधिक मुश्किल घटक निगम कर है। वर्तमान कुल मूल्य को अधिकतम करने के लिए, फर्में वास्तविक रूप में करों के पश्चात् होने वाले नकद, प्रवाहों के पक्ष में सोचती हैं। अधिकतर मामलों में वर्तमान कुल मूल्य को करों के पश्चात् अधिकतम करने पर भी वही परिणाम आते हैं जो कि करों को घटाने से पूर्व करने पर आयें। परंतु कभी-कभी विवाद भी उत्पन्न हो सकता है जब कर पश्चात् वर्तमान कुल मूल्य के कुछ और परिणाम आते हैं एवं कर पूर्व वर्तमान कुल मूल्य नियम का अनुसरण करने पर कुछ अन्य कार्यविधि अपनानी पड़ती है। कर पूर्व अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य उस विकल्प का चुनाव करता है जो संपूर्ण समाज के लिए लाभदायक हो, जबकि कर पश्चात् अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य उस विकल्प का चुनाव करता है जो फर्म को अधिकतम लाभ पहुँचाये। अतः हमारे पास एक अन्य उदाहरण है जिसमें एक स्पष्ट संभावना है कि कर पश्चात् अधिकतम शुद्ध मूल्य नियम सामाज कल्याण को अधिकतम नहीं बनायेगा।

ऊपर दिए गए चारों स्रोत्रों, वर्तमान कुल मूल्य निवेश नियम एवं अधिकतम सामाजिक लाभ में उत्पन्न होते हैं, आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्थाओं में विद्यमान है। वास्तविक प्रश्न यह है कि इस स्थिति के बारे में क्या किया जा सकता है ? क्या निवेश मापदंड के रूप में वर्तमान कुल मूल्य का त्याग कर देना चाहिये। सही उत्तर यह है कि यह नियम अधिकतम निवेश निर्णयों के लिए अन्य विकल्पों से बेहतर सिद्ध हुआ है अतः इसको बनाए रखना ही होगा। अधिकांश समय, फर्म का वर्तमान कुल मूल्य अधिकतम होने पर समाज का वर्तमान कुल मूल्य भी अधिकतम होता है, क्योंकि यही एक नियम है, जो महत्वपूर्ण एवं सीमित, साधन, यानी पूंजी का संभावित कुशलतम उपयोग करता है।

सोलोमन एण्ड प्रिगले ने यह पाया कि वित्त प्रबंध निर्णयों का अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य मापदंड समाज के आर्थिक कल्याण को बेहतर बनाने का कार्य किसी अन्य कार्यात्मक मापदंड से अधिक कुशल रूप में करता है। अतः यह समाज के आर्थिक कल्याण को अधिकतम बनाने के लिये एक आवश्यक शर्त है। परंतु यह अपने आप में समुचित शर्त नहीं है। समाज स्वयं ऐसी स्थितियों को बना (अथवा बिगाड़) सकता है जिनमें इस नियम को लागू करने पर कुल कल्याण का स्तर और अधिक ऊँचा उठ सकता है। एक समाधान जो कार्य नहीं करता वह है प्रबंधकों को यह अनुमति देना अथवा प्रोत्साहित करना कि वह साधनों का आबंटन अपने इस निजी अनुमान के आधार पर कर लें कि समाज के लिये वही अधिकतम लाभकारी होगा।

2.2.2 व्यावसायिक लाभदेयेयता की सीमाएं (Limitations of Professional profitability)

किन अर्थो में व्यावसायिक लाभदेयता के मापदंड राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयता से भिन्न होते है ?

ऐसा क्यों होता है कि व्यावसायिक लाभ बहुधा सामाजिक लाभों के बुरे मार्गदर्शक माने जाते हैं? अगर दोनों हों मामलों में ढांचा "वर्तमान मूल्यों" का हो तो, स्पष्टतः व्यावसायिक लाभों एवं आर्थिक लाभों के मध्य अंतर किसी भी वर्ष में ब्याज की बाजार दर एवं समुचित सामाजिक कटौती दर के मध्य विसंगति का होगा। व्यावसायिक लाभ एक निश्चित अवधि में उपार्जन एवं लागतों के मध्य के मूल्यों का अंतर है।

उपार्जन बाजार कीमतों पर फर्म की प्रत्यक्ष मौद्रक आय होती है तथा लागतें बाजार भाव पर हुई लागत होती है। परियोजनाओं के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन के लिए, आइये हम अधिक गहन विश्लेषण करें तथा जानने का प्रयत्न करें कि बाजार कीमतों का अर्थ क्या है, अर्थात् यह किसका प्रतिनिधित्व करती हैं ? अगर एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए 10 रुपये देने को तैयार है तो वह उससे कम से कम 10 रुपये के बराबर संतुष्टि पाने की अपेक्षा करता है। क्या इसका अर्थ यह है कि सामाजिक मूल्य भी 10 रुपये के बराबर है? यह आवश्यक नहीं है।

प्रथमतः एक व्यक्ति कितनी राशि देने को तैयार है यह उसकी आय पर निर्भर करता है। एक अमीर व्यक्ति नगण्य वस्तुओं के लिए अत्याधिक धन देने को तैयार हो सकता है, जबकि एक निर्धन व्यक्ति के लिए आवश्यकताओं पर भी छोटी से छोटी राशि खर्च करना मुश्किल हो सकता है। अतः बाजार कीमतें सामाजिक कल्याण का सही मापदण्ड नहीं हो सकती क्योंकि यह कीमतों पर आय वितरण के प्रभावों को भी दर्शाती है। एक व्यक्ति प्रत्युत्तर में यह पूछ सकता है कि अगर लोक नीति के संरक्षक वर्तमान आय वितरण को पसंद नहीं करते (उदाहरण के लिये अगर वह विद्यमान असमानताओं को नापसंद करती है) तो वह क्यों इसमें प्रत्यक्ष सुधार नहीं लाते ? एक बार वितरण में सुधार आ जाये तो परियोजना विश्लेषक मौद्रिक कीमतों को सरलता से कल्याण का मापदण्ड मान सकते हैं तथा आय वितरण के बारे में चिन्ता छोड़ सकते हैं। यह प्रत्युत्तर यद्यपि खोखला है, तथापि असहज नहीं है, चूँकि कई प्रतिरोध जैसे कि- राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक- आय वितरण में सुधारों को रोकते हैं तथा इन सीमाओं के कारण परियोजना मूल्यांकन इस धारणा पर नहीं आधारित हो सकते कि सभी समुचित आय पुनर्वितरित किये जा चुके हैं।

इसके अलावा आय पुनर्वितरण का एक सरल साधन परियोजना चुनाव भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, परियोजना "अ" जो कि एक निर्धन क्षेत्रा में लगाई जानी है तथा परियोजना "ब" जो कि एक धनी क्षेत्रा में लगाई जानी है के मध्य चुनाव करना है अथवा परियोजना "म" जो कि गरीब, अप्रशिक्षित श्रम का उपयोग करती हैं, एवं परियोजना "द" जो कि धनी लागों द्वारा पूर्ति किये गये उत्पादन साधनों का उपयोग करती है के मध्य चुनाव करना है। परियोजना चुनाव के वितरणीय परिणाम होते हैं, तथा कभी-कभी इस तरह से आय का पुनर्वितरण करना सामाजिक अथवा राजनीतिक रूप से अधिक व्यवहार्य हो सकता है बजाय इसके कि करों द्वारा अथवा अन्य प्रत्यक्ष साधनों द्वारा ऐसा किया जाए। अतः हमारे पास यह विधिसंगत तर्क है कि एक परियोजना से सामाजिक लाभों का मूल्यांकन करते समय वितरणीय प्रश्नों पर भी विचार किया जाये। यह एक व्यक्ति को तत्काल ही व्यवसायिक लाभदायकता से बाहर ले जाते हैं।

द्वितीय, एक परियोजना के ऐसे प्रभाव भी हो सकते हैं जो बाजार के बाहर कार्य करते हैं न कि उसके द्वारा कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, एक औद्योगिक परियोजना उस शहर में जहाँ वह स्थिति है अत्याधिक धूएं एवं प्रदूषित वायु का उत्पादन करती है अथवा एक फर्म उस क्षेत्रा की श्रम शक्ति को प्रशिक्षित करती हैं जबकि पहला प्रभाव अवांछनीय हो सकता है, तथा दूसरा प्रशसनीय, फर्म के लाभ में दोनों ही प्रतिबिंबित नहीं होंगें। खराब स्वास्थ्य अथवा पड़ोसियों के अरुचिकर जीवन की लागत व्यावसायिक लाभों को कम नहीं करती एवं प्रशिक्षण का लाभ भी फर्म को नहीं मिलता क्योंकि प्रशिक्षण के पश्चात् श्रमिक छोड़ कर जाने को स्वतंत्रा हैं। सह प्रभाव जो बाजार के

बाहर कार्य करते हैं बाह्यताएं या बाह्य कारक कहलाते हैं। यह व्यावसायिक लाभों की गणना में नहीं आते क्योंकि यह बाजार भाव पर निर्मित किये जाते हैं।

बाह्यताएं स्पष्ट रूप से सामाजिक चुनाव के लिए संगत तथा लोक नीति के मार्गदर्शक के रूप में व्यावसायिक लाभदेयता को नकारने के लिए समुचित तर्क प्रदान करती हैं। बाह्यताएं उत्पादक की प्रक्रिया में (उदाहरण के लिये उद्योगा कें द्वारा जल प्रदूषण) उपभोग प्रक्रिया में (उदाहरणतः अतिरिक्त कारों द्वारा सड़कों पर अतिसंकुलता) तथा विक्रय एवं वितरण की प्रक्रिया में (उदाहरणतः दुकानों पर भड़कीले प्रदर्शनों अथवा विज्ञापनों द्वारा समुदाय की शांति प्रभावित हो) उत्पन्न हो सकते हैं। बाह्यताएं बहुधा अधिकतम व्यापक होती हैं।

तृतीय, बाह्यताएं एवं आय पुनर्वितरण के आभाव के बावजूद व्यावसायिक लाभदेयता भ्रमित हो सकती है। अगर एक उपभोक्ता एक वस्तु के लिए 10 रुपये देने को तैयार है(तो वह उससे कम से कम 10 रुपये की संतुष्टि की अपेक्षा रखता है, परंतु वह उससे भी कहीं अधिक संतुष्टि की अपेक्षा रख सकता है। अगर हम किसी परियोजना द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजार मूल्य देखें तो हम अपेक्षित संतुष्टि के बराबर प्रवाह को माप पायें। परंतु तथ्य यह है कि उपभोक्ता इससे अधिक की अपेक्षा रखता है तथा पाता है। अगर हम एक परियोजना से कुल संतुष्टि के प्रश्न को आंकने का प्रयत्न करें, तो हमें उपभोक्ताओं द्वारा उत्पादन के लिए दी जाने वाली वास्तविक कीमत तथा तो वह देने को तैयार है के मध्य के अतिरेक का देखना होगा। यह अन्तर कभी-कभी उपभोक्ता अधिशेष कहलाता है। आय वितरण बाह्यताएं एवं उपभोक्ता अधिशेष के कारण व्यावसायिक लाभों को राष्ट्रीय लाभों के रूप में स्वीकार करना संभव हो जाता है। अन्य घटक भी है, परंतु उपरोक्त वर्णित कारण सामाजिक एवं निजी लाभों के मध्य के अंतर को स्पष्ट करने के लिए काफी हैं।

वर्तमान मूल्य अनुमानों का एक अन्य संघटक है सामाजिक कटौती दर। किसी भी दी गई लाभों की (चाहे निजी अथवा सामाजिक) श्रृंखला में वर्तमान मूल्य का आकार कटौती दर पर निर्भर करता है। कुछ ही वर्ष जीने की अपेक्षा रखता है तथा इस सीमितता द्वारा भविष्य के लिए की गई कटौती सामाजिक चुनाव के लिए उचित नहीं हो सकती, क्योंकि नियोजनकर्ता एक दीर्घकालिक दृष्टिकोण रखते हैं तथा भविष्य की पीढ़ी के कल्याण स्तर को ऊँचा करने को अधिक महत्त्व देते हैं।

2.2.3 राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयेयता (National Economic Profitability)

सामाजिक चुनाव का उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना होता है, एवं सामाजिक लाभ की संकल्पना स्पष्ट रूप से तार्किक लोक नीति का आधारभूत घटक है, इसमें लोक परियोजनाओं का चुनाव भी सम्मिलित है। हम समाज के कुल लाभों का माप किस प्रकार से करते हैं? स्पष्टतः हमें लागतों एवं लाभों की किसी ऐसी संकल्पना की आवश्यकता है जो कि हमें शुद्ध लाभों को कुल सामाजिक लाभों एवं कुल सामाजिक लागतों के अंतर के रूप में आंकलित करने में सहायता कर सकें। अगर हम समाज एवं राष्ट्र के मध्य तादात्म्य स्थापित कर लें तो इस अन्तर को उपयोगी रूप से राष्ट्रीय लाभ कहा जा सकता है।

लागतों एवं लाभों में वह सभी संबंधि घटक सम्मिलित होने चाहिये, जो हमारी दृष्टि से राष्ट्र कल्याण को प्रभावित करते हैं क्योंकि परियोजना चुनाव का उद्देश्य अधिकतम कल्याण होता है न कि केवल आर्थिक लाभों को अधिकतम करना। अतः हम अब आगे की चर्चा राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयता को सरलता से कुल राष्ट्रीय लाभदेयता के माप के रूप में, आर्थिक इकाइयों में अभिव्यक्त करेंगे। जबकि हमारे द्वारा चुनी गई ईकाइयाँ सुविधा के आधार पर चुनी गई हैं। तथा हमारे निर्णयों को प्रभावित नहीं करती, तथापि लागत एवं लाभों को किसी स्तरीय आर्थिक परिमाण में मापने के कुछ स्पष्ट परिकलन एवं अन्य लाभ हैं।

आइये हम लोक नीति के उन अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्यों के विवेचन से बात प्रारंभ करें जो कि परियोजना चुनाव के लिए प्रासंगिक समझे जाते हैं। हम उद्देश्यों एवं लाभों के मापों के मध्य संबंध को भी समझेंगें। हम राष्ट्र आर्थिक

लाभदेयता के एक मापदंड पाने की सामान्य समस्या, विभिन्न प्रकार के लाभों एवं लागतों जो विभिन्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से संबंधित है, व्यापक मापों का भी विवेचन करेंगे।

2.2.4 लाभ एवं लागत (Benefits and Cost)

एक बात यहाँ अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि लाभ एवं लागत का अन्तर एक चिन्ह ही है। लागत एक त्याग दिया गया लाभ है। अगर परियोजना "अ" दस लाख रुपयों के अतिरिक्त कुल उपभोग उत्पन्न करती है तो यह परियोजना "अ" के लाभों में से एक है। अब अगर परियोजना "अ" की बजाय परियोजना "ब" का चुनाव कर लिया जाता है जबकि उपयोग किये गये साधन एकदम एक से हैं, तब दस लाख रुपयों का कुल उपयोग परियोजना "ब" की प्रासंगिक लागत है। एक परियोजना के चयन से जिन लाभों का त्याग किया जाता है वह वास्तविक अर्थों में उसकी लागत हैं, अतः लागतों के माप करने एवं लाभों के माप करने में कोई स्पष्ट विश्लेषणात्मक अन्तर नहीं है। अतः आगे की चर्चा में हम उद्देश्यों को लाभों से संबंधित करेंगे तथा वह लागतों एवं उद्देश्यों के मध्य संबंधों को भी दर्शायेगा।

अब हम कुछ अधिक महवपूर्ण उद्देश्यों एवं उनके अनुकूल लाभों के माप की व्याख्या करेंगे।

1. **सकल उपभोग (Net Consumption)-** जीवन स्तर को उच्च बनाना राष्ट्रीय नियोजन का एक मूलभूत उद्देश्य है, एवं इसमें प्राकृतिक रूप से परियोजना चुनाव भी सम्मिलित है। जीवन स्तर के मापने का एक मुख्य आधार है प्रति व्यक्ति संकल उपभोग का स्तर। इस स्तर को ऋऊपर उठाने को सकल उपभोग उद्देश्य भी कह सकते हैं, जो कि स्पष्ट रूप से परियोजना चुनाव का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। अपनी प्राकृति से ही कुल उपभोग कुछ निश्चित मापन समस्याएं उत्पन्न कर देती है। समुच्चय के मामले में, प्रत्येक वस्तु पर सापेक्षिक भार उस कीमत को दर्शाते हैं जो उपभोक्ता उस के लिए देते हैं। अगर आवश्यक होता है तो इल कीमतों में सुधार किया जा सकता है एवं बाह्यताओं को सम्मिलित किया जाता है, परंतु इन विचारों को पृथक रूप से सम्मिलित करना अधिक सुविधाजनक होता है। इन सुधारों को किस प्रकार से लाया जाये यह कोई मुद्दा अथवा सिद्धान्त नहीं है परंतु यह एक सुविधा का विषय है जिसका विवेचन हम बाद में करेंगे। उपभोग को समय अनुसार एकत्रा करने का भी प्रश्न है।, जिसमें कटौती की समस्या भी सम्मिलित है, सामाजिक कटौती की समुचित दर वह दर है जिस पर निर्णय निर्माताओं को यह विश्वास कि भविष्य के लाभों को वर्तमान लाभों के बराबर लाने के लिए किस दर पर घटाना चाहिए।
   सामाजिक कटौती दर अगर दी हुई हो तो परियोजना मूल्यांकनकर्ता समस्त उपभोग वर्तमान अथवा, भविष्य का वर्तमान मूल्य सरलता से इस कटौती दर पर कटौती करके आकलन कर सकते हैं।
2. **आय पुनर्वितरण (Redistribution of Income)-** कुल उपयोग के साथ-साथ वितरण स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय लाभों के अनुमान के लिए महत्वपूर्ण है। सच पूछिये तो, वितरण के विचारों का कुल उपभोग से सही मायनों में पृथकीकरण नही किया जा सकता। एक बात समीकरण (3.1) में कुल उपभोग का अनुमान करने के लिए उपयोग की गई संबंधित कीमतें आय वितरण पर निर्भर करती हैं, चूंकि कीमते मांग द्वारा एवं मांग आय वितरण द्वारा प्रभावित होती है।
   जैसा कि हमने पहले कहा है सिद्धांत तौर पर यह संभव है कि प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा पेश की गई कीमत को सुधारा जाये, मसलन यह हम धनी व्यक्ति के मौद्रिक व्यय पर कम भार लगा सकते हैं। एक धनी व्यक्ति को होने वाली आय पर भी एक निर्धन व्यक्ति की तुलना में कम भार लगाया जाना चाहिये। ऐसे विस्तृत सुधार करना आसान नहीं होता तथा परियोजना विश्लेषक द्वारा किस प्रयोगिक तरीके का उपयेग किया जा सकता है। एक इस प्रकार का तरीका है, अधिकतम निर्धन समूह (उदाहरण के लिए सबसे निचले 10 प्रतिशत) की आय एवं उपयोग को अतिरिक्त सहयोग दिया जाय। सरल शब्दों में एक तरीका

यह है कि एक निश्चित निर्धन क्षेत्रा को अलग कर दिया जाए एवं उस क्षेत्रा में होने वाली किसी भी उपभोग पर अतिरिक्त भार लगा दिया जाए। इसी प्रकार से एक निश्चित वर्ग का पूर्वानुमान लगाने पर उदाहरण के लिए अप्रशिक्षित श्रमिक तथा वितरण के आधार पर होने वाली कुल लाभों को अतिरिक्त भार दे दिया जाए।

3. **राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर (Increased Rate of National Income)-** आजकल राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर को बढ़ाना एक महत्वपूर्ण नीति उद्देश्य हो गया है। इसकी प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि अगर दी गई उपभोग एवं आय का स्तर अनुकूल है तो उच्च वृद्धि पर निस्देह बेहतर है। यह भविष्य में उपभोग की संभावनाओं का सूचक है। तथापि यह कुछ अनावश्यक ही लगता है कि वृद्धि दर को एक पृथक उद्देश्य माना जाए जबकि समस्त भविष्य उपभोग प्रवाह को पहले से कुल उपभोग लाभ के माप में सम्मिलित कर लिया गया है।
4. **रोजगार स्तर (Status of Employment)-** रोजगार के स्तर पर विस्तार अथवा अधिक विशिष्ट रूप से कहें तो बेरोजगारी में कमी एक अच्छी निशानी मानी जाती है। बेरोजगारी को मानवीय गरिमा के विरुद्ध माना जाता है, एवं इसमें कमी को कुल उपभोग एवं उसके वितरण के विचारों को ध्यान किये बिना अधिक वरीयता दी जा सकती है। तब बेरोजगारी का आकार लागतों का माप हो सकता है यानी कि ऋणात्मक लाभों का। तब बेरोजगारी में कमी को एक पृथक उद्देश्य के रूप में देखा जा सकता है।
5. **आत्मनिर्भरता (Self Dependence)-** बहुत से विकासशील राष्ट्र, धनी राष्ट्रों पर अत्यधिक निर्भर होते हैं क्योंकि अपने आर्थिक विकास प्रयासों में उनके पास बचतों अथवा विदेशी मुद्रा की चिरकालिक कमी होती है। विदेशी राष्ट्रों पर निर्भरता को कम करने एवं आत्म निर्भरता को एक लक्ष्य के रूप में देखा जाता है। एक परियोजना आत्म निर्भरता में सहायता प्रदान कर सकती है जबकि दूसरी परियोजना अन्य राष्ट्र पर निर्भरता को और अधिक बढ़ा सकती है। एक अपरिष्कृति परंतु सरल उदाहरण है व्यापार घाटे की माप, यानी आयात एवं निर्यात के मध्य अंतर। यह सामान्य पूंजी हस्तांतरणों को छोड़ देता है परंतु यह एक देश के अन्य देश पर निर्भरता का प्रथम समीपवर्ती संकेतक हो सकता है। हाल ही के वर्षों में आत्मनिर्भरता काफी चर्चित होने लगी है। बहुधा यह व्यापार संतुलन के घाटे द्वारा मापी जाती है, एवं कभी-कभी यह भुगतान संतुलन के घाटे के रूप में भी मापी जाती है, जिसमें संतुलित कार्रवाई को नहीं दर्शाया जाता है।
6. **उत्कर्ष आवश्यकताएं (Important Needs)-** रोजगार एवं आम निर्भरता लक्ष्यों के वह उदाहरण हैं जिनके राष्ट्रीय महत्व को व्यक्तियों के उपभोक्ता रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता। सामान्यतः हम इन लक्ष्यों को उत्कर्ष आवश्यकताएं कहते हैं। परियोजना की अन्य विशेषताओं, जिनमें विशिष्ट उपभोक्ता वस्तुएं भी सम्मिलित हैं, को विशेष ध्यान देने योगय माना जा सकता है क्योंकि इसका राष्ट्रीय महत्व जो उपभोक्ता सोचते हैं उससे कहीं अधिक है। एक पिछड़े हुए ग्रामीण समाज में, लोग शिक्षा (विशेषतः बालिका शिक्षा) पर धन व्यय करने में हिचकते हैं, परंतु लोक नीति इनके विकास के लिए कार्य करती है, चाहे इसे पाने वाले व्यक्ति इस सेवा पर खर्च करने से हिचकते हैं। शिक्षा को एक विशेष उत्कर्ष आवश्यकता समझा जा सकता है। सामाजिक वानिकी एवं पर्यावरण प्रदूषण को रोकना भी इसी श्रेणी में आते हैं। उत्कर्ष आवश्यकताएं लोक नीति में बहुधा महत्वपूर्ण होती हैं, इनका संबंध औद्योगिक परियोजना की अपेक्षा सामाजिक परियोजना में ज्यादा है।

कई अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य की भी सूची बनाई जा सकती है परंतु अधिकांश महत्वपूर्ण उद्देश्यों का यहाँ उल्लेख किया जा चुका है। अब केवल एक ही प्रश्न बाकी रहा है वह है इन विभिन्न प्रकार के लाभों को एक एकीकृत माप में ढालने का है। इसकी अगले भाग में व्याख्या की गई है।

2.2.5 सकल राष्ट्रीय लाभदेयता (Net National Benefits)

माना कि B प्रकार 1 लाभ का माप है, तथा B दूसरे प्रकार 2 का। यह लाभों की सरंचना का संकेत करते हैं। परंतु हम इस चित्राण को लाभों के एक सरल एकीकृत माप में किस प्रकार से परिवर्तित कर सकते हैं? इनका योग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह भिन्न इकाइयों में है; उदाहरण के लिए यह संभव नहीं है कि हम दस लाख रुपये के कुल उपभोग का 2.000 के अतिरिक्त रोजगार के साथ योग करें एवं एक अर्थपूर्ण अंक मिल जाये। स्पष्टतः कोई ऐसा तरीका ढूंढना होगा जो लाभों के विभिन्न मापों को इकाइयों के एक माप में परिवर्तित कर सकें। कुल लाभ साधारण विशिष्ट लाभों का भारित योग होते हैं, भार उस दर को दर्शाते हैं जिस पर हम एक प्रकार के लाभ का अन्य के लिए प्रतिस्थापन करने को तैयार होते हैं। परंतु क्या यह भार स्थिर होने चाहिए। स्पष्ट रूप से नहीं, क्योंकि एक प्रकार के लाभ का सापेक्षिक महत्व देश में उसकी उपलब्धता की राशि पर निर्भर करेगा। अगर एक निर्धन क्षेत्रा को समुचित निवेश प्राप्त हो रहा है, तो वह क्षेत्रा धनी क्षेत्रा में परिवर्तित हो जायेगा तथा वह उच्च मूल्य जो कि हम उस क्षेत्रा की आय अथवा उपभोग पर लगाना चाह रहे थे अब कम किया जा सकता है। एक परियोजना संपूर्ण देश के लाभों के समस्त विवरण को क्रांतिकारी रूप में प्रभावित करने के लिए बहुत छोटी हो सकती है। एक निर्धन क्षेत्रा में एक छोटी परियोजना उसके लिये लाभदायक तो हो सकती है, परंतु फिर भी उसकी प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने में उतना सक्षम नहीं होगी कि वह देश की प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने के अनुपात में बढ़ सके। उसी प्रकार से, एक परियोजना देश में बेरोजगारी को तो कम कर सकती है, परंतु जब तक वह एक विशाल परियोजना न हो, वह बेरोजगारी के अनुपात को वहीं रहने देती है। ऐसा हो सकता है कि कई परियोजनाएं एक साथ मिलकर बेरोजगारी के अनुपात को घटा सकती हैं, अथवा उस निर्धन क्षेत्रा की प्रति व्यक्ति आय के अनुपात को देश के प्रति व्यक्ति आय के समान ला सकती हैं, परंतु इसके लिये एकीकरण एवं सामन्वय की आवश्यकता है। जो कि व्यक्तिगत परियोजना चयनकर्ता द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती, उसे राष्ट्रीय स्तर पर ही पाया जा सकता है। वास्तव में भारों का चयन, जो कि राष्ट्रीय मापदण्डों के दृष्टिकोण में देखे जा सकते हैं, इन प्रभावों का संपूर्ण आधार देखना होगा।

इस संचालन एवं एक बड़े प्रतियोगिता बाजार में एक बड़ी फर्म द्वारा किये गये चयन के मध्य एक (फोटो कापी पढ़ने में नहीं आ रहा) पूर्व निर्धारित बाजार दामों पर अपनी मछली बेचने को तैयार हो जाता है क्योंकि उसके उत्पादन बाजार भाव को प्रभावित करने के लिए बहुत कम है। तथापि अगर सभी मछुआरे एक साथ मिल जायें तो उनका उत्पादन कीमतों को आधारभूत रूप से प्रभावित पर सकेगा। व्यक्ति मछुआरे की भूमिका व्यक्तिगत परियोजना विश्लेषक के अनुरूप है जबकि बाजार की भूमिका केंद्रीय नियोजन के समरूप है।

एक बार अगर भविष्य का उपभोग स्तर वर्तमान उपभोग स्तर के समान मूल्यों में परिवर्तित कर लिया जाये, तो हम उस सकल उपभोग की इकाई का उपयोग वर्तमान उपभोग की इकाई के समान मान सकते हैं। अगर हम वर्तमान उपभोग को अपनी सामान्य खाता इकाई के रूप में स्वीकारें तो हम सकल उपभोग के संबंध में अन्य लाभों पर ध्यान देंगे। हम अपनी खाता इकाई का चुनाव अपनी सुविधा के अनुरूप करते हैं परंतु वर्तमान अथवा सकल उपभोग को खाता इकाई मान लेने के कुछ लाभ अवश्य है। अब हम परिकलन की मूर्त समस्याओं पर आ रहे हैं तथा परियोजना के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की स्पष्ट आवश्यकता को पीछे छोड़ आये हैं। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषक आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन का एक लोकप्रिय ढांचा प्रदान करते हैं

आइये आगे की चर्चा में हम उसकी धारणा, निर्णय मापदंड एवं प्रक्रिया की व्याख्या करें।

2.2.6 सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण (Social Cost Benefit Analysis)

सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण व्यापक अर्थों में परियोजना के कार्यान्वयन से हुए सभी अपेक्षित परिवर्तनों (उदाहरणतः आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी) का विशेष विवरण देता है। यह परियोजना के निवेश एवं

उत्पादन के रूप में देखे जा सकते हैं ताकि प्रत्येक की एक कीमत लगाई जा सकती है। चूंकि यह निवेश एवं उत्पादन कई वर्षों में वितरित होते हैं यानी कि, परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान होने वाले निवेश एवं उत्पादन के प्रवाह को संयुक्त करना आवश्यक हो जाता है। यहाँ पर मुद्रा का समय मूल्य प्रासंगिक हो जाता है तथा एक समुचित कटौती दर की आवश्यकता महसूस होती है। वर्तमान शुद्ध मूल्य अथवा आतंरिक प्रतिफल दर अथवा लाभदायकता सूचकांक अथवा लागत लाभ अनुपात के समान किसी निर्णय मापदंड की आवश्यकता किसी परियोजना को अंतिम रूप से स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने की होती है।

सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के लिए प्रणालीबद्ध दिशा निर्देश अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों जैसे कि यूरोपियन देश विकास संघ एवं संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ द्वारा विकसित किये गये हैं। भारत में 1975 में योजना आयोग ने औद्योगिक परियोजनाओं की व्यवहार्यता का प्रतिवेदन बनाने के लिए दिशा निर्देश तैयार किये थे। भारत सरकार के सिचाई मंत्रालय ने 1980 में सिंचाई एवं बहुउद्देश्य परियोजनाओं का विस्तृत परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने के लिए दिशा निर्देश दिये थे। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) ने लोक निवेश मंडल प्रक्रिया के विषय पर अपने कार्यालय ज्ञापन पत्रा दिनांक 23 अगस्त 1984 में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण की प्रयुक्ति का उदाहरण दिया है। पर्यावरण विभाग ने भी एक उपचारार्थ तैयार किया है जिससे बहुउद्देशीय परियोजना के पर्यावरण संबंधी पहलुओं को आंका जा सके। यह स्पष्ट है कि सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण को प्रयुक्त करने के लिए हमें विभिन्न अभिकरणों द्वारा दिए गये दिशा निर्देशों का पालन करना होता है। आइये हम सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के एक सामान्य ढांचे की व्याख्या करें। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के एक व्यवस्था बद्ध प्रयोग में सामान्यतः निम्नलिखित बातें शामिल होती हैं:

1. • परियोजना के आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी निवेशों एवं उत्पादनों की माप,
2. • परियोजना के निवेशों एव उत्पादनों पर सामाजिक एवं लेखा या 'छाया कीमते लगाना,
3. • उपयुक्त सामाजिक ब्याज दर का चुनाव करना,
4. • परियोजना की सामाजिक लाभदेयता का आकलन करना

आइये हम उपरोक्त पहलुओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।

2.2.6.1 लागत एवं लाभ की माप (Measurement of Cost and Benefit)

व्यापक रूप से परियोजना के आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण लाभ एवं लागतें तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम वर्ग में वह लाभ एवं लागतें आती हैं जिनका परिमाण बताया जा सकता है। तथा मौद्रिक रूप से भी परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, एक जल विद्युत परियोजना से विद्युत की पूर्ति के रूप में होने वाले लाभ का परिमाण उत्पादित एवं वितरित विद्युत के रूप में किया जा सकता है। इन्हें प्रति इकाई बिजली की दर जो कि परियोजना अधिकारियों द्वारा ली जाती है, के अनुसार मौद्रिक रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है। द्वितीय प्रकार के लाभ एवं लागतें वह होते हैं जिनका परिमाण तो बताया जा सकता है, परंतु मौद्रिक रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए अगर जल विद्युत परियोजना के भाग के रूप में पानी एकत्रित करने के लिए एक बांध का निर्माण किया जाता है जिससे कि उस पानी को लाकर विद्युत उत्पादन के लिए जनरेटर

पर डाला जा सके, तो बांध में एकत्रित जल द्वितीय वर्ग के लाभ प्रदान करेगा। अगर यह मालूम चले कि बांध एक बाढ़ पीड़ित क्षेत्रा में है तथा बाढ़ को पुनरावृति के कारण उस क्षेत्रा में दस जीवन प्रतिवर्ष नष्ट हुआ करते थे। अब बांध पानी एकत्रित करके क्षेत्रा को बाढ़ से बचायेगा और प्रतिवर्ष दस जीवनों की भी रक्षा करेगा जो पहले बाढ़ के कारण नष्ट हो जाते थे। इस मामलें में इसका लाभ प्रति वर्ष दस जीवन भी होगा जो मापा तो जा सकता है परंतु मौद्रिक रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यह अत्यंत ही कठिन है कि बचाये गये जीवन को एक ऐसा मौद्रिक मूल्य दिया जाए जो सामाजिक रूप से स्वीकृति हो। लाभों एवं लागतों का तीसरा वर्ग भी है जिसका न तो परिमाण बताया जा सकता एवं न ही मौद्रिक रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। अगर हम अपने जल विद्युत परियोजना के अंतर्गत बनाये गये बांध के उदाहरण को आगे बढ़ाये तो वह पर्यावरण को खूबसूरत बनाकर लाभ प्रदान करेगी क्योंकि जल की उपलब्धता से प्रकृति सौन्दर्य में भी वृद्धि होगी। तथापि समाज को प्राप्त यह लाभ अमूर्त प्रकृति के होंगे जिनका न तो परिमाण ही बताया जा सकेगा और न ही मौद्रिक रूप में परिवर्तित किया जा सकेगा।

एक परियोजना से होने वाले लाभों एवं लागतों को इन तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। तथापि, जैसे-जैसे हम अपने अनुसंधान को आगे बढ़ाते एवं अपने ज्ञान में वृद्धि करते हैं, एक श्रेणी की लागतें एवं लाभ दूसरी श्रेणी में ले जाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, बांध द्वारा प्राप्त अमूर्त लाभ जो कि बंजर पथरीली पहाड़ी क्षेत्र को हरे भरे क्षेत्र में परिवर्तित कर पर्यावरण के सौदर्य में वृद्धि करेगा जो अपरिमाणक था। यदि हम यह अनुमान लगा पायें कि इस प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिए कितने पर्यटक उस क्षेत्रा में आने लगे हैं, तो इसे मापा जा सकता है। अतः उस लाभ का परिमाण उस क्षेत्र में आने वाले पर्यटकों की संख्या से लगाया जा सकेगा। अगर और अधिक अनुसंधान किया जाये तो हमारी जानकारी में सुधार एव वृद्धि हमें यह बतला सके कि उस क्षेत्र में आने वाले पर्यटक से कितना चुंगी कर अथवा प्रवेश शुल्क लिया जायेगा तथा यह अनुमान परिमाणित लाभ को मौद्रिक रूप में परिवर्तित करने में हमें सहायता प्रदान करेगा।

इस प्रकार एक श्रेणी में लागतों एवं लाभों की दूसरी बेहतर परिणाम योग्य सूची में ले जाने की प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि लागतों एवं लाभों को परिमाणित करने एवं मौद्रिक रूप से परिवर्तित करने के प्रयास चलते रहेगें। योजना आयोग द्वारा तैयार की गई लोक क्षेत्रा परियोजना के व्यवाहार्यता अध्ययन के लिये नियमावली ने निम्न मुख्य मूर्त घटकों को बताया है, जिनका एक औद्योगिक परियोजना के राष्ट्रीय लाभों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

1. आयात शुल्क एवं आय।
2. विदेशी विनियम बचतें एवं आय।
3. साधनों के अतिरिक्त उपयोग जैसे कि श्रम, अतिरेक ईंधन जिनमें कि पूंजी पहले ही निवेश की जा चुकी है। राष्ट्र के प्राकृतिक साधन जैसे कि भूमि, वन, नदियाँ एवं खनिज सम्पदा इत्यादि।
4. क्षेत्रीय उद्योगों का सहायक उद्योगों के रूप में विकास।
5. राष्ट्रीय सुरक्षा के लाभ क्योंकि कई उद्योग जैसे कि जहाजरानी, विद्युत उपकरण, वायु परिवहन राष्ट्रीय सुरक्षा के निर्माण में प्रत्यक्ष रूप से लाभदायक होते हैं।

नियमावली यह भी कहती है कि इन घटकों के अलावा ऐसे कई असंख्य अभूर्त लाभ है जिनका परिमाण मौद्रिक रूप में नहीं आंका जा सकता। व्यवहार्यता प्रतिवेदन में इन कारकों पर भी बातचीत की जानी चाहिए।

2.2.6.2 छाया कीमतें (Shadow Prices)

एक परियोजना की लागतों एवं लाभों का अनुमान लगाने के लिए निवेशों का लागत के रूप में परिवर्तन कीमत प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। परियोजना के वह लाभ जो मापनीय है तथा मौद्रिक रूप में परिवर्तित किये जा सकते

हैं, वह भी कीमतों की मदद से मौद्रिक लाभों में परिवर्तित किये जाते हैं। आगतों को लागतों एवं निर्गतों का लाभों में परिवर्तन करने के लिए किन कीमतों का उपयोग किया जाता है यह सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के रूप का एक महत्वपूर्ण सीमा तक निर्धारण करता है। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण में उपयोग के लिए प्रासंगिक कीमतों के छाया कीमतें अथवा सामाजिक कीमतें या योजना कीमतें अथवा लेखा कीमतें भी कहा जाता है।

प्रचलित बाजार कीमतें सही आभाव मूल्यों को नहीं दर्शाती। उदाहरण के लिए, अगर एक टन उर्वरक उत्पादन करने के लिए 2.000 रुपये लगते हैं, तो उसकी छाया कीमतें भी 2.000 रुपये प्रतिटन ही होनी चाहिए चाहे वह किसानों को 1500 रुपये प्रतिटन की अनुदानित कीमत पर दिये जा रहें हों। एक अन्य उदाहरण, अगर विदेशी विनियम की प्रचलित दर आधिकारिक रूप से निश्चित दर से अधिक है तो देश में निर्यात की कीमत कम करके बताई गई है। ऐसे मामले में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण में उपयोग की गई कीमत आधिकारिक विनियम दर से अधिक होगी। एक वस्तु की कीमतें निर्धारित करते समय बाजार कीमतों से कर हटा दिए जाते हैं, क्योंकि यह हस्तांतरण भुगतान समझे जाते अतः यह सामाज पर लागत नहीं है।

कीमतों का निर्धारण परियोजना अधिकारियों के स्वविवेक पर नहीं छोड़ा जाता, अपितु यह केंद्रीकृत नियोजन अभिकरण जैसे कि भारत के योजना आयोग द्वारा किया जाता है। छाया कीमतों की प्रणाली के अनुसार, वह वस्तुएं जो विदेशी व्यापार में शमिल की जा सकती है। उनका मूल्य सीमा कीमतों पर लगाया जाता है। वह वस्तुएं जो कि आयात की जा सकती है उनका मूल्य उनकी लागत बीमा वहन शुल्क कीमत पर लगाया जाता है। वह वस्तुएं जो कि अन्य देशों को निर्यात की जा सकती है का मूल्य शीर्षान्तर कीमत पर लगाया जाता है।

गैर व्यापारिक वस्तुएं अधिकांशतः एक परियेजना के आगत एवं निर्गत होते हैं। तथा व्यापारिक वस्तुओं की परियोजना कीमतों के घटक भी होते हैं। ऐसी वस्तुओं के लिये कोई प्रासंगिक सीमा कीमत नहीं होती। ऐसी वस्तुओं का सामाजिक मूल्य उनकी सीमांत लागत के आधार पर निकाला जाता है, जो कि व्यापारिक वस्तुओं एवं श्रम को विभाजित किया जाता है। अगर उत्पादन लागत में गैर व्यापारिक वस्तुएं भी हैं तो वह भी विभाजित की जाती हैं तथा पारस्परिक श्रम एवं करों में घटा दिया जाता है। यहाँ पर श्रम में निजी आय प्राप्त करने वाले समस्त घेरलू व्यक्तियों को शामिल कर लिया गया है। इसमें सरकारी नहीं परंतु स्वतंत्रा हित का ध्यान रखा जाता है।

फिर व्यापारिक वस्तुओं पर उनकी प्रासंगिक सीमा कीमतें लगा दी जाती हैं तथा श्रम की सामाजिक मजदूरी दर अथवा श्रम की सामाजिक अवसर लागत, जो कि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित श्रम के लिए पृथक रूप से लगाई जाती है। परियोजना आगत एवं निर्गत का मूल्य विश्व कीमतों पर निर्धारित करने के पीछे क्या तर्क है ? इसकी तार्किकता इस तथ्य पर आधारित है कि विकासशील देशों में परियेजना की प्रासंगिक कीमतें (लाभ) अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आगत (निर्गत) के विनियम की अवसर लागतें हैं। अन्य शब्दों में विश्व कीमतें विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की अवसर लागत को दर्शाती हैं। अगर अर्थव्यवस्था का संचालन इस प्रकार से करना है कि सामाजिक लाभ अधिकतम हो, तो विश्व कीमतें प्रचलित होंगी (इसमें से कुछ सीमाओं को घटाना होता है

जैसे कि कर एवं सीमा शुल्क संरचनाएं इत्यादि) वस्तुओं का मूल्य सीमा कीमतों पर आंकने का एक तर्क यह है कि हम अनुकूलतम परिस्थिति के अनुरूप काम कर रहे हैं तथा यह मानते हैं कि अर्थव्यवस्था उस अनुकूलतम स्थिति की ओर बढ़ रही है। स्पष्टतः एक देश के लिए यह सर्वोत्तम लाभ होगा कि वह वस्तुओं का निर्यात तब करे जब ऐसी वस्तुओं की उत्पादन लागत शीर्षान्तर कीमत के बराबर अथवा उससे कम है। इस तरह, उन वस्तुओं के उत्पादन की भी कोई आर्थिक न्यायसंगता नहीं होगी जिनकी घेरेलू उत्पादन लागत लागत-बीमा-वाहन शुल्क कीमत से अधिक है।

सैद्धांतिक रूप से कीमतों का उपयोग लेखा कीमतों के अनुरूप करने का तर्क त्रुटिहीन लगता है, क्योंकि इससे वस्तुओं के उत्पादन में अधिकतम कार्य क्षमता प्राप्त करने एवं अनुकूलतम व्यापार के परिणाम आने की अपेक्षा

होती है। यद्यपि कई अर्थशास्त्रियों द्वारा इस उपागम की आलोचना की गई है। आलोचना का मुख्य दबाव दो बिंदुओं पर है जो एक तरह से अन्तर संबंधित हैं।

पहला तर्क यह है कि विश्व कीमतों का उपयोग खुली अर्थव्यवस्था की मान्यता रखता है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की असीमित तत्परता होती है, तथा यह मान्यता वैध नहीं है। द्वितीय, अगर एक देश अप्रतिबंधित व्यापार के लिए तैयार भी हो जाये तो यह मान्यता कि वह ऐसा कर सकता है, वैद्य नहीं है।

विकासशील देश की सरकारें "खुली" अर्थव्यवस्था को विभिन्न कारणों से अपनाने को तैयार नहीं होती । प्रतिबंधित व्यापार नीति के पक्ष में शैशव उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करना एक महत्वपूर्ण तर्क है। विदेशी बाजारों पर भारी निर्भरता जोखिम हो सकती है। खुलेपन का विस्तार कई घटकों से सीमित होता है। जैसे कि निर्यात का आलोचदार मांग वक्र अन्य सरकारों की व्यापार नीतियाँ उत्पादन बढ़ाने के लिए स्थानीय उद्योगों द्वारा महसूस किये गये पूर्ति अथवा मांग के दबाव इत्यादि।

उपरोक्त घटक महत्वपूर्ण हैं तथा विकासशील देशों की कुछ वस्तुओं की व्यापारशीलता को प्रभावित करता है। परंतु आधार उपागम वैध रहता है। विशिष्ट समस्याओं अथवा अपवादों से हमें तर्क के आवश्यक बिंदुओं को अनेदेखा नहीं कर देना चाहिए। सीमा कीमतों का उपयोग साधारण रूप से इसलिये किया जाता है क्योंकि वह एक देश के लिए उपलब्ध अवसरों को बताती है तथा उन वास्तविक शर्तों का भी उल्लेख करती है जिन पर वह व्यापार कर सकता है।

2.2.6.3 सामाजिक भार (Social Weights)

ऐसा हो सकता है कि एक परियोजाना ऐसे लागत एवं लाभ प्रदान करें जिनका समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता हो। इससे न्यायपूर्ण वितरण की समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। परियोजना विश्लेषण में इन विचारों का समागम सामाजिक भारों के उपयोग से किया जा सकता है। यह भार एक योग्य सत्ता द्वारा सामाजिक प्राथमिकताओं के आधार पर दिये जाते हैं। अगर समाज के एक निर्धन वर्ग को होने वाले लाभों को धनी वर्ग के होने वाले लाभ की तुलना में अधिक मूल्यवान समझा जाता है तब उन लाभों को एक सुयोग्य भार से गुणा किया जा सकता है तथा धनी वर्ग के लिए वही लाभ रखे जा सकते है। उदाहरण के लिए, अगर एक परियेजना निर्धन वर्ग को 1000 रुपये का लाभ प्रदान करती है एवं अन्य वैकल्पिक योजना धनी वर्ग को 1000 रुपये का वैसा ही लाभ प्रदान करती है तो निर्धन वर्ग को होने वाले लाभ को एक सुयोग्य भार, जैसे कि 2, 2.5, 3 इत्यादि से गुणा किया जा सकता है जिससे कि यह निर्णय निर्माताओं की धनी वर्ग की तुलना में निर्धन वर्ग की उच्च प्राथमिकता को दर्शाता है। सामाजिक भार का निर्धारण करने के लिए काफी मात्रा में अनुभव की आवश्यकता होती है तथा यह केंद्रीय नियोजन अभिकरण का उत्तरदायित्व होता है।

2.2.6.4 सामाजिक ब्याज दर (Social Interest Rate)

मुद्रा के समय मूल्य को सही रूप में दर्शाने वाली ब्याज दर के चुनाव की सामाजिक मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका होती। अगर कर लगाने के उद्देश्य के लिए आयातित एवं निर्यातित वस्तुओं के मध्य कोई विभेदीकरण नहीं है तथा अगर सामाजिक मजदूरी पर वास्तविक मजदूरी दर से बहुत कम नहीं है तो प्रतिफल दर (बाजार कीमतों पर) जो कि अर्थव्यवस्था में वर्तमान पूंजी निवेश पर पाई जा रही है एक अच्छी सामाजिक ब्याज दर हो सकती है। परंतु बहुत से विकासशील देशों में यह दोनों शर्तें व्यवहार में लागू नहीं होती। सैद्धांतिक तौर पर समुचित सामाजिक ब्याज दर पूंजी की समुचित सामाजिक लागत। अगर सभी संभावित परियोजनाओं को लागू कर दिया जाए, तो इस दर की प्राप्ति संभव है। इसके साथ ही साथ अगर अर्थव्यवस्था की तमाम पूंजी का निवेश कर दिया जाए तो यह दर प्राप्त सकती है। यह दर समाज को प्राप्त होने वाली वर्तमान एवं भविष्य प्रतिफल के मध्य का अवसर एवं बचतों के उपयोग से प्राप्त होने वाली राशि को दर्शाती है। तथापि एक विशिष्ट औसत ब्याज दर पर कठोर दबाव नहीं होना

चाहिए और यह सामाजिक लागत एवं लाभ विश्लेषण के प्रारंभिक चरणों में ऊपर या नीचे समायोजित की जा सकती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. .... एवं .... लाभ एवं लागतें तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं।
2. मजदूरी की दर श्रम की सामाजिक अवसर लागत के .... होती।
3. अंतिम तथा अत्यधिक मुश्किल घटक ....है।
4. सीमा शुल्क एवं प्रतिबंध जो ....लगायें जाते हैं।

2.3 सारांश

इस इकाई में सामान्य रूप से परियोजना मूल्यांकन से संबंधित गैर-वित्तीय विचारों उदाहरणतः आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी विचारों पर प्रकाश डाला गया है। वित्तीय मूल्यांकन की सीमाओं को बतलाया गया है एवं सामाजिक संदर्भ में अधिक प्रासंगिक आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की प्रकृति को समझाया गया है।
सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की सरल एवं प्रचलित तकनीक है। गैर-वित्तीय विचारों को परियोजना विश्लेषण एवं मूल्यांकन में सम्मिलित करने के लिए सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण की प्रणाली को उदाहरण सहित दर्शाया गया है। इस प्रणाली के महत्वपूर्ण संघटकों जैसे कि लागत एवं लाभों की माप, छाया कीमतों, सम्परिवर्तन घटकों सामाजिक भार एवं सामजिक ब्याज दर को संपूर्ण रूप से दर्शाया गया है। इकाई के अंत में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण तुलना पत्र के विवरण एवं परियोजना चुनाव के संदर्भ में निर्णय निर्माताओं की न्याय शक्ति की भूमिका को भी पहचाना गया है।

2.4 शब्दावली

पूँजी बाजार- पूँजी बाजार का संबंध खरीद, बिक्री और स्टॉक एवं बॉड से संबंधित विभिन्न संस्थाओं और व्यवस्था से है।
आर्थिक सहायता- उत्पाद की कीमत में वृद्धि रोकने के लिए एक या अधिक कंपनियों को या उद्योग की कंपनी को गिरने से रोकने हेतु सरकार द्वारा किया गया भुगतान है।

2.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण, **2.** समान नहीं, **3.** निगम कर, **4.** आयात पर

2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dasgupta, A.K. and Pearce, D. W., 1972, Cost-Benefit Analysis-Theory and Practice, Macmillan, London.
2. Layard, R. (ed.), 1 972, Cost-Benefit Analysis, Penguin, Harmonsworth.
3. Little, I.M.D. and Mirrlees, J.A., 1990. Project Appraisal and Planning for Developing Countries, Heinemann Educational Books, London.
4. Pearce, D. W, and Nash, C.A., 198 1. The Social Appraisal of Projects: A Text in Cost Benefit Analysis, Macmillan, London.
5. Perkins, Frances. 1952, Practical Cost-Benefit Analysis: Basic Concepts and Applications, Macmillan, Australia.

6. Squire, L. and Van der Tak, H.G., 1975, Economic' Analysis of Projects, Johns Hopkins University Press, Baltimore.
7. UNIDO, 1972. Guidelines for Project Evaluation, United Nations, New York.

2.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. C.P. Kindleberger and Herick, Economic Development, 2/e, 1965.
2. Simon Kuznets, 'Economic Growth and Income Inequality, "AER. March, 1955.
3. Simon Kuznets, "Qualitative Aspects of Economic Growth of Nations: Distributions of Income by Size, "Economic Development and cultural Change, January 1963.

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. परियोजना विकास, मूल्यांकन और क्रियान्वयन में लागत-लाभ विश्लेषण की भूमिका के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. वित्तीय विश्लेषण और आर्थिक विश्लेषण के बीच भिन्नता बताए।
3. सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण के उद्देश्यों के प्रयोजन पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 3 भारत में विनिवेश, उद्देश्य एवं चुनौतियाँ

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
16.2 विनिवेश: परिचय
3.3 विनिवेश के लिए तर्क/औचित्य
3.4 विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य
3.5 विनिवेश की संगठनात्मक संरचना
3.6 विनिवेश की प्रक्रिया
3.7 विनिवेश के तौर-तरीके
3.8 विनिवेश का ढांचा/तंत्र
3.9 विनिवेश की प्रणाली
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

भारत में सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना उच्च आर्थिक विकास, वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता, और कीमतों में स्थायित्व आदि उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए की गई थी। भारत में सार्वजानिक क्षेत्र में सुधार समय की माँग है। आज वास्तव में आवश्यकता इस बात पर बल देने की है कि जिन उद्देश्यों को ध्यान में रख कर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना की गई थी उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार को व नीति निर्माताओं को दृढ संकल्प से कार्य करना चाहिए ताकि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की गरिमा को बनाया रखा जा सके। साथ ही भारतीय उद्योगों को और अधिक कुशल और विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए उदारीकरण को अपनाना ही होगा। विनिवेश से प्राप्त राशि का उपयोग राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए न करके इसका उपयोग सामाजिक क्षेत्र की योजनाओ में किया जाए जिससे कि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार को बढ़ावा मिल सके। इस इकाई में आप विनिवेश की प्रकृति व क्षेत्र, विनिवेश के लिए कौन कौन से तर्क हैं व विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य का अध्ययन करेंगे साथ ही विनिवेश की प्रक्रिया व विनिवेश के तौर-तरीकों व विनिवेश का ढांचे व प्रणाली के बारे में भी जानेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विनिवेश की प्रकृति व क्षेत्र को समझ पायेंगे।
- विनिवेश के लिए कौन कौन से तर्क हैं व विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य कौन कौन से हैं, की व्याख्या कर पायेंगे।

- विनिवेश की प्रक्रिया व विनिवेश के तौर-तरीकों का वर्णन कर सकेंगे।
- विनिवेश का ढांचे व प्रणाली को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.2 विनिवेश: परिचय

विनिवेश एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसई) में अपने हिस्से या कुल इक्विटी को वापस लेती है। सार्वजनिक क्षेत्र के सम्बन्ध में मोहभंग 1970 में शुरू हुआ था। कई देशों में यह देखा गया कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (PSE) का प्रदर्शन अपेक्षाओं से बहुत कम था। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसई) की कमजोरी और दोष/कमियां कई देशों में सरकार और अर्थव्यवस्था के लिए गंभीर खतरे के साथ प्रकट होने लगे, जिनका कोई हल नहीं था। 1980 के मध्य तक वैश्विक स्तर पर राजनीतिक विकल्प यह इस बात पर विचार कर रहा था कि सरकार की आर्थिक गतिविधि के कारण उत्पन्न जीएनपी के अनुपात को कम किया जाना चाहिए और व्यावसायिक गतिविधियों को यथासंभव निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जाना चाहिए। 1980 के दौरान, सोवियत ब्लॉक की समाजवादी अर्थव्यवस्था का पतन, रूस, पूर्वी यूरोपीय देशों और चीन द्वारा आर्थिक सुधार की शुरूआत के साथ, जनता के लाभ के लिए हर वाणिज्यिक गतिविधि में सरकार के हस्तक्षेप को कम करना शुरू कर दिया। भारत, लगभग चार दशकों से विकास के मार्ग पर चल रहा था, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र से विकास का इंजन होने की उम्मीद थी। अस्सी के दशक के मध्य तक उनकी छोटी-छोटी कमियों और कमजोरियों ने कम क्षमता के उपयोग, कम दक्षता, प्रेरणा की कमी, ज्यादा समय और लागत की अधिकता, नवाचार करने में असमर्थता और त्वरित निर्णय लेने, निर्णय लेने आदि में राजनीतिक और नौकरशाही के बढ़ते हस्तक्षेप के रूप में अपना प्रभाव प्रकट करना शुरू कर दिया। लेकिन इन दोषों को दूर करने और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर को बढ़ाने की कोशिश के बजाय, धीरे-धीरे आत्मनिर्भर विकास की अवधारणा को एक शांत दफन दिया गया। सरकार ने आयात को कम करने या चरणों में आयात शुल्क को वापस लेना शुरू कर दिया। इसके परिणामस्वरूप कीमती विदेशी मुद्रा भंडार घटने से लेकर निम्न स्तर तक घटता जा रहा है। विदेशी ऋण अदायगी के संकट ने देश के हित के लिए हानिकारक स्थितियों पर सरकार को RBI के आरक्षित सोने के भौतिक भंडार के विरुद्ध IMF से ऋण लेने के लिए मजबूर कर दिया। इस प्रकार, पीएसयू की 1991 की औद्योगिक नीति के प्रति नीतियों को उलटना शुरू कर दिया, लाइसेंस समाप्त करने की प्रक्रिया शुरू कर दी और 18 उद्योगों को छोड़कर, औद्योगिक लाइसेंस वापस ले लिया गया। बाजार को घरेलू निजी पूंजी के लिए खोला गया और विदेशी पूंजी को उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में 51 प्रतिशत इक्विटी तक मुफ्त प्रवेश प्रदान किया गया। आर्थिक उदारीकरण का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा बढ़ाना और नई फर्मों को बाजार में प्रवेश करने की अनुमति देना था। इस प्रकार पीएसई से अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और पीएसई के क्रमिक विनिवेश पर जोर दिया गया।

विनिवेश का महत्व वास्तव में उससे प्राप्त होने वाली राशि के उपयोग करने में निहित है, यदि इसका उपयोग बढ़ रहे राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए, बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के विकास के लिए व स्वास्थ्य व सामाजिक कार्यक्रमों के लिए वित्त-व्यवस्था करने के लिए किया जाये। आम जनता के लिए सार्वजानिक उपक्रमों की इक्विटी में हिस्सेदारी बढ़ाना भी विनिवेश के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। जहाँ तक विनिवेश से जुटाई गई राशि के उपयोग का सम्बन्ध है, इन निधियों के उपयोग के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि इसका उपयोग बढ़ते राजकोषीय वित्तीय घाटे को कम करने के लिए व बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के वित्त-पोषण के लिए किया जायेगा। साथ ही इस निधि का उपयोग स्वास्थ्य, पानी और शिक्षा जैसी सामाजिक कार्यक्रमों के लिए भी उपयोग किया जायेगा।

1991-92 से 2014-15 तक विनिवेश से प्राप्त राशि रु. 1,77,764 करोड़ है, जबकि इसी अवधि में राजकोषीय घाटा रु. 48,80,887 करोड़ है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि राजकोषीय घाटे का 3.63 प्रतिशत भाग ही विनिवेश के माध्यम से वित्तपोषित किया जा सकता है। विनिवेश के अन्य वर्षों की तुलना में केवल पहले, चौथे और तेहरवें वर्ष में ही विनेवेश से प्राप्त राशि का अनुपात राजकोषीय घाटे की तुलना में सबसे अधिक रहा है। दूसरी ओर इसी अवधि में कुल आंतरिक ऋण रु. 3,61,31,974 करोड़ है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आंतरिक ऋण का औसतन .49 प्रतिशत भाग ही विनिवेश के माध्यम से वित्तपोषित किया गया है। बाजार उधारी के सापेक्ष में विनिवेश से प्राप्त राशि का आंतरिक ऋण के वित्त पोषण में योगदान नगण्य ही रहा है। दुसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आंतरिक ऋणों व राजकोषीय घाटे के लिए वित्त व्यवस्था करने के लिए विनिवेश से प्राप्त राशि का उपयोग करने का निर्णय कारगर साबित नहीं हुआ है। सार्वजानिक क्षेत्र के उपक्रमों के 1991-92-2014-15 के विनिवेश से सरकार को लक्षित रु. 2,80,995 करोड़ की तुलना में रु. 1,77,764 करोड़ ही प्राप्त हुए जो लक्ष्य का 63.26 प्रतिशत ही है। विनिवेश से प्राप्त राशि के उपयोग राजकोषीय घाटे के वित्तपोषण के लिए करना अस्वस्थ/दुखद व अल्पकालिक प्रयोग है। इसके लिए यह सुझाव प्रस्तावित है कि उधार ली गई राशि से राजकोषीय घाटे का वित्तपोषण करना जो कि वर्तमान में प्रचलित है, यह व्यवस्था ही जारी रहनी चाहिए।

प्रायः यह देखा गया है कि प्रतिकूल बाजार की स्थितियाँ, निजी क्षेत्रों के लिए सरकार द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों का आकर्षक न होना, कर्मचारियों व श्रमिक संघों का कड़ा विरोध, व राजनितिक इच्छाशक्ति का आभाव आदि विनिवेश से प्राप्त राशि का वास्तविक लक्ष्य की तुलना में कम रहने के मुख्य कारण माने जाते है।

3.3 विनिवेश के लिए तर्क/औचित्य

सरकारी कर्मचारियों और अंशदानों के ब्याज भुगतान, मजदूरी और वेतन जैसे मदों पर वर्तमान राजस्व व्यय के कारण केंद्रीय बजट वर्ष में राजस्व घाटा कम करने के कारण, सरकारों के पास सामाजिक और भौतिक बुनियादी ढांचे पर पूंजीगत व्यय के लिए किसी भी तरह का अधिशेष मुश्किल से बचा है। सार्वजनिक संसाधनों की भारी मात्रा कई गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में अवरुद्ध हो जाती है, जो अल्प प्रतिफल देती है। निकास मार्ग के अभाव में कई गैर-व्यवहार्य सार्वजनिक उपक्रमों के भरण-पोषण के लिए सरकार आगे के संसाधनों को उपलब्ध करने के लिए बाध्य है। इन सभी सरकारी आर्थिक संकटों के कारण सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी हिस्सेदारी के विनिवेश की स्पष्ट रूप से आगे की कार्रवाई शुरू कर दी गई। विनिवेश या निजीकरण से निम्न में मदद मिलेगी-

1. सामाजिक प्राथमिकता, जैसे- सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, शिक्षा और सामाजिक और आवश्यक बुनियादी ढाँचे के लिए उपलब्ध करने के लिए गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में बंद भारी मात्रा में दुर्लभ सार्वजनिक संसाधनों को जारी करना।
2. सार्वजनिक ऋण को कम करना जो असहनीय अनुपात की चुनौती के रूप में सामने आ रहा है।
3. वाणिज्यिक जोखिम को हस्तांतरित करना, जिससे सार्वजनिक क्षेत्र में बंद करदाताओं का पैसा निजी क्षेत्र में उजागर होता है, जहां भी निजी क्षेत्र इच्छुक है और इस दिशा में कदम रखने में सक्षम है। PSE में तैनात धन वास्तव में सार्वजनिक है। पैसा, और, ज्यादातर मामलों में पूरी तरह से परिहार्य और अनावश्यक जोखिम के संपर्क में है।
4. अन्य मूर्त और अमूर्त संसाधनों को साकार करते हुए, जैसे कि, बड़ी जनशक्ति वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के प्रबंधन में बंद हो गई है और साथ ही उनका समय और ऊर्जा भी उसी में लग रही है, उन क्षेत्रों में पुनर्भुगतान के लिए उपलब्ध हो सकती है जो सामाजिक प्राथमिकता पर बहुत अधिक हैं लेकिन ऐसे संसाधनों की कमी है।

5. विनिवेश से धन का व्यापक वितरण होगा, हालांकि छोटे निवेशकों और कर्मचारियों को निजीकृत कंपनियों के शेयरों की पेशकश की जाएगी ।
6. विनिवेश निजीकरण वाली कंपनियों को बाजार अनुशासन के लिए उदघाटित करेगी, जिससे वे अधिक कुशल बनेंगे और उनकी वित्तीय और आर्थिक ताकत पर टिके रहेंगे। वे पेशेवर तरीके से जवाब देने में सक्षम होंगे। यह पीएसई को सरकार के नियंत्रण से मुक्त करने और निजी कंपनियों में कॉर्पोरेट प्रशासन की शुरुआत करने में भी सुविधा प्रदान करेगा।
7. विनिवेश का पूंजी बाजार पर लाभकारी प्रभाव होगा, निवेशकों को आसानी से बाहर निकलने के विकल्प मिलेंगे, मूल्यांकन और मूल्य निर्धारण के लिए अधिक सटीक बेंच मार्क स्थापित करने में मदद मिलेगी और भविष्य में निजीकृत कंपनियां को उनकी परियोजनाओं या विस्तार के लिए धन जुटाने की सुविधा होगी। ।
8. पूर्ववर्ती सार्वजनिक क्षेत्रों को उपयुक्त निजी निवेशकों के लिए खोलने से आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि होगी और मध्यम से दीर्घावधि में अर्थव्यवस्था में, रोजगार और कर राजस्व पर कुल लाभकारी प्रभाव पड़ेगा, और
9. कई क्षेत्रों में उदाहरण के लिए दूरसंचार क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार का अंत उपभोक्ताओं को अधिक विकल्पों के माध्यम से राहत देगा, और उत्पादों और सेवाओं की सस्ती और बेहतर गुणवत्ता प्रदान करेगा। पीएसई में इक्विटी के विनिवेश की मात्रा को धीरे-धीरे 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत से 76 प्रतिशत और कुछ मामलों में 100 प्रतिशत कर दिया गया। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और सार्वजनिक उपक्रमों के क्रमिक विनिवेश के लिए सार्वजनिक उपक्रमों पर जोर दिया गया।

3.4 विनिवेश के प्राथमिक उद्देश्य

पीई में सरकारी इक्विटी के विनिवेश के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन निम्न प्रकार से हैं (जगदीश प्रकाश राव, 1996. पी. 4 जी)-

1. राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए राजस्व संग्रह बढ़ाने के लिए प्रतिबद्धता के रूप में आईएमएफ को बनाया गया।
2. अधिक जवाबदेही और बेहतर दक्षता सुनिश्चित करना।
3. सरकारी आवश्यकताओं के लिए कुशल संसाधन जुटाना।
4. पीई की इक्विटी में भाग लेने के लिए आम जनता को अवसर प्रदान करने के लिए।
5. कर्मचारी स्वामित्व को प्रोत्साहित और प्रेरित करना।
6. नौकरशाही नियंत्रण को कम करने और पीईएस के प्रबंधन को अधिक स्वायत्तता प्रदान करने के लिए।

विनिवेश पर सरकार की प्रतिबद्धता को 1991-92 और 1992-93 में आर्थिक नीतियों पर विस्तृत ज्ञापन में सरकार द्वारा आईएमएफ को दिसंबर, 1991 में प्रस्तुत किया गया था। इस संबंध में प्रतिबद्धता के प्राथमिक घटक हैं-

- उन क्षेत्रों से बचने के लिए जहां सामाजिक विचार/सरोकार सर्वोपरि नहीं हैं, सार्वजनिक निवेश के मौजूदा पोर्टफोलियो की समीक्षा अधिक समझ के साथ करें ।
- सार्वजनिक क्षेत्र को उन क्षेत्रों में जारी रखा जाना चाहिए जहां उनकी भागीदारी अत्यधिक उपयुक्त है जो स्वायत्तता की अधिक से अधिक डिग्री प्रदान करे।
- पीई को बजटीय हस्तांतरण प्रतिबंधित।

- पीई के लिए बाजार प्रतिस्पर्धा प्रदान करने के लिए।
- बीमार पीई को भारी नुकसान उठाना जारी रखने की अनुमति नहीं होगी।

निजीकरण नीति की वर्तमान दिशा को 9, दिसंबर, 2002 को संसद के दोनों सदनों में रखे गए एक सू-मोटू वक्तव्य में संक्षेपित किया गया है। सरकार ने अपनी नीति की घोषणा की है कि विनिवेश का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय संसाधनों और परिसंपत्तियों को अधिकतम उपयोग में लाना है। विशेष रूप से हमारे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में निहित उत्पादक क्षमता को दिलाने के लिए। विनिवेश की नीति विशेष रूप से लक्षित है-

- सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का आधुनिकीकरण और उन्नयन,
- नई परिसंपत्तियों का सृजन,
- रोजगार सृजन,
- सार्वजनिक ऋण की सेवानिवृत्ति,
- यह सुनिश्चित करने के लिए कि विनिवेश राष्ट्रीय संपत्तियों के क्षरण में परिणत नहीं होता है, जो विनिवेश की प्रक्रिया के माध्यम से, जहां हैं, वहीं बने रहते हैं। साथ यह भी सुनिश्चित करेगा कि विनिवेश से निजी एकाधिकार में न हो।
- एक विनिवेश आय कोष की स्थापना।
- प्राकृतिक परिसंपत्ति कंपनियों के विनिवेश के लिए दिशा-निर्देश तैयार करना।

सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार की वर्तमान नीति की मुख्य विशेषताएं हैं-

- संभावित व्यवहार्य PSE का पुनर्गठन और उनको पुनर्जीवित करना।
- उन PSE को बंद करें जिसे पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है।
- यदि आवश्यक हो, तो सभी गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी इक्विटी को 26 प्रतिशत या उससे कम पर लाएँ,
- श्रमिकों के हितों की पूरी तरह से रक्षा करना।

विनिवेश से संबंधित मुद्दों जिन पर अभी भी बहस चल रही है और जो आने वाले वर्षों में प्रासंगिक रहेंगे। वह निम्न हैं-

- किन क्षेत्रों में विनिवेश नहीं होना चाहिए? क्या रक्षा, उत्पादन और सेवाओं का विनिवेश किया जाना चाहिए और राष्ट्रीय सुरक्षा के मद्देनजर यह किस हद तक वांछनीय है।
- किस हद तक विनिवेश के तरीका को खुला और पारदर्शी बनाया जा सकता है।
- विनिवेश के विभिन्न तरीकों में से किस मार्ग से घोषित उद्देश्यों की पूर्ति होगी?
- क्या विदेशी निजी निवेशकों को पीएसई में हित नियंत्रण हासिल करने की अनुमति दी जानी चाहिए।
- वीआरएस के तहत सेवानिवृत्त होने वाले सक्रिय और सक्षम कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने और पुनः नियोजित करने के लिए सामाजिक सुरक्षा तन्त्र कैसे स्थापित किया जाए।

विनिवेश की प्रक्रिया को तेज करने के लिए, सरकार ने विनिवेश मंत्रालय का एक नया पूर्ण मंत्रालय स्थापित किया। केंद्र में यूपीए सरकार की स्थापना के साथ एनडीए सरकार के दौरान विनिवेश का दौर चरम पर था। वाम

दलों के दबाव में, नई सरकार ने विनिवेश मंत्रालय को बंद कर दिया और इसे वित्त मंत्रालय के तहत एक विभाग में बदल दिया। यूपीए सरकार के सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम ने यह स्पष्ट कर दिया है-

- लाभ कमाने वाला कोई भी पीएसयू का निजीकरण नहीं होगा।
- नवरत्न पीएसयू को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा जाएगा
- हानि की समस्या से झुझ रहे सार्वजनिक उपक्रम के निजीकरण के प्रस्ताव को श्रमिकों के परामर्श से जाना जाएगा।
- कोई निजीकरण नहीं अगर यह एकाधिकार या प्रतिबंधात्मक प्रतियोगिता बनाता है।

3.5 विनिवेश की संगठनात्मक संरचना

सचिव (विनिवेश) को प्रशासनिक मंत्रालयों/विभागों के संयुक्त सचिवों द्वारा भी सहायता प्रदान की जाती है, जो अपने संबंधित मंत्रालयों/विभागों में विनिवेश के तहत सार्वजनिक उपक्रमों का प्रबंधन करते हैं। प्रशासनिक मंत्रालयों से संबंधित संयुक्त सचिव विनिवेश कार्य के लिए सचिव (विनिवेश) के लिए उत्तरदायी हैं। मंत्रालय के सभी विनिवेश का काम कम से कम सहायक कर्मचारियों के साथ अधिकारियों के स्तर पर किया जाता है। विनिवेश आयोग की स्थापना अगस्त, 1996 में भारत सरकार द्वारा प्रत्येक और हर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम (PSE) के विनिवेश की रणनीति, सीमा, कार्यप्रणाली, समय और मूल्य निर्धारण पर सलाह देने के लिए की गई थी। विनिवेश आयोग ने सरकार को रिपोर्ट सौंपी। विनिवेश विभाग की स्थापना अधिसूचना संख्या सीडी/551/99 दिनांक 10-12-1999 के तहत की गई थी, जो विनिवेश की प्रगति को सुव्यवस्थित और तेज करने के लिए नोडल विभाग था। केंद्र सरकार के विनिवेश से संबंधित मामलों के लिए डीओडी को जिम्मेदार बनाया गया था। पीएसयू से इक्विटी और यह पुनर्गठन सहित विनिवेश के तौर-तरीकों पर फैसलों के लिए भी उत्तरदायी है। सूचना संख्या CD-442/2001 के तहत दिनांक 6 सितंबर 2001 को, विनिवेश विभाग का नाम बदलकर विनिवेश मंत्रालय कर दिया गया। मंत्रालय को निम्नलिखित कार्य सौंपे गए हैं-

- केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से केंद्र सरकार की इक्विटी के विनिवेश से संबंधित सभी मामले।
- पुनर्गठन सहित विनिवेश के तौर-तरीकों पर विनिवेश आयोग की सिफारिशों पर निर्णय।
- विनिवेश निर्णयों का कार्यान्वयन, सलाहकारों की नियुक्ति, अंशों के मूल्य निर्धारण और विनिवेश के अन्य नियम और शर्तों सहित।
- विनिवेश आयोग।
- केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम केवल सरकारी इक्विटी के विनिवेश के उद्देश्यों के लिए।

भारत सरकार ने अपना आदेश संख्या 1/11/2002 - 3 सितंबर को तय किया है, जिसमें विनिवेश पर मंत्रिमंडल समिति का गठन किया गया है, जिसकी रचना और कार्य नीचे दिए गए हैं-

संरचना या गठन जिसमें प्रधान मंत्री, उप-प्रधान मंत्री, ऊर्जा मंत्री, कानून और न्याय मंत्री, वाणिज्य और उद्योग मंत्री, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्री, वित्त और कंपनी मामलों के मंत्री, विदेश मंत्री, योजना आयोग के उपाध्यक्ष और विनिवेश मंत्री और उत्तर पूर्वी क्षेत्र के विकास मंत्री।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों से संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय के मंत्री, जिनके प्रस्ताव विचार के लिए आए थे, उन्हें समिति की बैठक में आमंत्रित किया जाएगा।

विनिवेश पर मंत्रिमंडल समिति कार्यों में-

- विनिवेश कार्यक्रम से संबंधित नीतिगत मुद्दों के बारे में सचिवों के मूलभुत समूह पर विचार करना।
- जीडीआर और घरेलू पूँजी बाजार मूल्य के माध्यम से सरकारी शेयरों की बिक्री के लिए प्राइस बैंड तय करने के लिए कार्य करना और सभी मामलों में बिक्री की अंतिम कीमत तय करना।
- लेन-देन के अंतिम मूल्य निर्धारण और रणनीतिक बिक्री के मामले में रणनीतिक भागीदार का फैसला करना।
- ऐसे मामलों के बारे में निर्णय लेने के लिए कि क्या विनिवेश आयोग की सिफारिशों और विनिवेश मंत्रालय के विचारों के बीच असहमति है और
- तीन साल की रोलिंग योजना और हर साल विनिवेश के वार्षिक कार्यक्रम को मंजूरी देना।

ऊपर दूसरे बिन्दु के संबंध में निर्णय वित्त मंत्री, भारी उद्योग और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम (PSE), विनिवेश मंत्री और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम से संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय के मंत्री द्वारा लिया जा सकता है, जिसके सम्बन्ध में विचार करने के लिए प्रस्ताव आया था।

3.6 विनिवेश की प्रक्रिया

विनिवेश प्रक्रिया सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से संबंधित है। इस प्रक्रिया में ऐसे अंशो का मूल्यांकन और अंशो की बिक्री के लिए अपनाए जाने वाले तौर-तरीके शामिल है। तीन व्यापक विधियाँ हैं, जिनका उपयोग अंशो के मूल्यांकन के लिए किया जाता है।

1. **शुद्ध संपत्ति मूल्य विधि-** यह उपक्रम की शुद्ध संपत्ति का संकेत देगा जैसा कि खातों की किताबों में दिखाया गया है। यह संपत्ति के ऐतिहासिक मूल्य को दर्शाता है। यह लागत मूल्य से मूल्यह्रास को घटाकर दिखाया गया है जो अब तक परिसंपत्तियों पर प्रदान किया गया है। यह स्थिति या लाभप्रदता को प्रतिबिंबित नहीं करता है।
2. **लाभ अर्जन क्षमता मूल्य विधि-** लाभ अर्जन क्षमता आम तौर पर वास्तव में अर्जित या प्रत्याशित लाभ पर आधारित होती है। यह एक लेखा लाभ है। यह व्यय से अधिक आय है। यह वास्तव में उद्यम के आंतरिक मूल्य को इंगित नहीं करता है।
3. **बट्टागत नकदी प्रवाह विधि-** इस तकनीक का उपयोग निवेश प्रस्ताव की व्यवहार्यता का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है। इस पद्धति में भविष्य की वृद्धिशील नकदी प्रवाह का पूर्वानुमान लगाया जाता है और पूंजी दर की लागत को लागू करके वर्तमान मूल्य में छूट दी जाती है। यह विधि उद्यम के आंतरिक मूल्य को इंगित करती है। यह विधि निवेशकों की अपेक्षित आय प्रवाह को प्रतिबिंबित करने के लिए कहीं अधिक व्यापक और जटिल तरीका है।

इन तीन विधियों में से बट्टागत नकदी प्रवाह विधि सबसे अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि यह सबसे कठिन है।

3.7 विनिवेश के तौर-तरीके

विनिवेश के लिए तीन व्यापक स्वीकार्य और पारदर्शी तौर-तरीके हैं। ये नीचे दिए गए हैं-

1. एक सामान्य प्रविवरण के माध्यम से एक निश्चित मूल्य पर सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अंशो की पेशकश। यह प्रस्ताव मान्यता प्राप्त बाजार मध्यस्थों के माध्यम से आम जनता के लिए किया जाता है।
2. पूर्व-निर्धारित ग्राहकों के मध्य हिस्सेदारी की नीलामी के माध्यम से इक्विटी की बिक्री, जिनकी संख्या बड़ी हो सकती है। PSE की इक्विटी के लिए आरक्षित मूल्य व्यापारी बैंकरों की सहायता से निर्धारित किया जा सकता है।

3. बिक्री के लिए एक सार्वजनिक उद्यम की बिक्री के लिए निर्धारित मूल्य का निर्धारण, खुले बोलीकर्ताओं को आमंत्रित करने और बिक्री के लिए उच्चतम बोलीदाताओं के उद्धरण को स्वीकार करने की पेशकश।

3.8 विनिवेश का ढांचा/तंत्र

विनिवेश के लिए निम्नलिखित तंत्र हैं-

1. **विनिवेश पर कैबिनेट समिति-** केंद्र सरकार ने एक कैबिनेट रैंक के साथ विनिवेश के लिए एक अलग मंत्रालय की स्थापना की है। इसके अलावा सरकार ने विनिवेश मंत्री (सीसीडी) पर कैबिनेट आयोग बनाया है, जिसमें विनिवेश मंत्री, उद्योग मंत्री और वित्त मंत्री शामिल हैं।
2. **विनिवेश आयोग-** विनिवेश आयोग की स्थापना एक कार्यकारी निकाय के रूप में अगस्त 1996 में एक कार्यकारी आदेश द्वारा की गई थी न कि वैधानिक आयोग के रूप में। यह उद्योग मंत्रालय में स्थित है और इसने इसके सुचारू संचालन में कुछ कठिनाइयों का सामना किया है। आयोग के अध्यक्ष श्री जी.वी. राम कृष्ण थे। टिप्पणी की प्राथमिक शर्तें एक समग्र दीर्घकालिक कार्यक्रम तैयार करना है जो विनिवेश के एक माध्यम की सिफारिश करता है, बिक्री प्रक्रिया की निगरानी करता है और विनिवेश की प्रगति की निगरानी करता है। प्रशासनिक सहायता, पेशेवर तकनीकी आदानों के संदर्भ में विनिवेश आयोग के पास उपलब्ध तंत्र पर्याप्त है और इसके सफल कामकाज पर सवाल उठाता है। इसके प्रकाश में एक अलग अधिनियम के तहत एक स्थायी वैधानिक विनिवेश निकाय का होना उचित होगा जो विकेंद्रीकृत तरीके से कार्य करे। इसकी सिफारिशों में विश्वसनीयता होनी चाहिए और विनिवेश की पारदर्शी प्रक्रिया के लिए सरकार को बाध्य करना चाहिए। नवंबर 1999 में विनिवेश आयोग को समाप्त कर दिया गया।
3. **सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम विभाग (पीएसई) (डीपीई)-** डीपीई विनिवेश प्रक्रिया को चलाने के लिए नोडल एजेंसी थी। विभाग को बोलियाँ तैयार करने, बोलियों का विज्ञापन करने, बोली लगाने वालों का चयन करने, मूल्य को अंतिम रूप देने और विनिवेश को प्रभावित करने का अधिकार दिया गया था। सचिवों की एक अधिकार प्राप्त समिति को डीपीई से प्रभावित विनिवेश की प्रक्रिया की देखरेख के लिए नियुक्त किया गया था। डीपीई को समिति की ओर से सिफारिशों को आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति को प्रस्तुत करना है, जिनकी मंजूरी लेनदेन को देखने के लिए आवश्यक थी।
4. **विनिवेश विभाग-** विनिवेश आयोग के कार्यकाल नवंबर, 1999 में समाप्त होने के बाद सरकार ने विनिवेश के लिए एक व्यवस्थित नीति दृष्टिकोण स्थापित करने और विनिवेश के कार्यक्रम के लिए नए प्रोत्साहन देने के लिए विनिवेश विभाग का एक नया विभाग स्थापित किया है, जिसने तेजी से पहचाने गये सार्वजनिक उपक्रमों की रणनीतिक बिक्री पर जोर दिया।

3.9 विनिवेश की प्रणाली

भारत में विनिवेश 1991-92 में शुरू हुआ और अगस्त 1996 से नवंबर 1999 तक पहले विनिवेश आयोग ने काम किया। हालांकि, 1999 तक सरकार ने विनिवेश विभाग की स्थापना की। विभाग के गठन के साथ विनिवेश प्रक्रिया पर पर्दा उठने लगा। विनिवेश पर शीर्ष निर्णय लेने वाली संस्था प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में विनिवेश पर कैबिनेट समिति है। कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में विनिवेश पर सचिवों का एक मुख्य समूह विनिवेश कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर निम्नलिखित तरीके से विचार-विमर्श करता है।

विनिवेश आयोग या अन्य विशेषज्ञ निकायों की सिफारिशों पर, या प्रशासनिक मंत्रालय के परामर्श से लिए गए निर्णयों के आधार पर, विनिवेश मंत्रालय प्रस्तावों की शुरुआत करता है और उन्हें विनिवेश के लिए सचिवों के मुख्य समूह के विचार के लिए रखता है। मुख्य समूह द्वारा लिए गए निर्णय, सिफारिशों के रूप में, फिर विनिवेश पर

कैबिनेट समिति के विचार के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं और विनिवेश के लिए एक अंतिम निर्णय प्रक्रिया प्राप्त की जाती है।

विनिवेश के लिए भारत सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया प्रशासनिक सादगी और निर्णय लेने की गति को बढ़ावा देने के लिए पारदर्शिता और निष्पक्ष खेल से समझौता किए बिना की नीति को बढ़ावा देती है। यह प्रणाली निम्न प्रकार है-

1. विनिवेश आयोग की सिफारिशों के आधार पर या सरकार की घोषित विनिवेश नीति के अनुसार किसी भी सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश के लिए प्रस्ताव, विनिवेश (सीसीडी) पर कैबिनेट समिति के विचारार्थ रखे जाते हैं।
2. सीसीडी के विनिवेश प्रस्ताव को मंजूरी देने के बाद, सलाहकार का चयन प्रतिस्पर्धी बोली प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है।
3. समाचार पत्र/वेबसाइट में विज्ञापन के अनुसरण में, ब्याज की अभिव्यक्ति (ईओआई) प्राप्त होने के बाद, घोषित मानदंडों/आवश्यकताओं के प्रकाश में उद्देश्य की जाँच के आधार पर सलाहकारों का चयन किया जाता है।
4. अपनी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने के लिए समाचार पत्रों/वेबसाइट में विज्ञापन के माध्यम से बोलीदाताओं को आमंत्रित किया जाता है। बोलीदाताओं से ईओआई प्राप्त करने पर, सलाहकार, पीएसयू के यथोचित परिश्रम के बाद, संबंधित पीएसयू के परामर्श से सूचना ज्ञापन तैयार करते हैं। यह संक्षिप्त सूचीबद्ध भावी बोलीदाताओं को दिया जाता है जिन्होंने गोपनीयता समझौते में प्रवेश किया है। बोली लगाने वालों की तैयार सूची ईओआई की जांच है और उन लोगों चुन लिया जाता है, जो निर्धारित योग्यता मानदंडों को पूरा करते हैं।
5. ड्राफ्ट अंश खरीद समझौता और अंशधारक समझौता भी कानूनी सलाहकारों की मदद से सलाहकार द्वारा तैयार किया जाता है, और अंतिम ड्राफ्ट बोलीदाताओं के साथ विस्तृत परामर्श के बाद अंतर-मंत्रालय समूह (आईएमजी) के परामर्श से तैयार किया जाता है।
6. संभावित बोलीदाता पीएसयू के लिए यथोचित परिश्रम करते हैं और किसी भी स्पष्टीकरण के लिए सलाहकार /सरकार /पीएसयू के प्रतिनिधियों के साथ चर्चा करते हैं।
7. समवर्ती, पीएसयू के मूल्यांकन का कार्य मानक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बोलीदाताओं के अनुसार किया जाता है।
8. भावी बोलीदाताओं से प्राप्त फीड बैक के आधार पर, आईएमजी द्वारा अंश खरीद समझौते (एसपीए) और अंशधारकों के समझौते (एसएचए) को अंतिम रूप दिया जाता है। कानून मंत्रालय द्वारा उन्हें वेट किए जाने के बाद, उन्हें सरकार (सीसीडी) द्वारा अनुमोदित किया जाता है। इसके बाद, उन्हें अपनी अंतिम बोली लगाने वाली वित्तीय बोलियों को आमंत्रित करने के लिए भावी बोलीदाताओं को भेजा जाता है।
9. आरक्षित कीमत को अंतिम रूप देने के लिए सामग्री वित्तीय बोलियों की प्राप्ति के बाद सलाहकारों से ली जाती है। बोली इस स्तर पर नहीं खोली जाती हैं और बोली लगाने वालों की उपस्थिति में, प्राप्ति के बाद मापी जाती हैं। इंटर-मिनिस्ट्रियल श्मूल्यांकन समितिश् और प्डळ द्वारा पूरा होने के बाद श्आरक्षित कीमतश् निर्धारण एक प्रयोग है। बिडर्स की उपस्थिति में और फिर श्आरक्षित कीमतश् के साथ तुलना करके, स्केल की गई बोलियाँ प्डळ द्वारा खोली जाती हैं।
10. यदि विनिवेश किए गए पीएसयू के अंशो को स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध किया जाता है, तो सेबी के दिशानिर्देशों के अनुसार लेनदेन बंद करने से पहले बोली लगाने वाले को एक खुला प्रस्ताव देना होगा।

11. उपर्युक्त विनिवेश में, एक विनिवेश मंत्रालय को प्डळ द्वारा सचिव (विनिवेश) की अध्यक्षता में और वित्त मंत्रालय, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम विभाग (PSE), प्रशासनिक मंत्रालय/विभाग को नियंत्रित करने वाले अधिकारियों से सलाह ली जाती है।
12. लेन-देन पूरा होने के बाद, इससे संबंधित सभी कागजात और दस्तावेज भारत के सीएजी के पास भेज दिए जाते हैं, कैग संसद को भेजने के लिए एक मूल्यांकन रिपोर्ट तैयार करता है और इसे जनता को जारी करता है।

विनिवेश आय के उपयोग के संबंध में, इसके उचित उपयोग के बारे में आशंका जताई गई है। या तो इसका उपयोग सरकारी ऋण के पुनर्भुगतान के लिए किया जाना चाहिए, जो शुरुआत में इस पीई को वित्त करने के लिए लिया गया था, या इस धन का उपयोग हानि उठाने वाली पीई के पुनर्गठन के लिए किया जाना चाहिए। तथ्य यह है कि विनिवेश की आय का इस्तेमाल मुख्य रूप से बजटीय घाटे को पूरा करने के लिए किया गया है। विनिवेश आयोग ने अपनी पहली रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि संपूर्ण आय विनिवेश कोष में चली जानी चाहिए। इसका उपयोग बजटीय घाटे या राजस्व अंतराल को पूरा करने के लिए नहीं किया जाएगा। लगभग तीन साल पहले सरकार ने घोषणा की कि वह विनिवेश निधि स्थापित करेगी और विनिवेश की आय इस निधि में प्रवाहित होगी। इसके लिए फंड की स्थापना अब तक नहीं की गई है। विनिवेश के रूप में और बाद में वित्तीय स्थिति को और बेहतर बनाने के लिए इसे सरकारी रसीद में शामिल किया जाएगा। संबंधित मंत्री के इस वादे पर केवल वादे किए गए हैं कि निवेश आय का उपयोग सामाजिक क्षेत्रों में खर्च को पूरा करने के लिए, पीई के पुनर्गठन और सार्वजनिक ऋण का पुनरू उपयोग करने के लिए किया जाएगा। हालांकि, यह भी समय-समय पर दोहराया गया है कि विनिवेश प्रक्रिया का उपयोग योजना के लिए अतिरिक्त बजटीय सहायता प्रदान करने के लिए किया जाएगा, मुख्य रूप से सामाजिक और बुनियादी ढांचा क्षेत्रों में। लेकिन, व्यवहार में, यह लंबी बात और अधूरे वादे प्रतीत हुए। वास्तव में, विनिवेश से पाप्त धन का भारत के समेकित फंड का एक हिस्सा बन गया है। परिणाम के साथ, यह अज्ञात है कि इस धन का उपयोग कहां किया गया है। इसलिए सरकार ने इस मुद्दे पर कोई स्पष्ट बयान नहीं दिया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना किसके बाद की घटना है?
2. तेहरहवी पंचवर्षीय योजना के अंत तक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में कुल निवेश कितना था?
3. प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की इकाइयों की संख्या कितनी थी?
4. एक ऐसी प्रक्रिया कौन सी है जिसके तहत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (पीएसई) में अपने हिस्से या कुल इक्विटी को वापस लेती है?
5. विनिवेश प्रक्रिया सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से संबंधित है, इस प्रक्रिया में ऐसे कौन से तौर-तरीके शामिल हैं?
6. किस विधि तकनीक का उपयोग निवेश प्रस्ताव की व्यवहार्यता का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है?
7. एक कार्यकारी निकाय के रूप में कब विनिवेश आयोग की स्थापना एक कार्यकारी आदेश द्वारा की गई थी?

3.10 सारांश

भारत में सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना उच्च आर्थिक विकास, वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता, और कीमतों में स्थायित्व आदि उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए की गई थी। आर्थिक पिछड़ेपन पर

काबू पाने, सार्वजानिक अर्थव्यवस्था में विविधता लाने व भारत में कृषि व उद्योगों का विकास करने के लिए इन उद्यमों ने एक साधन के रूप में कार्य किया सके। सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यम विश्व के अधिकांश देशों के राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में वहाँ की राजनीतिक उन्मुखीकरण के बाबजूद भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है। ढांचागत निवेश की आवश्यकता, भारी पूँजी निवेश, लम्बी स्थापना अवधि, भविष्य में लाभ की मंद सम्भावना, निजी उद्यमों पर अविश्वाश, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का आर्थिक व नैतिक रूप से निजी उद्यमों से अच्छा होना आदि ऐसे कई कारण है जिनके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना की गई। आजादी से पहले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम नहीं के बराबर थे। रेलवे डाक एवं दूरसंचार, तथा हथियार निर्माण से संबंधित कुछ ऐसे सरकारी उपक्रम थे, जिनकी स्थापना ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने और सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से की गई थी। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की स्थापना आजादी के बाद की घटना है। विनिवेश सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में अपनी इक्विटी का एक हिस्सा या कुल इक्विटी को निकलने की एक प्रक्रिया है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश करने का निर्णय इस लिए लिया गया था ताकि सरकार के वित्तीय बोझ को कम किया जा सके, प्रतिस्पर्धा तथा बाजार अनुशासन का लागू किया जा सके, व स्वामित्व की व्यापक हिस्सेदारी को प्रोत्साहित किया जा सके।

विनिवेश का महत्व वास्तव में उससे प्राप्त होने वाली राशि के उपयोग करने में निहित है, यदि इसका उपयोग बढ़ रहे राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए, बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के विकास के लिए व स्वास्थ्य व सामाजिक कार्यक्रमों के लिए वित्त-व्यवस्था करने के लिए किया जाये। आम जनता के लिए सार्वजानिक उपक्रमों की इक्विटी में हिस्सेदारी बढ़ाना भी विनिवेश के मुख्य उद्देश्यों में से एक है। जहाँ तक विनिवेश से जुटाई गई राशि के उपयोग का सम्बन्ध है, इन निधियों के उपयोग के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया गया कि इसका उपयोग बढ़ते राजकोषीय वित्तीय घाटे को कम करने के लिए व बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे के वित्त-पोषण के लिए किया जायेगा। साथ ही इस निधि का उपयोग स्वास्थ्य, पानी और शिक्षा जैसी सामाजिक कार्यक्रमों के लिए भी उपयोग किया जायेगा।

3.11 शब्दावली

सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यम- एक व्यावसायिक संगठन जो पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से राज्य के स्वामित्व में है और एक सार्वजनिक प्राधिकरण के माध्यम से नियंत्रित होता है।

विनिवेश- विनिवेश का अर्थ है सरकार द्वारा संपत्तियों की बिक्री या परिसमापन, यह सामान्यता पर केंद्र और राज्य के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम, परियोजनाएं या अन्य अचल संपत्तियां के रूप में हो सकता है।

3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आजादी, **2.** 1640628, **3.** 5, **4.** विनिवेश, **5.** अंशो का मूल्यांकन और अंशो की बिक्री, **6.** बट्टागत नकदी प्रवाह, **7.** 1996

3.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. V.S. Singh, "Public Sector Enterprises (PSEs) in India," Deep and Deep Publications, New Delhi, 1986, pp. 19-20.
2. Praxy, J. Fernandes, "Corporate Planning in Public Sector Enterprises (PSEs)," Himalaya Publishing House, Bombay, 1985.

3. V.V. Ramanadham, "The Nature of Public Sector Enterprises (PSEs)," D.K. Publishers, New Delhi, 1984.

4. S.L. Jaiswal, "The Public Sector in India," Chand and Co. (Private Ltd.), New Delhi, 1971, p.5.

5. K.R. Gupta (Ed.), "Organisation and Management of Public Sector Enterprises (PSEs)," Vol., Atlantic Publishers and Distributors, New Delhi, 1978, p.24.

6. Dr. Kumar, Ramchandra, Prasad, Singh, "State and Industrialisation of Developing Countries with Special References to India," Sterling Publishers (Pvt. Ltd.), Delhi, 1969, p.47.

7. Sudhir, Naib, "Disinvestment in India, Policies, Procedures, Practices', Sage Publications New Delhi 2004, pp. 372-373.

8. D.M., Nanjundappa, "Disinvestment: Dimensions and Policy Imperatives', Yojna, December, 1998, pp. 5-9

9. V. Gangadhar, and M., Yadagiri, "Disinvestment in Public Sector Enterprises', The Management Accountant, May, 2003, pp. 325-327

10. Website: www.Indiabudget.nic.in.

11. Ministry of Disinvestment, Department of Disinvestment, www.divest.nic.in.

12. Economic Survey, Various Issues.

3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Praxy, J. Fernandes, "Corporate Planning in Public Sector Enterprises (PSEs)," Himalaya Publishing House, Bombay, 1985.

2. V.V. Ramanadham, "The Nature of Public Sector Enterprises (PSEs)," D.K. Publishers, New Delhi, 1984.

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विनिवेश को स्पष्ट करते हुए इसके औचित्य पर प्रकाश डालिए।

2. विनिवेश की प्रणाली को स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 4 विधायी नियंत्रण

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता

4.3 विधायी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व

4.4 भारत में विधायी नियंत्रण की व्यवस्था

4.4.1 भारतीय संसदीय लोकतंत्र में विधायी नियंत्रण की प्रासंगिकता और व्यवस्था

4.4.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण की क्रियाविधियां

4.5 विधायी नियंत्रण की भारतीय व्यवस्था का विश्लेषण

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'विधायी नियंत्रण' वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में खण्ड-6 'विधायी, वित्तीय और कार्यकारी नियंत्रण' की प्रथम इकाई है। इस से पूर्व की इकाईयों में आप वित्तीय प्रशासन से संबंधित आधारभूत तत्वों से भलीभांति परिचित हो चुके हैं। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता और नियंत्रणकारी प्राधिकारियों पर उपयुक्त रूप से निरंतर चर्चा होती आयी है। प्रस्तुत इकाई में इस संबंध में, विशेषकर विधायी नियंत्रण के बारे में जोकि इकाई का मुख्य विषय हैं, विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह समझा सकने की स्थिति में होगे कि वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता क्यों होती है, विधायी नियंत्रण क्या होता है और उसका महत्व क्यों है, भारत में विधायी नियंत्रण की कैसी व्यवस्था पायी जाती है, विधायी नियंत्रण की कौन सी क्रियाविधियां होती हैं और यह नियंत्रण वर्तमान समय में कितना प्रभावशाली है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विधायी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व को समझ पायेंगे।
- वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण की आवश्यकता क्यों पड़ती है; इसे समझ सकेंगे।
- भारतीय संसदीय लोकतंत्र में विधायी नियंत्रण की क्या व्यवस्था है; इसका बोध कर सकेंगे
- जान सकेंगे कि विधायी नियंत्रण कौन सी क्रियाविधियों के द्वारा रखा जाता है; और
- वर्तमान दौर में विधायी नियंत्रण कितना प्रभावकारी रह गया है, इसका विश्लेषण कर सकेंगे

4.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में नियंत्रण की आवश्यकता

लोक वित्तीय प्रबंधन अभिशासन की प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और आवश्यक पहलू होता है। वित्तीय संसाधनों के अधिकांशतः न्यून होने के कारण उनका इष्टतम प्रयोग सुनिश्चित करना सरकार के लिए काफी चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। जनता की बढ़ती हुई अभिलाषाएं तथा धन के पूर्ण मूल्य को प्राप्त करने पर उनका बल सीमित वित्तीय संसाधनों पर अधिक दबाव बनाता जा रहा है। इस कारण से सरकारें युक्तिसंगत वित्तीय प्रबंधन को समय के साथ अधिक से अधिक महत्व देती जा रही है। लोक वित्तीय प्रबंधन के कुछ आवश्यक संघटक होते हैं जिनमें सम्मिलित हैं संसाधनों को एकत्र करना, कार्यक्रमों व गतिविधियों की प्राथमिकता निर्धारित करना, वृहत् बजटीय प्रकिया को संचालित करना, संसाधनों का कार्यकुशल प्रबंधन करना तथा नियंत्रण रखना।

अभिशासन का एक मुख्य प्रबंधकीय कार्य नियंत्रण रखना होता है। शासन और प्रशासन की सफलता बहुत अधिक सीमा तक नियंत्रण की प्रभावकारी व्यवस्था पर निर्भर करती है। नियंत्रण किसी संगठन में की जा रही कार्यवाहियों में समन्वय को लाने, व्यवस्था और अनुशासन के वातावरण को विकसित करने, संसाधनों का कार्यकुशल उपयोग करने तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने को सुनिश्चित करती है। यह नियंत्रण ही होता हैं जिसके कारण से त्रुटियों का पता लगाना और नित्य उभरती चुनौतियों का सामना करना संभव होता है। नियंत्रण के सर्वव्यापी स्वरूप होने के कारण यह प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता हैं जिसमें वित्तीय प्रशासन एक अहम क्षेत्र है। वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में रखे जा रहे नियंत्रण को बाहरी और आंतरिक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। बाहरी नियंत्रण की श्रेणी में विधायिका, न्यायपालिका तथा नागरिकों के द्वारा रखे जाने वाले नियंत्रण और आंतरिक नियंत्रण की क्षेणी में कार्यपालिका के द्वारा रखे जाने वाले नियंत्रण को सम्मिलित किया जाता है।

4.3 विधायी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व

विधायिका के द्वारा कार्यपालिका/प्रशासन पर रखे जाने वाले नियंत्रण को विधायी नियंत्रण कहते हैं। शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के अनुसरण में शासन के जो तीन अंग- विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका बने हैं। उनमें से विधायिका व्यक्तियों का एक प्रतिनिधिक विमर्शी निकाय या सभा होती है, जिसके पास देश के लिये विधायन के माध्यम से विधि को अधिनियमित और संशोधित करने तथा बजट को पारित करने का प्राधिकार होता है। विधायिका की संरचना और शक्तियों में देश-देश में भिन्नता दिखायी देती है। कार्यपालिका/प्रशासन को विधायिका द्वारा अधिनियमित की गयी विधि को उत्तरवर्ती के द्वारा निर्धारित की गयी सीमाओं के अंतर्गत रहते हुये क्रियान्वित करना होता है तथा जब तक विधायिका द्वारा बजट पारित नहीं हो जाता है, तब तक प्रशासन द्वारा न तो कोई कर राजस्व का संग्रहण हो सकता है और न कोई व्यय हो सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में विधायिका कार्यपालिका/प्रशासन के कार्यकलापों का पर्यवेक्षण करके और नियंत्रण रख कर यह सुनिश्चित करती है कि परवर्ती अपने दायित्वों का निर्वहन यथेष्टतापूर्वक कर रहा है।

4.4 भारत में विधायी नियंत्रण की व्यवस्था

भारत में विधायी नियंत्रण की व्यापक व्यवस्था पायी जाती है। यह व्यवस्था संविधान, जोकि देश की सर्वोच्च विधि है, तथा लोक सभा एवं राज्य सभा द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार शासित होती है।

4.4.1भारतीय संसदीय लोकतंत्र में विधायी नियंत्रण की प्रासंगिकता और व्यवस्था

संविधान निमार्ताओं द्वारा देश में प्रतिनिधिक संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था को अपनाया गया है जो भारतीय लोकतंत्र में संसद की केन्द्रीय, महान और उत्कर्ष स्थान को दर्शाता है। संसद के निर्वाचित प्रतिनिधि देश के

नागरिकों, जोकि सभी प्राधिकार के आधारभूत स्रोत होते हैं, का प्रतिनिधित्व करते हैं। संविधान की उद्देशिका में यह पूर्णतयः स्पष्ट किया गया है कि देश की सम्प्रभुता उसके नागरिकों में निहित है। संसद, शासन के तीन अंगों में से एक, देश के नागरिकों की सम्प्रभु इच्छा-शक्ति को मूर्त्त रूप प्रदान करती है। संसद का यह अधिभावी सरोकार है कि वह सुनिश्चित करें कि नागरिकों की इच्छा-शक्ति एवं उनकी अभिलाषाओं को उचित महत्व दिया जा रहा है और उनको वास्तविकता में लाने के लिये कार्यपालिका के द्वारा यथोचित प्रयास किये जा रहे हैं। संसदीय लोकतंत्र की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें देश की वास्तविक कार्यपालिका, जोकि प्रधानमंत्री के नेतृत्व में संघ की मंत्रि-परिषद् होती है, संसद से ली गयी होती है। मंत्रि-परिषद् के सदस्य्य वैयक्तिक रूप से तथा मंत्रि-परिषद् सामूहिक रूप से संसद के प्रति जवाबदेह होते/होती है। मंत्रि-परिषद् का अस्तित्व तभी तक है जब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त होता हैं। संसद नियमों के अंतर्गत प्रदान की गयी अपनी क्रियाविधियों के द्वारा कार्यपालिका पर नियंत्रणकारी शक्तियों का प्रयोग करती है और उसका उत्तरदायित्व अपने प्रति सुनिश्चित करती है। ये नियम लोक सभा एवं राज्य सभा द्वारा संविधान के अनुच्छेद- 118 (1) के प्रावधानुसार बनाये गये हैं, जिसमें यह प्रदान किया गया हैं कि संसद का प्रत्येक सदन अपनी प्रक्रिया और अपने कार्य संचालन के विनियमन के लिये नियम बना सकेगा। लोक सभा व राज्य सभा दोनों के द्वारा ये नियम बना लिये गये हैं जिनका शीर्षक हैं क्रमशः 'लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' और 'राज्य सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम'। लोक सभा के मामले में 'संविधान सभा (विधायी) कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' पहले प्रभावी थे। संविधान के सूत्रपात होने के पश्चात् लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा इन नियमों को संशोधित किया गया और 'लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' के शीर्षक से इनको अपनाया गया। अपनाये गये इन नियमों को भारत के राजपत्र 'असाधारण' में अप्रैल 17, 1952 को प्रकाशित किया गया। राज्य सभा के मामले में 'राज्य सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम' सदन के द्वारा जून 02, 1964 को अपनाये गये और ये नियम जुलाई 01, 1964 से प्रभावी हुये। इन नियमों में समय-समय पर संबंधित सदन के द्वारा संशोधन किया जाता रहा है।

संसद अपनी विविध क्रियाविधियों का प्रयोग करते हुये लोक प्रशासन के सभी क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण रखती है और इन क्षेत्रों में एक क्षेत्र वित्तीय प्रशासन का है।

4.4.2 वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण की क्रियाविधियां

संसद विभिन्न क्रियाविधियों से वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है, जोकि निम्नलिखित हैं-

1. **सदनों में राष्ट्रपति का अभिभाषण एवं संदेश-** संविधान के अनुच्छेदों- 86 एवं 87 में राष्ट्रपति को सदनों में अभिभाषण करने व संदेश भेजने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद- 86 के अनुसार- राष्ट्रपति संसद के किसी एक सदन में या एक साथ समवेत दोनों सदनों में अभिभाषण कर सकेगा और इस प्रयोजन के लिये सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा कर सकेगा, राष्ट्रपति संसद में उस समय लंबित किसी विधेयक के सम्बंध में संदेश या कोई अन्य संदेश संसद के किसी सदन को भेज सकेगा और जिस सदन को कोई संदेश इस प्रकार भेजा गया है, वह सदन उस संदेश द्वारा विचार करने के लिये अपेक्षित विषय पर सुविधानुसार शीघ्रता से विचार करेगा। अनुच्छेद- 87 में राष्ट्रपति को सदनों में विशेष अभिभाषण कर सकने का अधिकार दिया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार- राष्ट्रपति लोक सभा के लिये प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के आरम्भ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र के आरम्भ में एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करेगा और संसद को उसके आह्वान के कारण बतायेगा, प्रत्येक सदन की प्रक्रिया का विनियमन करने वाले नियमों द्वारा ऐसे अभिभाषण में निर्दिष्ट विषयों की चर्चा के लिये समय नियत करने के लिये उपबंध किया जायेगा। राष्ट्रपति के उपरोक्त

अभिभाषण पर चर्चा करने के लिये लोक सभा के कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम में अध्याय- V की अनुच्छेद-16 से 24 में तथा राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियम में अध्याय- V की अनुच्छेद14 से 21 में प्रावधान किया गया है। नियम यह प्रावधान करते हैं कि लोक सभा का अध्यक्ष, सदन के नेता के साथ परामर्श में, और राज्य सभा का सभापति, सदन के नेता के साथ परामर्श में, राष्ट्रपति के अभिभाषण में उल्लिखित विषयों पर चर्चा करने के लिये समय आवंटित करेगा। चर्चा करने के लिये कोई सदस्य धन्यवाद प्रस्ताव को लेकर आता है जिसका अनुमोदन कोई अन्य सदस्य करता है। चर्चा की समाप्ति के पश्चात् प्रधानमंत्री या किसी अन्य मंत्री को यह अधिकार होता है कि वह सरकार की स्थिति को समझाये। जब किसी भी सदन के लिये राष्ट्रपति का संदेश प्राप्त होता है तब उस सदन का पीठासीन अधिकारी उस संदेश को पढ़ता है और उसमें उल्लिखित विषयों पर विचार करने के लिये अनुपालन की जाने वाली क्रियाविधि के सम्बंध में आवश्यक निर्देश देता है।

2. **प्रश्नकाल-** प्रश्नकाल लोक सभा और राज्य सभा दोनों में लोक प्रशासन पर विधायी निगरानी रखने की एक तकनीक है, जिसका प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों; लोक सभाः नियम संख्या 32-54; राज्य सभाः नियम संख्या 38-59 में किया गया है। सामान्य तौर पर दोनों सदनों में प्रत्येक बैठक का प्रथम घंटा प्रश्नकाल का होता है, जिसमें लोक महत्व के प्रश्नों को आमतौर पर मंत्रियों से पूछा जाता है और उनका उत्तर दिया जाता है। किसी भी सदन का कोई भी सदस्य जो प्रश्न को पूछना चाहता है उसे साधारणतयः कम से कम 15 दिनों पहले इस सम्बंध में सदन के महा-सचिव को नोटिस देना होता है। महा-सचिव उस नोटिस को उस मंत्री को देता है जिसको प्रश्न संबोधित होता है। जिस तिथि को नोटिस मंत्री को दिया जाता है उस से 5 दिनों के अवसान के पश्चात् ही उस प्रश्न को उत्तर दिये जाने वाले प्रश्नों की सूची में रखा जाता हैं । प्रश्नकाल के दौरान पूछे जाने वाले प्रश्न 4 प्रकार के होते हैं- तारांकित प्रश्न, अतारांकित प्रश्न, अल्पकालीन नोटिस वाले प्रश्न, तथा गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न। तारांकित प्रश्न वे प्रश्न होते हैं जिनका मौखिक उत्तर दिया जाना होता है और ये प्रश्न तारक चिन्ह द्वारा पहचाने जाते है। इन प्रश्नों के उत्तर के पश्चात् पूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। किसी एक दिन अधिकतम 20 तारांकित प्रश्न पूछे जा सकते हैं। अतारांकित प्रश्न वे प्रश्न होते हैं जिनका लिखित उत्तर दिया जाना होता है और इन में कोई तारक चिन्ह नहीं होता है। इनमें कोई पूरक प्रश्न पूछे नहीं जा सकते हैं। अल्पकालीन नोटिस वाले प्रश्न वे प्रश्न होते हैं जो 15 दिन की विहित की गई अवधि से कम की नोटिस देकर पूछे जा सकते हैं। ये प्रश्न अत्यावश्यक लोक महत्व के मामलों से संबंधित होते हैं और इनका उत्तर मौखिक दिया जाता है। सदन का कोई सदस्य किसी गैर-सरकारी सदस्य से कोई प्रश्न पूछ सकता है परन्तु नियम के अनुसार शर्त्त यह हैं कि उस प्रश्न की विषय-वस्तु का सरोकार किसी ऐसे विधेयक, संकल्प तथा सदन के कार्य के साथ संबंधित किसी ऐसे मामले के साथ होना चाहिये जिसके लिये वह सदस्य उत्तरदायी हैं। इन प्रश्नों पर भी वही क्रियाविधि लागू होती है जो मंत्रियों से पूछे गये प्रश्नों पर लागू हो रही होती है। लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति के पास प्रश्नों की स्वीकार्यता का अधिकार होता है। यदि सदन के संबंधित पीठासीन अधिकारी को लगता है कि किसी सदस्य के द्वारा पूछा गया कोई प्रश्न प्रश्न पूछने के अधिकार का दुरूपयोग है या वह सदन की कार्यवाही में बाधा डाल सकता है या उसे अपकारक तरीके से प्रभावित कर सकता है या वह नियमों का उल्लंघन करता है तो वह ऐसे प्रश्न को अस्वीकार्य कर सकता है।

3. **शून्य काल-** शून्य काल किसी संसद सदस्य के पास उपलब्ध एक अनूठी युक्ति है, जिसके द्वारा वह अत्यावश्यक लोक महत्व के मामलों को सदन में उठा सकता है। शून्य काल प्रश्न काल और सदन में प्रत्रादियों को रखने के तत्काल पश्चात्, अर्थात् दोपहर 12 बजे, होता है। शून्य काल एक भारतीय देन है,

जिसका कोई प्रावधान संसदीय नियमों में नहीं किया गया है। यह कोई औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त क्रियाविधि नहीं है तथा यह परम्पराओं और परिपाटियों से विकसित हुई है। शून्य काल का आरम्भ 1960 के दशक के आरम्भिक वर्षों में हुआ जब प्रश्न काल के तत्काल उपरांत सदस्यों के द्वारा लोक हित के मामलों को उठाया जाता था। कोई सदस्य जो किसी विशिष्ट दिन अत्यावश्यक लोक हित के किसी मामले को उठाना चाहता हैं उसे अपने इस आशय के संबंध में नोटिस प्रातःकाल 10 बजे तक महा-सचिव को देना होता है। इन नोटिसों का परीक्षण करने के बाद लोक सभा का अध्यक्ष किसी एक दिन अधिकतम 20 मामलों तथा राज्य सभा का सभापति अधिकतम 10 मामलों को प्राथमिकतानुसार उठाने की अनुमति देता है और ऐसा उस दिवस की कार्य सूची में दिये गये किसी विषय को उठाये जाने से पूर्व होता है। शून्य काल दो चरणों में होता हैं- प्रथम चरण जोकि प्रश्न काल के तत्काल उपरांत होता है, में राष्ट्रीय और अंतर-राष्ट्रीय महत्व के 05 अत्यावश्यक मामलों को उठाया जाता है, तथा द्वितीय चरण जोकि सायंकालीन 06 बजे या सदन के नियमित कार्य की समाप्ति पर होता है, में अत्यावश्यक लोक हित के स्वीकार किये गये मामलों को उठाया जाता है।

4. **आधे घंटे की चर्चा-** आधे घंटे की चर्चा का प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा दोनों के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों; लोक सभाः नियम संख्या 55; राज्य सभाः नियम संख्या 60 में है। आधे घंटे की चर्चा किसी ऐसे विषय पर चर्चा करने के लिये होती है जो कि हाल के समय में पर्याप्त लोक महत्व का विषय रहा है तथा जिसके उत्तर के लिये तथ्य को समझाना और उसका विवरण देने की आवश्यकता होती है। इसके संबंध में नियम यह प्रदान करते हैं कि लोक सभा का अध्यक्ष किसी सप्ताह में तीन बैठकों में; तथा राज्य सभा का सभापति किसी भी दिन सायंकाल 05 से 05:30 बजे तक आधा घंटा चर्चा करने के लिये आंवटित कर सकता है। किसी भी सदन का कोई भी सदस्य जो किसी ऐसे विषय को उठाना चाहता है, उसे इस संबंध में सदन के महा-सचिव को तीन दिन अग्रिम में लिखित में नोटिस देना होता है। नोटिस के साथ एक व्याख्यात्मक टिप्पणी देनी होती है, जिसमें प्रश्नगत विषय पर चर्चा करने के लिये कारणों को बतलाना होता है। चर्चा के दौरान सदन में न तो कोई औपचारिक प्रस्ताव लाया जाता है और न ही कोई मतदान होता है। वह सदस्य जिसने चर्चा करने के लिये नोटिस दिया होता है। सदन में एक संक्षिप्त वक्तव्य देता है। इसके पश्चात् वे सदस्य जिन्होंने सभा के अध्यक्ष/सभापति को पूर्व में सूचित किया होता हैं प्रश्न पूछ सकते हैं और तत्पश्चात् संबंधित मंत्री संक्षिप्त में उत्तर देता है। चर्चा के दौरान अधिकतम चार सदस्य मंत्री से प्रश्न पूछ सकते हैं।
5. **अल्प अवधि की चर्चा-** अल्प अवधि की चर्चा का प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों; लोक सभाः नियम संख्या 193-196; राज्य सभाः नियम संख्या 176-179 में किया गया है। नियमों के अंतर्गत संसद सदस्य, महा-सचिव को पूर्व लिखित नोटिस देकर, अत्यावश्यक लोक महत्व के मामलों पर अल्प अवधि के लिये चर्चा कर सकते है। लोक सभा का अध्यक्ष सप्ताह में दो बैठकें अल्प अवधि की चर्चा के लिये आवंटित कर सकता है और यह चर्चा अधिकतम दो घंटे के लिये हो सकती है। राज्य सभा का सभापति आवश्यकतानुसार सदन की बैठक चर्चा के लिये आवंटित कर सकता है और यह चर्चा अधिकतम ढाई घंटे के लिये हो सकती है। इस चर्चा में सदन के समक्ष न तो कोई औपचारिक प्रस्ताव लाया जाता है और न ही कोई मतदान होता है। नोटिस देने वाला सदस्य एक लघु वक्तव्य देता है और उसके कुछ समय के पश्चात् मंत्री उसका उत्तर देता है।
6. **बजट-** बजट को शासकीय वित्तीय मामलों पर विधायी नियंत्रण रखने का एक अत्यंत प्रभावशाली साधन माना जाता हैं । ऐसा इसलिये क्योंकि संविधान के अनुच्छेद- 114 (3) के अनुसार भारत की संचित निधि में से पारित विधि द्वारा किये गये विनियोग के अधीन ही कोई धन निकाला जायेगा, अन्यथा नहीं। इसी

प्रकार से अनुच्छेद- 265 के अनुसार कोई कर विधि के प्राधिकार से ही अधिरोपित या संगृहीत किया जायेगा, अन्यथा नहीं। उपरोक्त को सुनिश्चित करने हेतु अनुच्छेद-112 (1) यह प्रदान करता है कि राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार की उस वर्ष के लिये प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहा गया है। लोक सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियम संख्या 204 से 221 तक में सदन में वार्षिक वित्तीय विवरण या बजट की सम्पूर्ण क्रियाविधि के संबंध में विस्तृत प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। बजट सदन में उस प्रारूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसा कि वित्त मंत्री, प्राक्कलन समिति के सुझावों, यदि कोई है, को विचारित करते हुये निश्चय करता है। जिस दिन बजट सदन में प्रस्तुत किया जाता है उस दिन उस पर कोई चर्चा नहीं होती है। बजट को प्रस्तुत करने के पश्चात् जो दिन अध्यक्ष के द्वारा निर्धारित किया जाता है और उतने समय के लिये जो अध्यक्ष आवंटित करता है। सदन समूचे बजट या उसमें सम्मिलित सिद्धांत के किसी प्रश्न पर चर्चा करता है। चर्चा की समाप्ति पर वित्त मंत्री को उत्तर देने का सामान्य अधिकार होता है। बजट में मंत्रालयवार सम्मिलित अनुदान मांगों, जोकि संचित निधि से किये जाने वाले व्यय के अनुमान होते हैं, पर चर्चा और मतदान करने के लिये आवश्यक दिवसों का आवंटन अध्यक्ष, सदन के नेता के साथ परामर्श में, करता है। सदन में अनुदान मांगों को कम करने के प्रस्ताव या कटौती प्रस्ताव लाये जा सकते है, जिन पर चर्चा व मतदान होता है। आंवटित दिवसों के अंतिम दिन सायंकालीन 05 बजे या किसी अन्य समय, जो अध्यक्ष अग्रिम में निर्धारित कर सकता है, अध्यक्ष प्रत्येक ऐसे प्रश्न को तत्काल रखता है, जोकि अनुदान मांगों के संबंध में सभी बाकी मामलों को निस्तारित करने के लिये आवश्यक होते हैं। सदन में जब अनुदान मांगें पारित हो जाती हैं तब संविधान के अनुच्छेद- 114 के अंतर्गत विनियोग विधेयक यथाशक्य शीघ्र लाया जाता है, जिस पर बहस तो होती है, पर उसको संशोधित नहीं किया जा सकता है। भारत की संचित निधि में से विनियोग विधेयक के पारित होने पर ही कोई धन निकाला जा सकता है, अन्यथा नहीं। संविधान के अनुच्छेद-115 के अंतर्गत अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान; तथा अनुच्छेद-116 के अंतर्गत लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान के संबंध में जो प्रावधान किये गये हैं उन पर अनुदान मांगों की भांति ही कार्यवाही की जाती है। भारत सरकार के वित्तीय प्रस्तावों को आगामी वित्तीय वर्ष में प्रभावी बनाने के लिये वित्त विधेयक संविधान के अनुच्छेद-117 के अंतर्गत लोक सभा में राष्ट्रपति की सिफारिश से प्रत्येक वर्ष लाया जाता है। संसद के द्वारा विनियोग और वित्त विधेयकों को पारित करने के साथ ही बजट को पारित माना जाता है।

7. **प्रस्ताव-** प्रस्ताव विधायी नियंत्रण का एक साधन हैं जिसका प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (लोक सभाः नियम संख्या 184-192; राज्य सभाः नियम संख्या 228-233) में किया गया है। प्रस्ताव किसी भी सदस्य के द्वारा सदन में लाया जा सकता है और इसका अभिप्रेत यह होता है कि किसी मामले के संबंध में सदन या तो कुछ करे या कुछ करने के लिये आदेश दे या कोई मत अभिव्यक्त करें। प्रस्ताव मोटे तौर पर दो प्रकार के होते हैं- सरकारी प्रस्ताव एवं निजी सदस्य के प्रस्ताव। सरकारी प्रस्ताव पर सदन में चर्चा किये जाने को प्राथमिकता दी जाती है। प्रस्ताव के संबंध में सामान्य नियम यह है कि व्यापक लोक हित के किसी मामले में लोक सभा/राज्य सभा में कोई चर्चा सदन के अध्यक्ष/सभापति की सहमति के साथ लाये गये किसी प्रस्ताव से ही हो सकती है। सदन का जो सदस्य प्रस्ताव लाना चाहता है उसे इस से संबंधी लिखित नोटिस विहित किये गये प्रारूप में महासचिव को देना होता है। प्रस्ताव को स्वीकार करने या नहीं करने के बारे में निर्णय लोक सभा/राज्य सभा के अध्यक्ष/सभापति के द्वारा लिया जाता है। प्रस्ताव को तभी स्वीकार किया जाता है,

जब वह नियमों में नियत की गयी शर्त्तों को पूरा करता हो। अध्यक्ष/सभापति के द्वारा जब प्रस्ताव के नोटिस को स्वीकार कर लिया जाता हैं तब सदन के बुलेटिन में उसको तत्काल अधिसूचित किया जाता है। यदि प्रस्ताव पर चर्चा किये जाने की तिथि निर्धारित हो रखी होती है तब बुलेटिन में उस तिथि को अधिसूचित किया जाता है अन्यथा बुलेटिन में उस को ऐसे प्रस्ताव के रूप में अधिसूचित किया जाता है जिस पर चर्चा किये जाने की तिथि निर्धारित नहीं हो रखी होती है (No-day-yet-named Motion)। अध्यक्ष/सभापति सदन के कार्य की स्थिति को दृष्टिगत रखते हुये और सदन के नेता के साथ परामर्श में प्रस्ताव पर चर्चा किये जाने के लिये दिवस/दिवसों को आवंटित करता है। प्रस्ताव पर चर्चा करने के समय का आवंटन सदन की कार्य सलाहकारी समिति में सामान्य तौर पर किया जाता है। नियत किये गये समय के आने पर अध्यक्ष/सभापति संबंधित सदस्य को बुलाता है कि वह प्रस्ताव के पाठ्य भाग को पढ़ते हुये औपचारिक रूप से प्रस्ताव को सदन में लेकर आये और अपना व्याख्यान दे। इसके पश्चात् अध्यक्ष/सभापति प्रस्ताव को सदन के समक्ष रखता है। यदि उसमें कोई संशोधन लाये जाने होते है तब अध्यक्ष/सभापति के द्वारा बुलाये जाने पर सदस्य उस संशोधन/उन संशोधनों के प्रस्ताव को ले कर आते है और फिर उस पर चर्चा होती हैं। चर्चा के समाप्त होने पर प्रस्तावकर्ता को उत्तर देने का अधिकार होता है। यदि प्रस्ताव में कोई संशोधन किये जाने होते है तब प्रस्तावित किये गये संशोधन/संशोधनों पर सदन में मतदान होता है तथा उसके/उनके निस्तारित होने पर मुख्य प्रस्ताव पर सदन में मतदान होता है। सदन में प्रस्ताव को स्वीकार किये जाने की स्थिति में संबंधित मंत्री को सूचित कर दिया जाता है।

8. **कार्य-स्थगन प्रस्ताव-** कार्य-स्थगन प्रस्ताव वह प्रस्ताव होता है जो अत्यावश्यक लोक हित के किसी निश्चित मामले पर चर्चा करने के लिये सदन के कार्य को स्थगित करने का प्रयोजन रखता है। कार्य-स्थगन प्रस्ताव के संबंध में लोक सभा के कार्य प्रक्रिया और संचालन के नियमों (संख्या 56-63) में विस्तृत प्रावधान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य सभा के कार्य प्रक्रिया और संचालन के नियमों में कार्य-स्थगन प्रस्ताव के संबंध में प्रावधान नहीं किया गया है। लोक सभा के नियमों के अनुसार कार्य-स्थगन प्रस्ताव अध्यक्ष की सहमति से लाया जाता है और इसको लाने के संबंध में नोटिस सदन के महा-सचिव को उस दिन के प्रातः10 बजे तक देनी होती है जिस दिन इस प्रस्ताव को लाया जाना प्रस्तावित होता है। यदि नोटिस प्रातः10 बजे के पश्चात् प्राप्त होता है तो यह माना जाता है कि यह नोटिस उस आगामी दिवस के लिये के लिये हैं जिस दिन सदन की बैठक होनी होती है। नोटिस की प्रतियां लोक सभा के अध्यक्ष, संबंधित मंत्री एवं संसदीय कार्य मंत्री को पृष्ठांकित होती है। कोई सदस्य सदन की किसी एक बैठक के लिये कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने का केवल एक नोटिस दे सकता है उससे अधिक नहीं। कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने के सदस्यों के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगे होते हैं जो नियमानुसार निम्नवत हैं-

- सदन की किसी बैठक में एक से अधिक कार्य-स्थगन प्रस्ताव को नहीं लाया जा सकता है।
- किसी एक प्रस्ताव पर एक से अधिक मामले पर चर्चा नहीं की जा सकती है।
- प्रस्ताव हाल में घटित किसी विनिर्दिष्ट मामले, जिसमें भारत सरकार का उत्तरदायित्व सम्मिलित होता है, तक परिमित होता है।
- प्रस्ताव विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को उठा नहीं सकता है।
- प्रस्ताव में किसी ऐसे मामले पर दोबारा चर्चा कराया जाना सम्मिलित नहीं होता है, जिस पर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी है।

- प्रस्ताव किसी ऐसे मामले का पूर्वानुमान नहीं लगा सकता है जो विचारार्थ हेतु पहले नियत किया जा चुका है।
- प्रस्ताव का सरोकार किसी ऐसे मामले के साथ नहीं हो सकता है जो किसी विधि न्यायालय में अधिनिर्णयन हेतु लंबित है।
- प्रस्ताव किसी ऐसे प्रश्न को उठा नहीं सकता है जो संविधान या सदन के कार्य प्रक्रिया और संचालन के नियमों के अंतर्गत किसी विशिष्ट प्रस्ताव पर ही उठाया जा सकता है।

कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने से संबंधित नोटिस को अध्यक्ष तभी स्वीकार करेगा, जब वह उपरोक्त शर्तों को पूरा करे। अध्यक्ष जब प्रस्ताव को लाने की सहमति दे देता है तब वह संबंधित सदस्य को बुलाता है जो अपने स्थान से उठ कर सदन को स्थगित करने के प्रस्ताव को लाने की अनुमति प्रदान करने के लिये कहता है। ऐसा होने पर अध्यक्ष उन सदस्यों से अनुरोध करता हैं ज अनुमति प्रदान करने के पक्ष में होते हैं कि वे अपने स्थान से उठ जाये और यदि कम से कम 50 सदस्य उठ जाते हैं तब अध्यक्ष सदन को यह सूचित करता है कि कार्य-स्थगन प्रस्ताव को लाने की अनुमति प्रदान कर दी गयी है। प्रस्ताव 'कि सदन अब स्थगित होता हैं' सायंकाल 04 बजे या इससे पहले के किसी घंटे, जैसा कि अध्यक्ष निर्देशित करें, में लाया जाता है। इस प्रस्ताव पर कम से कम 02 घंटे और 30 मिनट तक सदन में चर्चा होती है। अध्यक्ष जब यह संतुष्ट हो जाता हैं कि प्रस्ताव पर पर्याप्त बहस हो चुकी हैं तब वह चर्चा का समापन करता है।

9. **ध्यानाकर्षण प्रस्ताव-** ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, एक अन्य भारतीय देन, का प्रावधान लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों में किया गया है, लोक सभाः नियम संख्या 197; राज्य सभाः नियम संख्या 180)। कोई सदस्य, अध्यक्ष/ सभापति की अनुमति से, किसी मंत्री का ध्यान लोक हित के किसी अत्यावश्यक मामले की ओर आकृष्ट कर सकता है। मंत्री चाहे तो कोई संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है या बाद के किसी घंटे या तिथि में अपना वक्तव्य देने के लिये समय मांग सकता है। मंत्री द्वारा जब ऐसा वक्तव्य दिया जाता है तब उस समय उस पर कोई बहस नहीं होती है, परन्तु वह सदस्य जिसके नाम पर वह विषय कार्य सूची में होता है। स्पष्टीकारक प्रश्न/प्रश्नों को पूछ सकता है और मंत्री ऐसे सभी प्रश्नों का उत्तर अंत में देता है।
10. **अविश्वास प्रस्ताव-** संविधान के अनुच्छेद-75 (3) के अनुसार मंत्रि-परिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा। इस प्रकार मंत्रि-परिषद् तभी तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त होता है। सदन के इस विश्वास को अभिनिश्चत करने के लिये लोक सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (संख्या 198-199) में इसका प्रावधान किया गया है। कोई सदस्य मंत्रि-परिषद् में विश्वास के अभाव को अभिव्यक्त करने वाले किसी प्रस्ताव को महा-सचिव को पूर्व में दिये गये लिखित नोटिस के उपरांत ला सकता है। यदि लोक सभा के अध्यक्ष का यह अभिमत होता है कि प्रस्ताव अनुक्रम में हैं तो वह उसको सदन में पढ़ता है और उन सदस्यों से अनुरोध करता है जो प्रस्ताव को अनुमति प्रदान किये जाने के पक्ष में होते हैं कि वे अपने स्थानों पर खड़े हो जाये। यदि कम से कम 50 सदस्य खड़े हो जाते हैं तब अध्यक्ष यह घोषित करता है कि प्रस्ताव को लाने की अनुमति प्रदान कर दी गयी है। उसके पश्चात् अध्यक्ष उस दिवस को निश्चित करता है जिस दिन प्रस्ताव को लाया जायेगा। निश्चित किये गये दिवस/ दिवसों को प्रस्ताव पर चर्चा होती है और अध्यक्ष प्रत्येक प्रश्न को उस के बारे में सदन के निर्णय को निर्धारित करने के लिये अविलंब रखता है। यदि यह अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता हैं तो मंत्रि-परिषद् को त्यागपत्र देना होता है।

11. **संकल्प-** कोई संकल्प विधायिका के मत, इच्छाशक्ति, अभिलाषा या कार्यवाही की औपचारिक अभिव्यक्ति होता हैं। कोई भी सदस्य सामान्य लोक हित के मामले से संबंधित संकल्प को सदन में ला सकता है। इसके लिये सदस्य को पूर्व में महा-सचिव को लिखित नोटिस देना होता है। संकल्प को स्पष्ट व सटीक रूप से अभिव्यक्त होना चाहिये तथा उसे मूलतः एक निश्चित मुद्दे को उठाना चाहिये। निर्धारित किये गये दिवस को सदस्य संकल्प को लेकर आता है और औपचारिक प्रस्ताव के द्वारा अपना भाषण आरम्भ करता है, जिसके बाद उस पर चर्चा होती है। चर्चा के उपरांत उस पर मतदान होता है। प्रत्येक उस संकल्प की प्रति जो सदन के द्वारा पारित किया जाता हैं संबंधित मंत्री को अग्रसारित की जाती है।
12. **याचिका-** कोई भी संसद सदस्य अपने से संबंधित सदन में पीठासीन अधिकारी (अध्यक्ष/सभापति) की सहमति से याचिकाओं को प्रस्तुत कर सकता है। याचिका से संबंधित प्रावधान लोक सभा व राज्य सभा के सदन में कार्य प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों में किये गये हैं (लोक सभा-नियम संख्याः 160-169, राज्य सभा-नियम संख्याः 137-153)। याचिका का सरोकार उस विधेयक के साथ हो सकता है जो सदन में पेश करने से पूर्व शासकीय राजपत्र में प्रकाशित हो चुका है या जो सदन में पेश हो चुका है; सदन में लम्बित किसी कार्य से जुड़े किसी मामले के साथ हो सकता हैं; और सामान्य लोक हित के किसी मामले के साथ हो सकता है। कोई भी याचिका जो धन विधेयक से संबंधी किसी मामले के साथ संबंधित है या जिसमें भारत की संचित निधि से व्यय किया जाना सम्मिलित है, राष्ट्रपति की सिफारिश के साथ ही सदन में प्रस्तुत की जा सकती है। यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक याचिका की भाषा सम्मानजनक, शालीन एवं शिष्ट होनी चाहिये; वह याचिकाकर्ता/याचिकाकर्ताओं द्वारा हस्ताक्षरित होनी चाहिये; उसको सदन में प्रस्तुत करने वाले सदस्य का प्रतिहस्ताक्षर उस पर होना चाहिये; और कोई सदस्य अपनी स्वयं की याचिका सदन में प्रस्तुत नहीं कर सकता है। कोई सदस्य जो सदन में याचिका प्रस्तुत करना चाहता हैं उसे अपने इस आाशय के संबंध में अग्रिम सूचना महा-सचिव को देनी होती है। कोई याचिका जब सदन में प्रस्तुत हो जाती है, तब उस पर कोई बहस नहीं होती है। प्रत्येक याचिका सदन में प्रस्तुत होने के उपरांत याचिका समिति के पास भेज दी जाती है।
13. **विशेष उल्लेख-** विशेष उल्लेख किसी संसद सदस्य के पास उपलब्ध एक ऐसी युक्ति है, जिसके द्वारा वह लोक हित के किसी मुद्दे को सदन में उठा सकता है। लोक सभा व राज्य सभा के सदन में कार्य प्रक्रिया तथा संचालन के नियम (लोक सभा-नियम संख्याः 377-377 ग; राज्य सभा-नियम संख्याः 180क-180ड) विशेष उल्लेख से संबंधित प्रावधान करते हैं। सदन में उन मामलों को विशेष उल्लेख के अंतर्गत उठाया जाता है जो 'प्वाइंटस ऑफ ऑडर' (Points of Order) नहीं होते हैं। ऐसा करने के लिये सदस्य को संबंधित सदन के महा-सचिव को लिखित में नोटिस देना होता है। नोटिस के साथ विशेष उल्लेख किये जाने वाले मामले का पाठ्य-भाग दिया जाता हैं जो अधिकतम 250 शब्दों में होता है। ऐसे मामले का सरोकार भारत सरकार के साथ प्राथमिक रूप से होना चाहिये। वह सदस्य जिसे कि अनुमति प्रदान की गयी है अध्यक्ष/सभापति के द्वारा अनुमोदित किये गये पाठ्य-भाग को सदन में पढ़ते हुये मामले का उल्लेख करता है। लोक सभा में एक दिन में विशेष उल्लेख के 20 मामले और राज्य सभा में 07 मामले उठाये जा सकते है। जब सदन में विशेष उल्लेख के मामले उठाये जाते हैं तब सामान्य व्यवहार के तौर पर उपस्थित मंत्री मामले पर तत्काल प्रतिक्रिया नहीं करते हैं और यदि वह उत्तर देना चाहता है तो वह दे सकता है।

4.5 विधायी नियंत्रण की भारतीय व्यवस्था का विश्लेषण

विधायी नियंत्रण की भारतीय व्यवस्था के बारे में स्पष्ट तौर पर यह कहा जा सकता है कि यह प्रभावकारी तो है परन्तु पूर्णतयः नहीं। इसका मुख्य कारण है कि संसद सदस्यों में गंभीरतापूर्वक कार्य करने की मनोवृत्ति में दृष्टिगोचर कमी हो रही है और उनका समय तुच्छ मामलों एवं संकीर्ण राजनीतिक कटुता में अधिक व्यतीत हो रहा है। संसद में चर्चा साधारणतयः दलगत आधारों पर होती है, जोकि प्रयोजनपरक और रचनात्मक चर्चा में कमी लाने लगता है। इससे नीति संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दों की उपेक्षा होने लगती है जो व्यापक राष्ट्रीय हित को प्रतिकूल ढ़ंग से प्रभावित करता है। अनेक बार यह भी देखा गया है कि संसद द्वारा जो विधियां पारित की जाती है तथा कार्य संबंधी सिफारिशें की जाती है वे प्रशासनिक तंत्र द्वारा लगनशीलता के साथ क्रियान्वित नहीं की जाती है और यदा-कदा विधियों के उपबंधों में अस्पष्टता उनके क्रियान्वयन के मार्ग में बाधा लेकर आती है। यह कहा जा सकता हैं कि जब तक संसद में चर्चाएं विचारपूर्ण नहीं होगी, सांसद दलगत राजनीति से परे नहीं जायेगे और अपने कार्यो के प्रति संजीदा नहीं होंगे, शासकीय कार्यो के निष्पादन का वस्तुनिष्ठ आंकलन नहीं करेंगे तब तक विधायी नियंत्रण की प्रभावशीलता प्रतिकूल ढंग से प्रभावित होती रहेगी।

अभ्यास प्रश्न-

1. तारांकित प्रश्न किसको कहते हैं?
2. लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियमों में 'विशेष उल्लेख' का प्रावधान कौन से नियम में किया गया है?
   क. नियम संख्या 370 ख. नियम संख्या 373
   ग. नियम संख्या 377 घ. नियम संख्या 379
3. संविधान के अनुच्छेदों.....................में राष्ट्रपति को सदनों में अभिभाषण करने व संदेश भेजने का अधिकार दिया गया है।
4. कार्य-स्थगन प्रस्ताव में विशेषाधिकार के किसी प्रश्न को उठाया जा सकता है।

4.6 सारांश

प्रकट इकाई को पढ़ने के बाद आपको यह ज्ञात हो चुका है कि अभिशासन की प्रक्रिया का एक आवश्यक पहलू युक्तिसंगत लोक वित्तीय प्रबंधन होता है जो समय की मांग बन चुका है। इसको संभव बनाने के लिये वित्तीय पहलुओं पर प्रभावकारी नियंत्रण रखना अनिवार्य हो जाता है, जोकि बाहरी और आंतरिक दोनों होता है। बाहरी नियंत्रण रखने वाला शासन का एक मुख्य अंग विधायिका होता है और उसके द्वारा रखे जा रहे नियंत्रण को विधायी नियंत्रण कहा जाता है। भारत में जो विधायी नियंत्रण की व्यवस्था विहित की गयी है, उसमें देश के संविधान के प्रावधान तथा संसद के दोनों सदनों- लोक सभा एवं राज्य सभा के द्वारा बनाये गये नियम सम्मिलित होते हैं। इनमें विविध प्रकार की क्रियाविधियों को निरूपित किया गया हैं जिनका प्रयोग करते हुये सांसद वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण रखता है। इस इकाई के अध्ययन से आप विधायी नियंत्रण से सम्बद्ध सभी पहलुओं का वर्णन कर सकेंगे और अपने विचारों को व्यक्त कर सकेंगे।

4.7 शब्दावली

अनुदान मांग- अनुदान मांगों का सरोकार भारत के वार्षिक वित्तीय विवरण में सम्मिलित संचित निधि में से किये जाने वाले व्यय के प्राक्कलनों, जोकि संचित निधि पर भारित व्यय से संबंधित व्यय के प्राक्कलनों से भिन्न होते हैं, के साथ होता है। अनुदान मांगों का प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 113 में किया गया है। इस अनुच्छेद के

अनुसार अनुदान मांगें राष्ट्रपति की सिफारिश पर लोक सभा के समक्ष लायी जाती है जिसको की शक्ति होती है कि वह अनुदान मांग को चाहे तो मौलिक रूप में अनुमति दे सकता है या अनुमति देने से मना कर सकता है या उसमें विनिर्दिष्ट की गयी धनराशि को कम करके उसकी अनुमति दे सकता है।

बजट- बजट आगामी वित्तीय वर्ष के लिये एक वित्तीय योजना होती हैं जिसमें आय और व्यय के प्राक्कलनों को सम्मिलित किया जाता है। संविधान का अनुच्छेद- 112 बजट का प्रावधान 'वार्षिक वित्तीय विवरण' के रूप में करता है। इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के संबंध में संसद के दोनों सदनों के समक्ष भारत सरकार की उस वर्ष के लिये प्राक्कलित प्राप्तियों और व्यय का विवरण रखवायेगा जिसे 'वार्षिक वित्तीय विवरण' कहा गया है।

राज्य सभा- राज्य सभा भारतीय द्विसदनीय संसद का द्वितीय या ऊपरी सदन है। संविधान का अनुच्छेद- 80 राज्य सभा की संरचना के संबंध में प्रावधान करता है जिसके खण्ड (1) के अनुसार राज्य सभा राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित किये जाने वाले बारह सदस्यों और राज्यों के तथा संघ राज्य क्षेत्रों के 238 से अनधिक प्रतिनिधियों से मिलकर बनेगी। अनुच्छेद के खण्ड (3) के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा नाम निर्देशित किये जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्हें निम्नलिखित विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है, अर्थात् साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा; तथा खण्ड (4) के अनुसार राज्य सभा में प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जायेगा।

लोक वित्तीय प्रबंधन- लोक वित्तीय प्रबंधन का सरोकार सार्वजनिक क्षेत्र में वित्तीय पहलुओं, अर्थात् मुख्यतः संसाधनों का संग्रहण व व्यय को करना, का प्रबंधन करने के साथ होता है। यह सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि इसी के माध्यम से लोक धनराशियों एवं निधियों के प्रभावकारी उपयोग को सुनिश्चित किया जाता है। यह निर्णय निर्माण की गुणवत्ता, लोक सेवा के परिणामों तथा जनता के विश्वास को प्रभावित करता है।

लोक सभा- लोक सभा संसद का प्रथम या निचला सदन है। लोक सभा की संरचना के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 81 में किया गया है। अनुच्छेद के खण्ड (1) के अनुसार लोक सभा राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुये 530 सदस्यों से अनधिक, और संघ राज्यक्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिये ऐसी रीति से, जो संसद विधि द्वारा उपबंधित करे, चुने हुये बीस सदस्यों से अनधिक से मिलकर बनेगी।

वित्तीय प्रशासन- वित्तीय प्रशासन लोक प्रशासन की वह शाखा हैं जिसका सरोकार उन सभी संचालनों के साथ होता हैं जो लोक धनराशियों एवं निधियों के विधिपूर्ण व कुशल उपयोग को सुनिश्चित करने के लिये होते हैं।

संचित निधि- संचित निधि का गठन संविधान के अनुच्छेद- 266 (1) के प्रावधानुसार किया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत सरकार को प्राप्त सभी राजस्व, उस सरकार द्वारा राज हुण्डियां निर्गमित करके, उधार द्वारा या अर्थोपाय अग्रिमों द्वारा लिये गये सभी उधार और उधारों के प्रतिसंदाय में उस सरकार को प्राप्त सभी धनराशियों की एक संचित निधि बनेगी जो ''भारत की संचित निधि'' के नाम से ज्ञात होगी।

संसदीय लोकतंत्र- संसदीय लोकतंत्र लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का वह रूप होता है, जिसमें संसद की स्थिति प्रबलकारी होती है। इसमें संसद के सदस्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रकार से जनता के द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं और वह दल या दलों का गठबंधन सरकार बनाता हैं जिसका/जिनका सबसे अधिक प्रतिनिधित्व संसद में होता है। इस प्रणाली में सरकार/कार्यपालिका संसद के प्रति जवाबदेह होती है।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अतारांकित प्रश्न, अल्पकालीन नोटिस वाले प्रश्न, तथा गैर-सरकारी सदस्यों से पूछे जाने वाले प्रश्न, **2.** 377, **3.** अनुच्छेद- 86 और 87, **4.** असत्य

4.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लोक सभा, भारत की संसद, लोक सभा के बारे में प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न, नई दिल्ली।
2. http://164.100.47.194/loksabha/FAQ.aspx
3. लोक सभा सचिवालय, (अप्रैल 2014) *Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha*] पन्द्रहवां संस्करण, नई दिल्ली।
4. http://164.100.47.194/loksabha/rules.aspx
5. राज्य सभा, भारत की संसद, विशेष उल्लेख, नई दिल्ली।
6. https://rajyasabha.nic.in/rsnew/practice_procedure/book9.asp
7. राज्य सभा सचिवालय, (जनवरी 2010 Handbook for Members of Rajya Sabha, नई दिल्ली,
8. https://rajyasabha.nic.in/rsnew/handbook/hand_book_2010.pdf
9. राज्य सभा सचिवालय, (अगस्त 2016) Rules of Procedure and Conduct of Business in the Council of States (Rajya Sabha), नवां संस्करण, नई दिल्ली,
10. http://rajyasabha.nic.in/rsnew/rs_rule/rules_pro.pdf
11. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) Indian Public Administration: Institutions and Issues, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अवस्थी, अमरेश्वर एवं आनंद प्रकाश अवस्थी, (1995) Indian Administration, तीसरा संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. कश्यप, सुभाष सी. (1995) Our Parliament, An Introduction to the Parliament of India, तीसरा संस्करण, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
4. फाड़िया, बी.एल., (1997 संस्करण) Indian Government and Politics, साहित्य भवन पब्लिकेशनस्, आगरा।
5. राज्य सभा, भारत की संसद, राज्य सभा के बारे में प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न, नई दिल्ली।
6. शर्मा, एम. पी. एवं बी. एल. सडाना (1992) Public Administration: In Theory and Practice, इक्कीसवां संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण की आवश्यकता व महत्ता का वर्णन कीजिये।
2. विधायी नियंत्रण की तकनीकों के रूप में प्रश्नकाल एवं शून्य काल की विवेचना कीजिये।
3. भारत में वित्तीय प्रशासन पर विधायी नियंत्रण की प्रभावशीलता के बारे में टिप्पणी कीजिये।

इकाई- 5 वित्तीय समितियों की व्यवस्था

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 संसदीय समितियों की अवधारणा
5.3 संसदीय समितियों का महत्व एवं उनके कार्य
5.4 संसदीय समितियों के प्रकार
5.5 संसदीय वित्तीय समितियां
    5.5.1 लोक लेखा समिति
    5.5.2 प्राक्कलन समिति
    5.5.3 लोक उपक्रम समिति
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

इस से पिछली इकाई में आप वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण, उसके महत्व, भारत में विधायी नियंत्रण की व्यवस्था और उसकी क्रियाविधियों के बारे अच्छे से अवगत हो चुके हैं। संसदीय शासन प्रणाली में संसदीय समितियों के द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जा रही है। प्रस्तुत इकाई में इस से संबंधित उपादानों, विशिष्ट रूप से वित्तीय समितियों के संदर्भ में, सविस्तार परिचर्चा की गयी हैं।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह बेहतर तरीके से प्रकाश डाल सकते हैं कि संसदीय समितियां क्या होती हैं, उनका महत्व एवं कार्य क्या होते हैं, ये समितियां कितने प्रकार की होती हैं, संसदीय वित्तीय समितियां कौन-कौन सी है, उनकी संरचना, कार्य और कर्तव्य क्या हैं तथा उनका कार्यकरण कैसा रहा है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समझ सकेंगे कि संसदीय समितियों का अर्थ, महत्व तथा कार्य क्या होते हैं;
- जान पायेंगे कि संसदीय समितियों के प्रकार क्या हैं;
- वर्णन कर सकेंगे कि संसदीय वित्तीय समितियां क्या होती हैं और ये कौन सी हैं;
- चर्चा कर पायेंगे कि संसदीय वित्तीय समितियों की संरचना, कार्य और कर्तव्य क्या हैं; और
- विश्लेषण कर सकेंगे कि वास्तविकता में वित्तीय समितियों का कार्यकरण कैसा रहा हैं और ये कैसा कार्य कर रही है।

5.2 संसदीय समितियों की अवधारणा

किसी संसदीय समिति से अभिप्राय ऐसी समिति से होता है जोकि या तो सदन (लोक सभा/राज्य सभा) के द्वारा नियुक्त या निर्वाचित की जाती है या लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा नामित की जाती है; जो अध्यक्ष/सभापति के दिशा-निर्देशन में कार्य करती है; और अपना प्रतिवेदन सदन या अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत करती है। संबंधित सदन का सचिवालय संसदीय समिति के लिये भी सचिवालय की तरह कार्य करता है। संसदीय समितियों की निम्नलिखित विशिष्ट विशेषताएं होती हैं-

1. किसी संसदीय समिति के सदस्य लाये गये प्रस्ताव पर सदन के द्वारा नियुक्त या निर्वाचित किये जाते हैं या लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा नामित किये जाते हैं।
2. लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा नामित समिति या तो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट की गयी अवधि तक या नयी समिति के नामित होने तक बनी रहती है।
3. संबंधित सदन की समिति का कोई सदस्य लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपना पद त्याग कर सकता हैं ।
4. संबंधित सदन की समिति का अध्यक्ष लोक सभा के अध्यक्ष/राज्य सभा के सभापति के द्वारा समिति के सदस्यों में से नियुक्त किया जाता है। लोक सभा में सदन का उपाध्यक्ष यदि किसी समिति का सदस्य होता हैं तो उसे उस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता हैं ।
5. लोक सभा का अध्यक्ष/राज्य सभा का सभापति संबंधित सदन की समिति के अध्यक्ष को उसके कार्य के व्यवस्थापन एवं क्रियाविधि को विनियमित करने के लिये आवश्यक निर्देश जारी करता है।
6. संबंधित सदन की समिति की बैठक के लिये गणपूर्ति उसके कुल सदस्यों का लगभग एक-तिहाई होता है।
7. किसी समिति की किसी बैठक के सभी प्रश्न उपस्थित और मतदान कर रहे सदस्यों के मतों के बहुमत के द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। यदि किसी मामले पर पक्ष और विपक्ष में पड़े मतों की संख्या बराबर होती है तो समिति के अध्यक्ष का निर्णायक मत होता है।
8. कोई संसदीय समिति किसी मामले/किन्हीं मामलों का परीक्षण करने के लिये एक या अधिक उप-समिति/समितियां गठित कर सकती है।
9. किसी समिति की बैठकें उन दिवसों और उस घंटे पर आयोजित होती है, जैसा कि उसका अध्यक्ष निर्धारित करता है।
10. किसी समिति की बैठकें असार्वजनिक रूप से आयोजित होती है।
11. संबंधित सदन के महा-सचिव के हस्ताक्षर के द्वारा जारी किये गये किसी आदेश के द्वारा किसी समिति के समक्ष गवाही देने के लिये किसी गवाह को बुलाया जा सकता है।
12. किसी समिति के पास व्यक्तियों को बुलवाने और प्रत्रादियों तथा अभिलेखों को मंगवाने की शक्ति होती है।
13. किसी समिति के निर्णयों से संबंधित किसी अभिलेख को उसके अध्यक्ष के दिशा-निर्देशन में बनाकर रखा जाता है और उसके सदस्यो में संचारित किया जाता हैं ।
14. प्रत्येक समिति का अध्यक्ष संबंधित सदन को उसका प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है। यदि समिति को उपयुक्त लगता है तो वह सदन में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उसका कोई भाग सरकार को दे सकता है। प्रतिवेदन और उससे संबंधित किसी भाग को सदन में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व तक गोपनीय माना जाता है।
15. सदन का सत्रावसान होने की स्थिति में समिति के समक्ष किसी लम्बित कार्य का व्यपगमन नहीं होता है।

5.3 संसदीय समितियों का महत्व एवं उनके कार्य

संसदीय समितियों की आवश्यकता इस कारण से महसूस की जाती है कि वर्तमान समय के आधुनिक काल में संसद और उसके सदनों के द्वारा जो काम किया जाता है वह बहुत ही विविध तथा जटिल स्वरूप का हो चुका हैं; उसकी मात्रा एवं फैलाव में भी कालांतर में अत्यंत वृद्धि हो गयी हैं; और संसद के पास इन बढ़े हुये कार्यों को निपटाने के लिये समय बहुत सीमित होता है। स्थिति यह हो गयी हैं कि सदनों के समक्ष जो भी मामले आते हैं, चाहे वे विधायी हो या कोई अन्य, उन पर सावधानीपूर्ण एवं सतर्कतापूर्वक विचार करना उनके लिये संभव नहीं हो पाता है। एक प्रकार से यह कहा जा सकता हैं कि सदन में प्रत्येक मामले पर अच्छी तरह से और व्यवस्थित रूप से विचार करना तथा उसकी संवीक्षा करना दुष्कर होता जा रहा है। चूंकि विधायी मामले महत्वपूर्ण मामले होते हैं, उनका सचेत रूप से निपटारा करना आवश्यक होता है, और सदन पर्याप्त समय के अभाव के कारण उनको यथोचित प्रकार से निपटा नहीं पाता है। ऐसी दशा में उन मामलों को तर्कशील तरीके से देखने के लिये किसी ऐसे संगठन को गठित करना जिसमें सम्पूर्ण सदन का विश्वास हो और उसे संसदीय कार्यों को सौंपना समीचीन हो जाता है। यह संगठन संसदीय समिति का होता है। संसदीय समितियों को गठित करना तथा उनके माध्यम से यथेष्ट कार्यों को सम्पादित करना एक सामान्य परिपाटी हो चुका है।

संसदीय समितियां, संसदीय शासन प्रणाली में प्रमुख स्थान रखती हैं और महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये समितियां संसद, कार्यपालिका एवं आम जनता के मध्य एक गत्यात्मक कढ़ी प्रदान करती हैं। संसदीय समितियों की भूमिका सहायक अभिकरणों वाली होती है। ये समितियां संसद को आवश्यक सहायता प्रदान करती हैं, जिससे कि वह अपने कार्यों एवं कर्तव्यों को कुशलतापूर्वक, प्रभावपूर्ण तरीके से और शीघ्रता से निभा सके। संसद के द्वारा समितियों को जो भी मामले निर्दिष्ट किये जाते हैं उनको वे दक्षता एवं विशेषज्ञता के साथ देखती है, जिससे कि उन मामलों के साथ औचित्यपूर्ण ढंग से न्याय हो सके। संसदीय समितियां प्रायः शांत और निश्चल वातावरण में कार्य करती हैं, जिस कारण से उनके सदस्यों के लिये संभव होता है कि वे उल्लिखित मामलों पर गहनता तथा व्यावहारिक तरीके के साथ विचार-विमर्श कर सकें, उन पर विस्तारपूर्वक चर्चा कर सकें, और उदारता के साथ अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकें। संसदीय समितियों का कार्यपालिका के कार्यकरण पर हितकारी प्रभाव होता है। इनके माध्यम से संसद शासन और प्रशासन पर अपना प्रभाव एवं नियंत्रण रखती हैं तथा कार्यपालिका के द्वारा प्राधिकार के दुरूपयोग को रोकती हैं। अधिकांश समितियों में आम जनता भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध होती हैं। आम जनता की भूमिका इस प्रकार से आती हैं कि वे समितियों को ज्ञापन देते हैं जिसमें कि सुझाव दिये गये होते हैं और जब समितियों के द्वारा घटनास्थल पर अध्ययन किये जाते हैं तब लोगों से सूचनाएं ली जाती हैं तथा उनसे मौखिक प्रमाण लिया जाता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संसदीय समितियों की भूमिका प्रभाव डालने वाली, सलाह देने वाली, विवेचना एवं संवीक्षा करने वाली और जवाबदेही को सुनिश्चित करने वाली होती हैं। इन समितियों की सिफारिशों को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा जाता है और ऐसा इसलिये है, क्योंकि इनका कार्य करने का ढंग अपक्षपाती रहा है तथा इनमें होने वाले विचार-विमर्श और इनके निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष रहे है।

5.4 संसदीय समितियों के प्रकार

भारतीय संसद के दोनों सदनों में समितियों की एक सुव्यवस्थित तथा संगठित व्यवस्था विद्यमान है। लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियम एवं अध्यक्ष/सभापति के द्वारा जारी निर्देश समितियों के संगठन, उनके सदस्यों की नियुक्ति, कार्यकाल, कार्यों तथा क्रियाविधियों को विनियमित करते हैं। संसदीय समितियों के स्वरूप के अनुसार उनको दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है- स्थायी एवं तदर्थ। स्थायी समितियां

नियमित तौर पर पायी जाने वाली और निरंतर कार्य करने वाली समितियां होती हैं। ये समितियां संसद के किन्हीं अधिनियमों या लोक सभा और राज्य सभा के कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के प्रावधानुसार गठित की जाती हैं। स्थायी समितियों के उदाहरण हैं- वित्तीय समितियां, विभागों से संबंधित स्थायी समितियां, कार्य सलाहकारी समिति (राज्य सभा व लोक सभा) विशेषाधिकार समिति (राज्य सभा व लोक सभा), सदन की बैठकों से सदस्यों के अनुपस्थित रहने से संबंधी समिति (लोक सभा), सरकारी आश्वासन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), पटल पर रखे गये प्रत्रादि से संबंधीसमिति (राज्य सभा व लोक सभा), याचिका समिति (राज्य सभा व लोक सभा), गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों एवं संकल्पों से संबंधी समिति (लोक सभा), अधीनस्थ विधायन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), सामान्य प्रयोजन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), सदन समिति (राज्य सभा व लोक सभा), नियम समिति (राज्य सभा व लोक सभा), आचारनीति समिति (राज्य सभा व लोक सभा), पुस्तकालय समिति (लोक सभा), अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण से संबंधी समिति (लोक सभा), महिला सशक्तीकरण समिति (लोक सभा), लाभ के पद से संबंधी संयुक्त समिति, संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्तों से संबंधी संयुक्त समिति, संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना समिति (राज्य सभा), और राज्य सभा के सदस्यों को कम्प्यूटर की व्यवस्था करने संबंधी समिति।

तदर्थ समितियां अस्थायी स्वरूप वाली समितियां होती हैं जो किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिये गठित की जाती हैं। जब ये समितियां सौंपे गये कार्यों को समाप्त कर लेती हैं और अपने प्रतिवेदनों को संबंधित सदन को दे देती हैं तब इनका अस्तित्व समाप्त हो जाता हैं ।

तदर्थ समितियों के उदाहरण हैं- रेलवे उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व को देय लाभांश के दर की समीक्षा करने के लिये संसदीय समिति (रेलवे करार समिति) (लोक सभा), संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना समिति (लोक सभा), संसद भवन-समूह में खाद्य पदार्थों के प्रबंधन से संबंधी समिति (लोक सभा), संसद भवन-समूह में राष्ट्रीय नेताओं एवं सांसदों के चित्रों/प्रतिमाओं के प्रतिष्ठापन से संबंधी समिति (लोक सभा), लोक सभा के सदस्यों को कम्प्यूटर की व्यवस्था करने संबंधी समिति, संसद भवन-समूह में सुरक्षा से संबंधी समिति (लोक सभा), प्रोटोकाल के मानदण्ड़ों के उल्लंघन तथा लोक सभा के सदस्यों के साथ सरकारी अधिकारियों के तिरस्कारक व्यवहार से संबंधी समिति, अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण से संबंधी समिति (लोक सभा), किसी सदस्य के अनुचित आचरण की जांच करने के लिये समिति (लोक सभा), संसद भवन-समूह के धरोहर वाले चरित्र को बनाकर रखने एवं उसका विकास करने के लिये संयुक्त संसदीय समिति, भू अधिग्रहण, पुनर्वासन तथा स्थानांतरगमन (दूसरा संशोधन) विधेयक, 2015 में उचित क्षतिपूर्ति एवं पारदर्शिता के अधिकार से संबंधी संयुक्त समिति, नागरिकता अधिनियम, 1955 को संशोधित करने वाले विधेयक से संबंधी संयुक्त समिति, और वित्तीय संकल्प एवं निक्षेप बीमा विधेयक, 2017 से संबंधी संयुक्त समिति।

5.5 संसदीय वित्तीय समितियां

भारत की संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था में चूंकि सरकार वित्तीय प्रबंधन के मामले में संसद के प्रति जवाबदेह होती है, इसलिये संसद के द्वारा लोक प्रशासन पर वित्तीय नियंत्रण रखा जाता है। संसद सरकार के वित्त और वित्तीय व्यवस्था का पर्यवेक्षण करती हैं, जिसमें कि उसकी वित्तीय नीतियों तथा प्रस्तावों की संवीक्षा किया जाना सम्मिलित होता है। यह संवीक्षा या तो लोक हित के मामलों को उठाने वाली संसदीय प्रक्रियात्मक युक्तियों के माध्यम से या संसदीय समितियों के माध्यम से की जाती है। संसद के द्वारा जब बजट पारित कर दिया जाता है, तब वह यह सुनिश्चित करती है कि सरकार के द्वारा वित्तीय विषयों का प्रबंधन युक्तिसंगत, विचारपूर्ण एवं नियत तरीकों से किया गया है। संसद तीन वित्तीय समितियों- लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, तथा लोक उपक्रम समिति

के माध्यम से उक्त के बारे में अपने आप को आश्वस्त करती है। तीनों वित्तीय समितियों में कुछ सामान्य विशेष तायें दृष्टिगोचर होती है-

1. वित्तीय समितियां वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में संसद के रक्षक की भूमिका निभाती हैं।
2. ये समितियां संबंधित सदन के द्वारा एक वर्ष के लिये निर्वाचित की जाती हैं।
3. सरकार के मंत्री इन समितियों के सदस्य नहीं होते हैं। मंत्रियों को इन समितियों के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिये बुलाया नहीं जा सकता है।
4. सभी तीनों वित्तीय समितियों के अध्यक्ष लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।
5. ये समितियां कार्य प्रक्रिया के अपने आंतरिक नियमों को बना सकती है। इन नियमों का अनुमोदन लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा होना होता है।
6. ये समितियां दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के कार्यों के साथ हस्तक्षेप नहीं करती हैं और प्रशासनिक कार्यों का परीक्षण पूर्वव्यापी तौर पर करती है। इन समितियों के द्वारा केवल उन कार्यों का परीक्षण किया जाता है जो किये जा चुके है या नहीं किये गये है, जिन्हें कि अन्यथा किया जाना था।
7. इन समितियों के विष्कर्ष परिणाम सिफारिशों के रूप में होते हैं जिन्हें कि सम्मानजनक दृष्टिकोण से देखा जाता है।

वित्तीय समितियों का संगठन देश की संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था का अनूठा संगठन है, जिन्हें कि गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। एक तरीके से यह कहा जा सकता है कि ये समितियां लोक प्रशासन की संसद के प्रति जवाबदेही सीधे तौर पर लेकर आती है, क्योंकि इनमें लोक सेवक समितियों के अध्यक्ष और सदस्यों के साथ आमने-सामने आते है। इन समितियों के द्वारा वित्तीय मामलों में निरंतर तथा विस्तृत नियंत्रण रखा जाता है। ये समितियां अपने कार्यकरण से सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में व्याप्त अकार्यकुशलताओं, असावधानियों, अपव्ययों और अविवेकपूर्ण कार्यों को उजागर करती आयी हैं। इनके द्वारा रखी जा रही वित्तीय चौकसी में सजगता रही है और इस से प्रशासन में भी वित्तीय कार्यों के प्रति सतर्कता दिखायी देती हैं। समितियों के प्रतिवेदनों को सभी पक्षों के द्वारा सम्मान भाव के साथ देखा जाता रहा है। इन प्रतिवेदनों के महत्व को इस बात से समझा जा सकता है कि सरकार के द्वारा समितियों की अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार किया जाता रहा है। इन समितियों ने भी समुचित क्रियाविधियां विकसित की है, जिनका प्रयोग करते हुये उनके लिये यह सुनिश्चित कर पाना संभव हो पाता है कि सरकार इनकी सिफारिशों पर यथोचित सोच-विचार कर रही हैं या नहीं। सरकार संबंधित समिति को उसकी सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही के संबंध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है, जिसमें कि सिफारिशों के क्रियान्वयन की प्रगति का सम्पूर्ण विवरण दिया जाता है। इस प्रकार से समितियां अपने प्रतिवेदनों पर अनुवर्तन कार्यवाहियां करती आयी हैं।

5.5.1 लोक लेखा समिति

लोक लेखा समिति की स्थापना मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधारों तथा भारत सरकार अधिनियम, 1919 के परिणामस्वरूप वर्ष 1921 में हुयी थी। उस समय इस समिति का अध्यक्ष वॉयसराय की कार्यकारी परिषद का वित्त सदस्य होता था और वित्त विभाग के द्वारा समिति को सचिवालीय सहायता प्रदान की जाती थी। अंतरिम शासन के दौरान वित्त मंत्री समिति का अध्यक्ष होता था और स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार का वित्त मंत्री इसका अध्यक्ष हो गया। इस प्रकार से समिति की संरचना में आधिकारिक तत्व की प्रबलता वर्ष 1949 तक बनी रही। देश के संविधान के प्रभावी होने के साथ ही समिति की संरचना में आमूल परिवर्तन आया और उसका आधिकारिक तत्व हट गया। अब यह समिति वास्तविक संसदीय समिति बन गयी और लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के नियम संख्या 308 एवं 309 में क्रमशः इसके कार्यों तथा गठन का प्रावधान किया गया।

1. **समिति की संरचना-** लोक लेखा समिति में वर्ष 1954-55 तक लोक सभा के 15 सदस्य होते थे और उस वर्ष से राज्य सभा के 07 सदस्य भी इसमें सम्बद्ध कर दिये गये। परिणामस्वरूप समिति के सदस्यों की संख्या बढ़कर 22 हो गयी।

   लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 309 के अनुसार समिति में 22 से अनधिक सदस्य होंगे, जिसमें से 15 सदस्य लोक सभा से उसके सदस्यों में से प्रत्येक वर्ष आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे, और राज्य सभा के 07 से अनधिक सदस्य होंगे जो उस सदन के द्वारा समिति के साथ सम्बद्ध होने के लिये नामित किये जायेंगे। कोई मंत्री समिति के सदस्य के तौर पर निर्वाचित नहीं किया जायेगा और यदि कोई सदस्य, समिति में निर्वाचित होने के उपरांत, मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह सदस्य ऐसी नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रह जायेगा। तथा समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक का नहीं होगा।

   समिति के अध्यक्ष के तौर पर वर्ष 1966-67 तक शासित दल के किसी वरिष्ठ सदस्य को लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा नियुक्त किया जाता था। वर्ष 1967 में लोक सभा में विपक्षी दल के किसी सदस्य को लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। तब से यह परम्परा चली आ रही है। समिति की बैठक के लिये गणपूर्ति 04 सदस्यों की होती है।

2. **समिति के कार्य एवं कर्तव्य-** लोक लेखा समिति का मुख्य कार्य भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन, जोकि राष्ट्रपति के माध्यम से संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाता हैं, का परीक्षण करना होता है। समिति नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक की सहायता से सरकार के लेखा-परीक्षण किये गये लेखाओं की संवीक्षा करती है। इस विस्तृत रूप संरचना के अंतर्गत लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 308 लोक लेखा समिति के निम्नलिखित कार्यों एवं कर्तव्यों को वर्णित करते हैं-

   - भारत सरकार के व्यय के लिये सदन के द्वारा प्रदान की गयी धनराशि के विनियोग को दिखाने वाले लेखाओं, भारत सरकार के वार्षिक वित्त लेखाओं और ऐसे अन्य लेखाओं जो सदन के समक्ष रखे गये हैं, जैसा की समिति को उपयुक्त लगे, का परीक्षण करना।
   - भारत सरकार के विनियोग लेखाओं और उस पर नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन की संवीक्षा करने में समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने आप को निम्नलिखित के बारे में समाधान करे।
   - कि लेखाओं में जो धन संवितरित हो चुके के तौर पर दिखाया गया हैं वह उस सेवा या प्रयोजन के लिये विधिक रूप से उपलब्ध था और प्रयोज्य था जिसके लिये उसे प्रयोग या भारित किया गया।
   - कि व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकार के अनुरूप हैं; और
   - कि प्रत्येक पुनर्विनियोग सक्षम प्राधिकारी के द्वारा बनाये गये नियमों के अंतर्गत इस संबंध में किये गये प्रावधानों के अनुसार किया गया है।

इसके अतिरिक्त समिति का कर्तव्य निम्नलिखित भी होगा-

- राजकीय निगमों, व्यापारिक और विनिर्माणक योजनाओं, प्रतिष्ठानों तथा परियोजनाओं के आय और व्यय को दिखाने वाले लेखाओं के विवरण साथ ही में तुलन पत्रों तथा लाभ और हानि के लेखाओं के विवरण, जो राष्ट्रपति ने किसी विशिष्ट निगम, व्यापारिक या विनिर्माणक योजना या

प्रतिष्ठान या परियोजना के वित्तीयन को विनियमित कर रहे संविधिक नियमों के अंतर्गत तैयार करना अपेक्षित किया था या जिनको तैयार किया जा रहा है, तथा उन पर नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन का परीक्षण करना;

- स्वायत्त और अर्द्ध-स्वायत्त निकायों के आय और व्यय को दिखा रहे लेखाओं के विवरण, जिनका लेखा-परीक्षण या तो राष्ट्रपति के निर्देशों या संसद कि किसी संविधि के अंतर्गत नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के द्वारा किया गया हैं, का परीक्षण करना;
- ऐसे मामलों में नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार करना जहां राष्ट्रपति ने नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक से अपेक्षित किया होगा कि वह किन्हीं प्राप्तियों का लेखा-परीक्षण करे या स्टोर्स एवं स्टॉकस के लेखाओं का परीक्षण करे।
- यदि किसी वित्तीय वर्ष के दौरान किसी सेवा पर कोई धन सदन के द्वारा प्रदान की गयी धनराशि से अतिरेक खर्च हो गया हैं तो समिति प्रत्येक मामले के तथ्यों के संबंध में उन परिस्थितियों का परीक्षण करेगी, जिनके कारण ऐसा अतिरेक हो गया हैं औ ऐसी सिफारिश करेगी जैसा उसे उपयुक्त लगे।

नियम यह प्रदान करते हैं कि लोक लेखा समिति अपने कार्यों को उन लोक उपक्रमों के संबंध में नहीं करेगी, जिन्हें लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियमों या सदन के अध्यक्ष के द्वारा लोक उपक्रम समिति को आवंटित किया गये हैं।

3. **समिति के कार्यकरण का विश्लेषण-** लोक लेखा समिति के बारे में कहा जा सकता है कि यह कदाचित वह उत्तम माध्यम है, जिसके निमित्त करदाताओं के लिये यह संभव होता है कि वे ज्ञात कर सके कि उनके धन का व्यय सरकार द्वारा किस प्रकार से और कहां पर किया गया है। समिति का कार्य दलीय संबंधों से परे रहा है और उसके द्वारा सभी मामलों का परीक्षण राष्ट्रीय हित के मनोयोग किया जाता रहा है। समिति अपने कार्य को सुसाध्य तरीके से करने के लिये उप-समितियों, कार्य समूहों और घटनास्थलीय अध्ययन समूहों को गठित करती रही है।

समिति को अपने कार्यकरण में सदैव ही नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक, जो सरकार के वार्षिक लेखाओं का परीक्षण करता है, का साथ प्राप्त रहता है तथा उसे समिति का 'मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक' कहा जाता है। वह समिति की सहायता जांच-पड़ताल करने, साक्षियों से पूछताछ करने तथा प्रतिवेदन को तैयार करने में करता है। प्रत्येक वर्ष अपने कार्यकाल के आरम्भ में समिति नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों में सम्मिलित अंकेक्षण के महत्वपूर्ण परिच्छेदों को गहन परीक्षण के लिये चुनती है और समय-समय पर उन से संबंधित प्रतिवेदनों को सदन में प्रस्तुत करती है। समिति अप्रैल 2018 तक 1,596 प्रतिवेदन प्रस्तुत कर चुकी है।

लोक लेखा समिति के प्रतिवेदन अर्थपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डालते रहे हैं और सरकारी क्रियाविधियों में सुधार सुझाते रहे हैं। सरकार से अपेक्षित होता है कि प्रतिवेदन में सम्मिलित सिफारिशों के संबंध में जो उसने कार्यवाही की है या करनी प्रस्तावित की है उसके बारे में समिति को प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के छः माह के भीतर अवगत कराये। समिति सरकार के द्वारा दिये गये प्रत्युतरों पर विचार करती है और उसके पश्चात् 'की गयी कार्यवाही का प्रतिवेदन'(action taken report) संसद को प्रस्तुत करती है। यह व्यवस्था संसद के प्रति कार्यपालिका की जवाबदेही को सुनिश्चित करती है।

5.5.2 प्राक्कलन समिति

प्राक्कलन समिति की उत्पति वर्ष 1921 में स्थापित स्थायी वित्त समिति से देखी जा सकती है जो वित्त विभाग के अधीन कार्य करती थी। स्वतंत्रता से पूर्व जेम्स ग्रिग, एक ब्रिटिश सिविल सेवक जो वर्ष 1934 में तत्कालीन भारत सरकार के वित्त सदस्य नियुक्त हुये, ने यह प्रस्ताव रखा था कि यूनाइटेड किंगडम के प्रतिरूप पर भारत में भी एक प्राक्कलन समिति गठित की जानी चाहिये, परन्तु उनका यह प्रस्ताव उस समय स्वीकार नहीं हो सका। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् वर्ष 1950 में तत्कालीन वित्त मंत्री जॉन मथायी ने प्राक्कलन समिति का गठन करने का सुझाव दिया था। उनके सुझाव को स्वीकार करते हुये प्रथम संसदीय प्राक्कलन समिति अप्रैल 1950 को गठित की गयी। इस समिति के कार्यों, गठन तथा प्राक्कलनों के परीक्षण का प्रावधान लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के नियम संख्या 310, 311 एवं 312 में किया गया है।

1. **समिति की संरचना-** प्राक्कलन समिति में आरम्भ में 25 सदस्य होते थे। वर्ष 1956-57 में सदस्यों की संख्या में 05 की वृद्धि कर दी गयी और तब से समिति में 30 सदस्य हैं। ये सभी सदस्य लोक सभा से होते हैं। लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 311 के अनुसार, समिति में 30 से अनधिक सदस्य होंगे जो सदन (लोक सभा) के द्वारा अपने सदस्यों में से प्रत्येक वर्ष आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे। कोई मंत्री समिति के सदस्य के तौर पर निर्वाचित नहीं किया जायेगा और यदि कोई सदस्य, समिति में निर्वाचित होने के उपरांत, मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह सदस्य ऐसी नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रह जायेगा। समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक का नहीं होगा। वर्ष 1956-57 से एक परम्परा चली आ रही है कि समिति के एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक वर्ष पद से हट जाते हैं और शेष सदस्य पुनः निर्वाचित हो जाते हैं। ऐसा होने से समिति की कार्य-विधियों एवं कसौटियों में निरंतरता बनी रहती है।

   प्राक्कलन समिति का अध्यक्ष लोक सभा के अध्यक्ष के द्वारा नियुक्त किया जाता है और यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष समिति का सदस्य होता है तो वह स्वतः उसका अध्यक्ष बन जाता है। अन्यथा, शासित दल के किसी वरिष्ठ सदस्य को समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।

2. **समिति के कार्य-** प्राक्कलन समिति का मुख्य ध्येय सरकार के वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात् बजट में सम्मिलित प्राक्कलनों की संवीक्षा करना तथा सरकारी व्यय में मितव्ययता को लाने और उसे अधिक प्रयोजनपरक बनाने के लिये सुझाव देना होता है। ये उन प्राक्कलनों की संवीक्षा करती है जो उसे उपयुक्त लगते हैं या उसे सदन या लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से सौंपे जाते है। उक्त ध्येय को प्राप्त करने के लिये लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 310 प्राक्कलन समिति के निम्नलिखित कार्यों को वर्णित करते हैं-

   - यह रिपोर्ट करना कि कौन सी मितव्ययताओं, संगठन में सुधारों, कार्यकुशलताओं या प्रशासनिक सुधार, जोकि प्राक्कलनों में अंतर्निहित नीति के अनुरूप हैं, को प्रभावी बनाया जा सकता है।
   - वैकल्पिक नीतियों को सुझाना ताकि प्रशासन में कार्यकुशलता और मितव्ययता को लाया जा सके।
   - यह परीक्षण करना कि क्या धनराशि प्राक्कलनों में अंतर्निहित नीति की सीमाओं के अंतर्गत है और
   - उस अभिरूप को सुझाना जिसके अनुसार प्राक्कलनों को संसद को प्रस्तुत किया जायेगा।

नियम यह प्रदान करते है कि प्राक्कलन समिति अपने कार्यों को उन लोक उपक्रमों के संबंध में नहीं करेगी, जिन्हें लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया एवं संचालन के नियमों या सदन के अध्यक्ष के द्वारा लोक उपक्रम समिति को आवंटित किया गया है।

3. **समिति द्वारा प्राक्कलनों का परीक्षण-** लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) की नियम संख्या 312 के अनुसार समिति पूरे वित्तीय वर्ष के दौरान समय-समय पर प्राक्कलनों का परीक्षण करती रह सकती है और जैसे-जैसे उसका परीक्षण आगे बढ़ता रहता है, वह सदन को रिर्पोट करती रह सकती है। समिति के लिये यह अवलंबी नहीं होगा कि वह किसी एक वर्ष के समूचे प्राक्कलनों का परीक्षण करे। अनुदान मांगों पर इस तथ्य के रहते हुये भी कि समिति ने कोई प्रतिवेदन नहीं दिया हैं अंततः मतदान हो सकता है।
4. **समिति के कार्यकरण का विश्लेषण-** समिति का गठन होने के शीघ्र बाद ही वह केन्द्र सरकार के किसी मंत्रालय/विभाग या निकाय से संबंधित ऐसे प्राक्कलनों का चयन परीक्षण करने के लिये करती है जो उसको उपयुक्त लगते है। समिति चयन किये गये विषयों से संबंधित प्रारंभिक सामग्री मंत्रालय/विभाग या निकाय से मंगाती है और गैर-शासकीय व्यक्तियों से ज्ञापन भी लेती है। समिति आवश्यकतानुसार उप-समितियों, कार्य समूहों और घटनास्थलीय अध्ययन समूहों का गठन करती है। समिति की औपचारिक बैठकों में शासकीय एवं गैर-शासकीय साक्षियों को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिये बुलाया जाता है। विभिन्न तरीकों से एकत्र की गयी सूचना के आधार पर वह अपने अवलोकन तथा सिफारिशों को लेकर आती है जो उसके प्रतिवेदनों में समाहित किये जाते है जिनको लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। संबंधित मंत्रालय/विभाग या निकाय को प्रतिवेदन को सदन में प्रस्तुत करने के छः माह के भीतर उसमें दिये गये अवलोकनों/सिफारिशों पर कार्यवाही करनी होती है और समिति को 'की गयी कार्यवाही का प्रतिवेदन' (action taken report) देना होता है। समिति सरकार के द्वारा दिये गये प्रत्युतरों का परीक्षण करती है और सदन को रिर्पोट करती है। समिति अपने आरम्भ से मार्च 2018 तक 1,118 प्रतिवेदन प्रस्तुत कर चुकी है।

5.5.3 लोक उपक्रम समिति

भारत की संसदीय लोक उपक्रम समिति ब्रिटिश संसद की पहले की राष्ट्रीयकृत उद्योगों पर प्रवर समिति के प्रारूप पर आधारित है। लोक उपक्रम समिति को स्थापित करने की इच्छा से लोक सभा के स्वतंत्र सदस्य डॉ0 लंका सुन्दरम ने दिस्मबर 1953 में सदन में एक प्रस्ताव को लेकर आये, जोकि अपना लिया गया था। एक लंबे समय तक चर्चा चलने के पश्चात् लोक सभा ने अंततः नवम्बर 1963 में लोक उपक्रम समिति को स्थापित करने के प्रस्ताव को अपना लिया जो मई 01, 1964 को अस्तित्व में आयी। इस समिति ने वर्ष 1965 में कार्य करना आरम्भ किया। लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों (पन्द्रहवां संस्करण) के नियम संख्या 312 'क' एवं 312 'ख' में क्रमशः इसके कार्यो तथा गठन का प्रावधान किया गया है।

1. **समिति की संरचना-** लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों की नियम संख्या 312 'ख' के अनुसार- समिति में 22 से अनधिक सदस्य होंगे, जिसमें से 15 सदस्य लोक सभा से उसके सदस्यों में से प्रत्येक वर्ष आनुपातिक प्रतिनिधित्व सिद्धांत के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे, और राज्य सभा के 07 से अनधिक सदस्य होंगे जो उस सदन के द्वारा समिति के साथ सम्बद्ध होने के लिये नामित किये जायेंगे। कोई मंत्री समिति के सदस्य के तौर पर निर्वाचित नहीं किया जायेगा और यदि कोई सदस्य, समिति में निर्वाचित होने के उपरांत, मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह

सदस्य ऐसी नियुक्ति की तिथि से समिति का सदस्य नहीं रह जायेगा। समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष से अधिक का नहीं होगा।

2. **समिति के कार्य-** लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों की नियम संख्या 312 'क' में लोक उपक्रम समिति के निम्नलिखित कार्यों को वर्णित किया गया है-
   - लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों की चौथी अनुसूची (लोक उपक्रमों की सूची) में विनिर्दिष्ट किये गये लोक उपक्रमों के प्रतिवेदनों और लेखाओं का परीक्षण करना।
   - लोक उपक्रमों से संबंधित नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के प्रतिवेदनों, यदि कोई हो, का परीक्षण करना।
   - लोक उपक्रमों की स्वायत्ता और कार्यकुशलता के संदर्भ में यह परीक्षण करना कि क्या लोक उपक्रमों के कार्यकलापों का प्रबंधन व्यवसाय के ठोस सिद्धांतों तथा विवेकी व्यवसायिक क्रियाओं के अनुसार हो रहा हैं; और
   - ऐसे अन्य कार्यों को करना जो समिति को समय-समय पर लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा आवंटित किये जायें।

नियम संख्या 312 'क' उन मामलों को भी वर्णित करता है, जिनका परीक्षण और निरूपण समिति नहीं करेगी जोकि निम्नवत हैं-

- प्रमुख सरकारी नीति के मामले जो लोक उपक्रमों के व्यापारिक या व्यवसायिक कार्यों से भिन्न होते हैं;
- दिन-प्रतिदिन के प्रशासन के मामले; और
- मामले जिन पर विचारण करने के लिये कोई तंत्र उस विशेष संविधि के द्वारा स्थापित किया गया है, जिसके अंतर्गत कोई विशिष्ट लोक उपक्रम स्थापित हुआ है।

3. **समिति के कार्यकरण का विश्लेषण-** समिति के द्वारा समय-समय पर ऐसे लोक उपक्रमों या विषयों का चयन किया जाता है जो उसे उपयुक्त लगते हैं और जो उसकी संदर्भ की शर्तों के अंतर्गत आते हैं। संबंधित मंत्रालय/लोक उपक्रम को आवश्यक सामग्री प्रस्तुत करने के लिये कहा जाता है। समिति को जैसी आवश्यकता लगती है उसी के अनुसार वह उप-समितियों, कार्य समूहों और घटनास्थलीय अध्ययन समूहों को गठित करती है। समिति के सदस्य संबंधित मंत्रालयों/विभागों/लोक उपक्रमों, गैर-सरकारी संगठनों, श्रम यूनियनों आदि के प्रतिनिधियों के साथ परिचर्चाएं करते हैं। संबंधित पक्षों का परीक्षण पूरा करने के उपरांत समिति अपने अवलोकन तथा सिफारिशों को अपने प्रतिवेदनों में सम्मिलित करती है जो संसद में प्रस्तुत किये जाते हैं। संसद में प्रतिवेदन के प्रस्तुत होने के पश्चात् संबंधित मंत्रालय/विभाग/लोक उपक्रम को प्रतिवेदन में निकाले गये निष्कर्षों और दी गयी सिफारिशों पर कार्यवाही करनी होती है तथा उसको 'की गयी कार्यवाही का प्रतिवेदन' (action taken report) सौंपना होता है। समिति इस सौंपे गये प्रतिवेदन का परीक्षण करती है और फिर संसद को रिर्पोट करती है। समिति के द्वारा 604 प्रतिवेदन संसद को प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. सरकार के मंत्री वित्तीय समितियों के सदस्य होते हैं।
2. लोक लेखा समिति के सदस्यों की संख्या 15 से बढ़कर .... हो गयी।

3. प्राक्कलन समिति के कार्यों, गठन तथा प्राक्कलनों के परीक्षण का प्रावधान लोक सभा में कार्य की प्रक्रिया तथा संचालन के नियमों के कौन से नियमों में किया गया है?

   क. 301, 302 व 303 ख. 304, 305 व 306

   ग. 307, 308 व 309 घ. 310, 311 व 312

4. लोक उपक्रम समिति के कितने सदस्य लोक सभा से निर्वाचित किये जाते हैं?

5.6 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आपको सर्वविदित हो चुका हैं कि संसदीय समितियां संसद के दोनों सदनों में पायी जाती है और उनकी कुछ विशिष्ट विशेषताएं होती हैं। ये समितियां सहायक अभिकरणों वाली भूमिका को निभाती हैं जो संसद को उसके कार्यों एवं कर्तव्यों को शीघ्रतापूर्वक व प्रभावशीलता के साथ निपटाने में सुविधाजनक बनाता है। भारतीय संसद में संसदीय समितियों की एक संगठित व्यवस्था अस्तित्व में है। ये समितियां विभिन्न प्रकारों की होती हैं जिनको की मोटे तौर पर स्थायी एवं तदर्थ समितियों में वर्गीकृत किया जाता है। स्थायी समितियों में जो प्रमुख हैं उनमें वित्तीय समितियां सम्मिलित हैं। वित्तीय समितियों की संख्या तीन हैं- लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, व लोक उपक्रम समिति और ये वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में रक्षात्मक भूमिका में रहती हैं। देश की संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था में इन समितियों का प्रतिष्ठित स्थान है और वित्तीय मामलों में ये विस्तृत नियंत्रण रखती हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आप वित्तीय समितियों की व्यापक व्यवस्था को समझते हुये विश्लेषात्मक तरीके से उस पर विचार-मंथन कर सकेंगे।

5.7 शब्दावली

गणपूर्ति- गणपूर्ति से अभिप्राय किसी सभा के पात्र सदस्यों की उस न्यूनतम संख्या से होता हैं जो उसकी किसी भी बैठक में उपस्थित होने चाहिये जिससे कि उस बैठक के कार्यों को आधिकारिक रूप से सम्पन्न किया जा सके और उस की कार्यवाहियां वैध हो सके। गणपूर्ति का प्रावधान संबंधित सभा के विधायनों/नियमों में किया गया होता हैं।

तुलन-पत्र- तुलन-पत्र किसी संगठन का वित्तीय विवरण होता है, जिसमें कि किसी विशिष्ट समय पर उसकी पूंजी, परिसम्पत्तियों, देनदारियों, ऋण आदि को सम्मिलित किया जाता हैं। तुलन-पत्र तिमाही, छमाही या वार्षिक आधार पर बनाया जा सकता है।

निर्णायक मत- निर्णायक मत वह मत होता हैं जिसका प्रयोग किसी सभा, परिषद, निकाय या समिति के पीठासीन अधिकारी के द्वारा उसकी बैठक के गतिरोध को दूर करने के लिये किया जाता है। यह एक असाधारण मत होता है, जो किसी बैठक में उस स्थिति में किसी मामले पर निर्णय लेने के लिये किया जाता है, जब उसके पक्ष और विपक्ष दोंनो में मतों की संख्या बराबर होती है।

भारत सरकार अधिनियम, 1919- भारत सरकार अधिनियम ब्रिटिश संसद द्वारा वर्ष 1919 में भारत सरकार के संबंध में और अधिक प्रावधान करने के लिये पारित किया गया था। इस अधिनियम से भारत में उत्तरदायी शासन का आरम्भ माना जाता है। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान थेः प्रांतों में द्वैध-व्यवस्था को लागू किया जाना; विषयों को केन्द्रीय व प्रांतीय एवं प्रांतीय विषयों को प्रारक्षित व अंतरित में वर्गीकृत किया जाना; केन्द्रीय विधायिका को द्विसदनीय बनाया जाना; तथा भारत में लोक सेवा आयोग को स्थापित किया जाना।

मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधार- मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा एडविन सैमुयल मोन्टेग्यू, तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया, और लॉर्ड चेलम्सफोर्ड, तत्कालीन वॉयसरॉय ऑफ इंडिया, के द्वारा वर्ष 1918 में की गयी

थी। इन सुधारों की घोषणा करने का प्रमुख आशय भारत में स्व-शासी संस्थाओं को उत्तरोत्तर स्थापित करना था। ये सुधार भारत सरकार अधिनियम, 1919 के आधार बने थे।

लोक उपक्रम- लोक उपक्रम वह उद्यम होता हैं जिसका स्वामित्व राज्य के पास होता है और इसके स्टॉक का अधिकांश भाग सरकार का होता है। ये उपक्रम सामान्य तौर पर तीन प्रकार के होते हैं- विभागीय उपक्रम, सरकारी कम्पनी एवं लोक निगम।

सहायक अभिकरण- किसी संगठन में सहायक अभिकरण वे अभिकरण होते हैं जो उसके सूत्र अभिकरण की सहायता संगठनात्मक प्रयोजनों को पूरा करने में करते हैं।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य, **2.** 22, **3.** घ, **4.**15 सदस्य

5.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) Indian Public Administration: Institutions and Issues, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अवस्थी, अमरेश्वर एवं आनंद प्रकाश अवस्थी, (1995) Indian Administration, तीसरा संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. कश्यप, सुभाष सी. (1995) Our Parliament, An Introduction to the Parliament of India, तीसरा संस्करण, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
4. राज्य सभा, भारत की संसद, राज्य सभा की समितियां, सामान्य सूचना, नई दिल्ली।
5. https://rajyasabha.nic.in/rsnew/committees/general_introduction.asp
6. राज्य सभा, भारत की संसद, राज्य सभा की स्थायी समितियां, नई दिल्ली।
7. http://164.100.47.5/webcom/typewise.aspx?type=RS
8. लोक सभा, भारत की संसद, वित्तीय समितियां, प्राक्कलन समिति, नई दिल्ली।
9. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeInformation.aspx?comm_code=10&tab=0
10. लोक सभा, भारत की संसद, वित्तीय समितियां, लोक उपक्रम समिति, नई दिल्ली।
11. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeInformation.aspx?comm_code=27&tab=0
12. लोक सभा, भारत की संसद, वित्तीय समितियां, लोक लेखा समिति, नई दिल्ली।
13. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeInformation.aspx?comm_code=26&tab=0
14. लोक सभा, भारत की संसद, समितियां, प्रस्तावना, नई दिल्ली।
15. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/CommitteeHome.aspx
16. लोक सभा, भारत की संसद, Parliamentary Committees, Introduction, नई दिल्ली।
17. http://164.100.47.194/Loksabha/Committee/Comm_Introductionnew.pdf#page=3
18. लोक सभा सचिवालय, (अप्रैल 2014) Rules of Procedure and Conduct of Business in Lok Sabha, पन्द्रहवां संस्करण, नई दिल्ली,
19. http://164.100.47.194/loksabha/rules.aspx
20. विकीपीडिया, भारत सरकार अधिनियम, 1919,

21. https://en.wikipedia.org/wiki/Government_of_India_Act,_1919
22. विकीपीडिया, मोन्टेग्यू-चेलम्सफोर्ड सुधार,
23. https://en.wikipedia.org/wiki/Montagu%E2%80%93Chelmsford_Reforms

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. बर्मन, अनिरूद्ध, (नवम्बर 15, 2010) Financial Oversight by Parliament, Background Note for the Conference on eff~ective Legislatures, PRS Legislative Research, http://www.prsindia.org/administrator/uploads/general/1370585243_Financial%20Oversight%20by%20Parliament.pdf

5 .11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संसदीय समितियों की अवधारणा को विस्तार से समझाईये।
2. संसदीय वित्तीय समितियों की सामान्य विशेष ताओं एवं महत्व का वर्णन कीजिये।
3. लोक लेखा समिति की वित्तीय नियंत्रण में भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

इकाई- 6 कार्यकारी नियंत्रण

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 कार्यकारी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व
6.3 केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा वित्तीय नियंत्रण
6.4 वित्त मंत्रालय द्वारा वित्तीय नियंत्रण
6.5 विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

इस से पिछली इकाई में आप वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण के एक भाग के रूप में संसदीय समितियों के अर्थ, विशेषताओं, महत्व, कार्यो एवं प्रकारों; संसदीय वित्तीय समितियों की विशेषताओं, उनके प्रकारों, उनकी संरचना, कार्यों एवं कतव्र्यों तथा उनके कार्यकरण की प्रभावशीलता की सीमा के संबंध में बखूबी परिचित हो चुके हैं। प्रत्येक शासन प्रणाली में विधायिका के साथ-साथ कार्यपालिका के द्वारा भी लोक संसाधनों के प्रबंधन पर नियंत्रण रखा जाता है। प्रस्तुत इकाई में कार्यपालिका के द्वारा वित्तीय प्रशासन पर रखे जा रहे कार्यकारी नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं व अवयवों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से आप कार्यकारी नियंत्रण क्या होता है, उसका महत्व क्या होता है तथा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय और विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण कैसे रखा जाता है, के बारे में बेहतर प्रकार से विचारों को व्यक्त कर सकते हैं।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समझ सकेंगे कि कार्यकारी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व क्या होता हैं; और
- ज्ञात कर पायेंगे कि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय तथा विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण कैसे रखा जाता है।

6.2 कार्यकारी नियंत्रण का अर्थ एवं महत्व

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में कार्यकारी नियंत्रण कार्यपालिका के द्वारा लोक संसाधनों के प्रबंधन पर रखे जाने वाले नियंत्रण को कहते हैं। कार्यकारी नियंत्रण आंतरिक नियंत्रण होता हैं जो संगठनात्मक पदसोपान में उच्चाधिकारियों द्वारा अधीनस्थों पर रखा जाता है। इस अर्थ में यह कार्यकारी नियंत्रण के लम्ब रूप को दर्शा रहा है। लम्ब रूप के अतिरिक्त कार्यकारी नियंत्रण क्षैतिज रूप में भी पाया जाता है। इस रूप में यह नियंत्रण अन्य समानातंर कार्यकारी

अभिकरणों के द्वारा रखा जाता है। यद्यपि लोक संसाधनों पर बाहरी और आंतरिक दोंनो प्रकार का नियंत्रण आवश्यक होता है, परन्तु पूर्ववर्ती की तुलना में उत्तरवर्ती को अधिक प्रभावकारी माना जाता है। कार्यकारी नियंत्रण में स्पष्ट रूप से निरंतरता दिखाई देती है और यह व्यवस्था में सन्निहित होता है। लोक संसाधनों के प्रबंधन पर रखे जा रहे कार्यकारी नियंत्रण में मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय तथा विभागीय अधिकारियों का नियंत्रण सम्मिलित होता है।

6.3 केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा वित्तीय नियंत्रण

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल शासन की कार्यपालिका शाखा के शीर्ष पर होता है। इस कारण से यह शासन में नीति निर्माण करने वाला सर्वोच्च निकाय होता है। मंत्रिमण्डल शासकीय गतिविधियों के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में, जिसमें वित्तीय प्रशासन भी सम्मिलित हैं, लोक नीति संबंधी पहल करता है और नीतियों को निर्धारित करता है। चूंकि शासन में वित्तीय नीतियों का मुख्य उत्तरदायित्व कार्यपालिका का होता है। अतः समस्त महत्वपूर्ण वित्तीय मामलों पर मंत्रिमण्डल द्वारा विचार और उनको संस्वीकृत किया जाना होता है। वे सभी वित्तीय मामले जिनकी मंत्रिमण्डल में चर्चा होती है और जिन पर आगे की आवश्यक कार्यवाही करने को महत्वपूर्ण समझा जाता है, उनको केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की आर्थिक मामलों की समिति को संदर्भित किया जाता हैं । केन्द्रीय मंत्रिमण्डल सचिवालय द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन संख्या ओ.एम. 1/11/2017, दिनांक 11.09.2017 के अनुसार मंत्रिमण्डल की आर्थिक मामलों की समिति की संरचना में अध्यक्ष- नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री सहित मंत्री मण्डल के कई सदस्य हैं।

आर्थिक मामलों की समिति आर्थिक क्षेत्र में सरकार की गतिविधियों का निर्देशन एवं समन्वय करती है, विकासीय गतिविधियों की प्राथमिकता निर्धारित करती है, तथा वित्तीय संसाधनों का संवर्धन करने के संबंध में सिफारिशें करती है। इस प्रकार से आर्थिक मामलों की समिति के माध्यम से मंत्रिमण्डल/सरकार द्वारा वित्तीय मामलों पर नियंत्रण रखा जाता है।

6.4 वित्त मंत्रालय द्वारा वित्तीय नियंत्रण

भारत सरकार का वित्त मंत्रालय एक ब्रिटिश विरासत है। वित्त विभाग की स्थापना सर्वप्रथम वर्ष 1810 में हुई थी। स्वतंत्रता के पश्चात् ब्रिटिश काल का वित्त विभाग स्वतंत्र देश का वित्त मंत्रालय बन गया। इस मंत्रालय का सदैव से ही शासन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वर्तमान समय में वित्त मंत्रालय अभिशासन की प्रक्रिया में एक सशक्त भूमिका को निभा रहा है और इसके अंतर्गत 5 विभाग कार्य कर रहे हैं- व्यय विभाग, राजस्व विभाग, वित्तीय सेवाएं विभाग, निवेश एवं लोक परिसम्पत्ति प्रबंधन विभाग, तथा आर्थिक कार्य विभाग।

वित्त मंत्रालय का सरोकार शासन के वित्तीय कार्य के साथ होता है। यह सम्पूर्ण राष्ट्र की अर्थव्यवस्था तथा वित्तीय मामलों का प्रबंधन करता है। भारत सरकार (कार्य आवंटन) नियम, 1961 के अंतर्गत शासन की वित्तीय शक्तियां वित्त मंत्रालय में निहित की गई है। यद्यपि भारत सरकार के वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजन नियम, 1978 के अंतर्गत अधीनस्थ प्राधिकारियों को शासन की वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजित की गई हैं पर इसके साथ ही नियम यह भी प्रावधान करते हैं कि वे वित्तीय शक्तियां जो किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को प्रत्यायोजित नहीं की गई हैं, वित्त मंत्रालय में निहित होगी। वित्त मंत्रालय निरंतर रूप से केन्द्र सरकार के वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात बजट को तैयार करने, उसे संसद में पारित करवाने, पारित हो जाने के उपरांत विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा उसके प्रावधानों के अनुसार क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण करने, राजस्व को एकत्र एवं संसाधनों को संघटित करने, तथा लोक व्यय का नियंत्रण करने के लिए उत्तरदायी होता हैं। वित्त मंत्रालय को प्रस्तावित लोक व्यय को पूरा करने के तरीकों एवं साधनों का पता लगाना होता है। वित्त मंत्रालय ने वित्तीय कार्यों को सुसाध्य बनाने के लिए महत्वपूर्ण

नियमों और विवरणिकाओं को तैयार किया है। इसके संबंध में सबसे उल्लेखनीय है- सामान्य वित्तीय नियम, 2005 तथा बजट विवरणिका, 2010।

वित्त मंत्रालय को सभी लोक निधियों का संरक्षक बनाया गया है। यह वित्तीय मामलों में नियंत्रणकारी एवं समन्वयकारी शक्तियों का प्रयोग करता है। लोक व्यय पर वित्त मंत्रालय का नियंत्रण मुख्यतः तीन चरणों में होता है- सैद्वान्तिक रूप से नीतियों एवं कार्यक्रमों का अनुमोदन करने, बजट अनुमानों के प्रावधानों को स्वीकार करने, और लोक व्यय करने से पूर्व संस्वीकृति देने के दौरान।

वित्त मंत्रालय सभी वित्तीय नियमों, विनियमों और वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन से जुड़े मामलों को प्रशासित करता है। यह केन्द्र और राज्य सरकारों से संबंधी शासकीय लेखांकन के सामान्य सिद्वांतों तथा लेखाओं के प्रारूप को निर्धारित करता है। उदाहरण के तौर पर वित्त मंत्रालय के द्वारा शासकीय लेखांकन नियम वर्ष 1990 में निर्धारित किये गए। यह केन्द्रीय सिविल लेखा कार्यालयों में लेखांकन के समुचित मापदण्डों के रखरखाव को सुनिश्चित करता है। वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग में स्थित महा लेखा नियंत्रक केन्द्र सरकार के मासिक लेखाओं को समेकित करने और वार्षिक लेखाओं को तैयार करने के लिए उत्तरदायी होता है। वित्त मंत्रालय मंत्रालयों और विभागों में प्रबंधन लेखा प्रणाली को लाने में सहायता करता है।

वित्त मंत्रालय के पास बजट को तैयार करने का समूचा उत्तरदायित्व होता है। यह मंत्रालय बजट अनुमानों को तैयार करने की पहल करता है। इस संबंध में वह प्रशासनिक मंत्रालयों और विभागों को एक परिपत्र जारी करता है। इसके माध्यम से उन्हें अपने बजट अनुमानों को तैयार करने के लिए कहा जाता है। प्रशासनिक मंत्रालय बजट के अपने अनुमानों को तैयार करते हैं और उन्हें वित्त मंत्रालय के आर्थिक कार्य विभाग के बजट प्रभाग में भेज देते हैं। बजट प्रभाग वित्तीय दृष्टिकोण से बजट अनुमानों की संवीक्षा करता है। इस संवीक्षा में मुख्यतः धनराशि की उपलब्धता और मितव्ययता को देखा जाता है। यह संवीक्षा केवल नये प्रस्तावों पर लागू की जाती है। नियमानुसार किसी भी विभाग के लिए नये या अधिक लोक व्यय के किसी प्रस्ताव को वित्त मंत्रालय की सहमति के बिना बजट में समाहित नहीं किया जा सकता है। वित्त मंत्रालय प्रशासनिक मंत्रालयों की वित्तीय मांगों को स्वीकार/अस्वीकार करता है, उनसे उनके द्वारा प्रस्तावित व्यय के संबंध में स्पष्टीकरण मांगता है और ये सब करने के उपरांत प्रत्येक मंत्रालय के लिए शुद्ध धनराशि को निर्धारित करता है। विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालयों के बजटीय अनुमानों को समेकित करने के द्वारा वित्त मंत्रालय आगामी वर्ष के लिए वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात् बजट को तैयार करता है। इसके पश्चात् वित्त मंत्रालय की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका संसद में बजट को पारित करवाने में होती है। वित्त मंत्री लोक सभा में बजट भाषण के साथ बजट को प्रस्तुत करता है। संसद द्वारा विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक को पारित करने तथा राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने के उपरांत बजट संसद में पारित माना जाता है। वित्त मंत्रालय की भूमिका एवं नियंत्रण बजट अनुमानों की संसद के द्वारा अनुमोदन के पश्चात् भी निरंतर बनी रहती है।

संसद, अनुदान की धनराशि सरकार को समूचे तौर पर, तकनीकी रूप में राष्ट्रपति, को देती है। चूंकि वित्त मंत्रालय वह अभिकरण होता है जो सरकार के वित्तीय संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए जिम्मेदार होता है। अतः उसको प्रस्तावित व्यय की वांछनीयता और औचित्य के बारे में विश्वास दिलाया जाना होता है। आश्वस्त होने के उपरांत ही वित्त मंत्रालय संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय को प्रस्तावित व्यय करने की अनुमति प्रदान करता है। वित्त मंत्रालय का यह नियंत्रण प्रशासनिक अभिकरणों के दिन-प्रतिदिन के कार्यकरण को प्रभावित करता है। वित्त मंत्रालय यह नियंत्रण तीन साधनों के माध्यम से रखता है- कार्य संबंधी नियम; एकीकृत वित्तीय सलाहकार; तथा आंतरिक लेखा-परीक्षण।

विद्यमान कार्य संबंधी नियम यह प्रदान करते हैं कि, किसी मंत्रालय द्वारा जारी विनिर्दिष्ट आदेशों को छोड़कर, कोई विभाग वित्त मंत्रालय की पूर्व सहमति के बिना किन्हीं ऐसे आदेशों को जारी नहीं कर सकता है, जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हों-

1. किसी ऐसे राजस्व का परित्याग करना या किसी ऐसे व्यय को करना जिसका प्रावधान विनियोग विधेयक में नहीं किया गया है।
2. कोई भू-अनुदान, या राजस्व का समनुदेशन, या खनिज या वन अधिकारों या जल शक्ति के अधिकारों की रियायत करना, दिया जाना, पट्टे पर प्रदान किया जाना या लाईसेंस दिया जाना या कोई ऐसी सुविधा या विशेषाधिकार दिया जाना
3. पदों के ग्रेडों की संख्या या किसी सेवा में सदस्यों की संख्या या शासकीय सेवकों के वेतन या भत्तें या उनकी कोई अन्य सेवा शर्तें जिनके वित्तीय आशय है।
4. कोई अन्य वित्तीय पहलू।

उपरोक्त के अतिरिक्त, वित्तीय संहिता में यह भी प्रदान किया गया है कि कोई लोक सेवक लोक निधियों से तब तक कोई पैसा खर्च नहीं कर सकते हैं जब तक कि सक्षम प्राधिकारी के द्वारा व्यय संस्वीकृत नहीं किया गया है। तथा किया गया व्यय वर्तमान वर्ष के लिए संसद द्वारा प्रदान किये गये विनियोग की सीमा के अंतर्गत है।

एकीकृत वित्तीय सलाहकार, केन्द्र सरकार के प्रशासनिक मंत्रालयों में वर्ष 1976 से नियुक्त किये जा रहे हैं। उसका चयन प्रशासनिक मंत्रालय और वित्त मंत्रालय द्वारा संयुक्त रूप से किया जाता है। इसलिए वह दोनों मंत्रालयों के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रत्यायोजित वित्तीय शक्तियों का प्रयोग प्रशासनिक मंत्रालय उसकी सहायता से करता है। परन्तु उन वित्तीय मामलों में जहां पर वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजित नहीं की गयी हैं, वह वित्त मंत्रालय के सामान्य मार्गदर्शन में कार्य करता है। वह प्रशासनिक मंत्रालय की सहायता उसके बजट को तैयार करने में करता है। इसके साथ ही वह बजटीय प्रावधानों के सापेक्ष विभिन्न योजनाओं की प्रगति का अनुश्रवण भी करता है। वह प्रशासनिक मंत्रालय के विभिन्न प्रकार के लेखाओं जैसे कि भविष्य निधि लेखा, ऋण लेखा आदि को बनाकर रखता है। साथ ही में वह मंत्रालय के लेखाओं को समेकित भी करता है। वह स्वायत्त निकायों, सहकारी संस्थाओं, अन्य प्राधिकारियों को किये जाने वाले भुगतान तथा मंत्रालय के लिए सहायता अनुदान, ऋण आदि की व्यवस्था करता है। वह मंत्रालय में आंतरिक जांच की युक्तिसंगत व्यवस्था को बनाकर रखता है और प्रबंधन लेखांकन की कार्यकुशल व्यवस्था को लेकर आता है।

आंतरिक लेखा-परीक्षण में वित्त मंत्रालय के महालेखा नियंत्रक के कार्यालय में स्थित आंतरिक लेखा-परीक्षण प्रभाग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह प्रभाग सिविल मंत्रालयों के आंतरिक लेखा-परीक्षण खण्डों को विभागीकृत लेखांकन कार्यालयों में लेखांकन के अपेक्षित तकनीकी मापदण्डों को बनाकर रखने के लिये मार्गदर्शन एवं सहायता प्रदान करता है। इस प्रभाग में तीन अनुभाग हैं- उत्कृष्टता का केन्द्र, नियोजन एवं समन्वय तथा निरीक्षण।

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में वित्त मंत्रालय की नियंत्रणकारी भूमिका काफी प्रभावकारी रही है। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्रालय की स्थिति अत्यंत प्रबल है। यदि किसी प्रशासनिक मंत्रालय और वित्त मंत्रालय के मध्य कोई असहमति हो जाती है तो मामले को मंत्रिमण्डल के समक्ष लाया जाता है, जिसका निर्णय बाध्यकारी होता है। परन्तु किसी निर्णय तक पहुंचने से पहले मंत्रिमण्डल वित्त मंत्री के विचारों को यथोचित महत्व देता है। यह मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्रालय की सुद्रढ स्थिति को दर्शाता है।

6.5 विभागीय अधिकारियों द्वारा वित्तीय नियंत्रण

सरकार का प्रत्येक प्रशासनिक मंत्रालय शासकीय योजनाओं एवं गतिविधियों पर व्यय करने वाला तथा राजस्व को एकत्र करने वाला प्राधिकारी होता है। अतः वित्तीय प्रबंधन में उस प्रशासनिक मंत्रालय के अधिकारियों व कार्मिकों का प्राथमिक उत्तरदायित्व होता है। वित्त मंत्रालय द्वारा वर्ष 2005 में जारी किये गये सामान्य वित्तीय

नियमों में इनके संबंध में नियमों को स्पष्ट रूप से बतलाया गया है। इन नियमों का पालन भारत सरकार के सभी कार्यालयों के द्वारा वित्तीय स्वरूप के मामलों को देखने व संभालने के दौरान करना होगा।

प्रत्येक मंत्रालय/विभाग में मुख्य लेखांकन अधिकारी होगा जो उस मंत्रालय/विभाग का सचिव होगा। सामान्य वित्तीय नियमों में उसके कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया गया है। वह अपने मंत्रालय या विभाग के वित्तीय प्रबंधन के लिए उत्तरदायी एवं जवाबदेह होगा। वह सुनिश्चित करेगा कि वे लोक धनराशि जिन्हें मंत्रालय या विभाग को विनियोग किया गया है, उनका प्रयोग उस प्रयोजन के लिए किया गया है जिसके लिए वे थी। वह उस मंत्रालय या विभाग के कथित परियोजना उद्देश्यों को प्राप्त करने में, निष्पादन मापदण्डों का पालन करते हुए, संसाधनों के प्रभावकारी, कार्यकुशल, मितव्ययी और पारदर्शी उपयोग के लिए उत्तरदायी होगा। वह परीक्षण के लिए लोक लेखा समिति या किसी अन्य संसदीय समिति के समक्ष उपस्थित होगा। वह अपने मंत्रालय या विभाग को सौंपे गए कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं की नियमित रूप से समीक्षा तथा अनुश्रवण करेगा। वह वित्त मंत्रालय द्वारा जारी किये गए विनियमों, दिशा-निर्देशों या निर्देशों द्वारा अपेक्षित उसके मंत्रालय या विभाग से संबंधित व्यय एवं अन्य विवरणों को तैयार करने के लिए उत्तरदायी होगा। वह सुनिश्चित करेगा कि उसका मंत्रालय या विभाग वित्तीय लेन-देनों के पूर्ण एवं उचित लेखा बनाकर रख रहे हैं और ऐसी व्यवस्थाओं एवं क्रियाविधियों को अपना रहे हैं जो हर समय आंतरिक नियंत्रणों को प्रदान करेंगे। वह सुनिश्चित करेगा कि उसका मंत्रालय या विभाग कार्यों के क्रियान्वयन के लिए तथा सेवाओं एवं आपूर्तियों की अधिप्राप्ति के लिए शासकीय अधिप्राप्ति की क्रियाविधि का पालन कर रहे है। वह यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभावकारी एवं उपयुक्त कदम उठायेगा कि उसका मंत्रालय या विभाग शासन को देय समस्त धनराशि को एकत्र कर रहा है तथा अनाधिकृत, अनियमित एवं खर्चीले व्यय को करने से बच रहा है।

नियम यह प्रावधान करते हैं कि सभी धनराशि जो सरकार द्वारा या उसकी ओर से प्राप्त हुई है। चाहे तो शासकीय देय या निक्षेप, अदायगी या अन्यथा धनराशि के रूप में उन्हें शासकीय लेखा में बिना किसी विलंब के दर्शाया जायेगा। यह केन्द्र सरकार के संबंधित विभाग का कर्तव्य होगा कि वह सुनिश्चित करे कि शासन की प्राप्तियों एवं देय धनराशि का सही से व तुरंत मूल्यांकन किया गया है, उन्हें एकत्र किया गया है तथा उन्हें उचित रीति से और समय पर संचित निधि या लोक लेखा, जैसा कि मामला हो, में जमा किया गया है। नियंत्रक अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारियों से उपयुक्त रूप में मासिक लेखाओं एवं विवरणों को प्राप्त करने की व्यवस्था करेगा और उनकी तुलना लेखा अधिकारी द्वारा उपलब्ध कराये गए जमा के विवरण के साथ करेगा ताकि यह देखा जा सके कि जिस धनराशि को एकत्र किए गए के रूप में दिखाया गया है, उसे विधिवत जमा किया गया है। कोई भी विभागाध्यक्ष, जो संबंधित विभाग के राजस्व को एकत्र करने के लिए उत्तरदायी है, अपने नियंत्रण के अंतर्गत एकत्र होने वाले राजस्व की प्रगति तथा बजट अनुमानों की तुलना में एकत्र किये जा रहे ऐसे राजस्व में होने वाले सभी महत्वपूर्ण बदलावों के संबंध में वित्त मंत्रालय को पूर्ण रूप से अवगत रखेगा। प्रत्येक अधिकारी जो लोक धनराशि से व्यय कर रहा है या व्यय को प्राधिकृत कर रहा है उसे वित्तीय औचित्य/उपयुक्तता के उच्च मापदण्डों द्वारा दिशा-निर्देशित होना चाहिए। प्रत्येक अधिकारी को वित्तीय व्यवस्था एवं पूर्णतयः मितव्ययता को भी प्रभावी बनाना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उसके अपने कार्यालय और अधीनस्थ वितरण अधिकारियों द्वारा सभी प्रासंगिक नियमों व विनियमों का पालन किया जा रहा हैं। वित्तीय औचित्य/उपयुक्तता के निम्नलिखित मापदण्ड होते हैं-

1. प्रत्येक अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती हैं कि लोक धनराशि से किए गये व्यय के संबंध में वह वैसी ही समान सतर्कता रखेगा जैसी कि कोई सामान्य विवेकपूर्णता वाला व्यक्ति अपने स्वयं के धन में से किए गये व्यय के संबंध में रखता है।
2. व्यय को प्रथम दृष्टि में अवसर की मांग से अधिक नहीं होना चाहिए।

3. किसी प्राधिकारी को व्यय को संस्वीकृत करने संबंधी अपनी शक्तियों का प्रयोग किसी ऐसे आदेश को पारित करने के लिए नहीं करना चाहिए जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके लिए लाभकारी होगा।
4. सामान्य तौर पर लोक धनराशि से कोई व्यय किसी विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग के हित के लिए नहीं होना चाहिए।
5. भत्तों की वे धनराशि जो किन्हीं विशिष्ट प्रकार के व्यय को पूरा करने के लिए दी गयी है, उन्हें इस प्रकार से विनियमित किया जाना चाहिए, ताकि वे भत्तें प्राप्तकर्ताओं के लिए लाभ का स्रोत न हो।

वित्तीय नियम बजट आंवटन के संबंध में नियंत्रक अधिकारी के उत्तरदायित्व को निर्धारित करते है। कोई नियंत्रक अधिकारी जिसके अधिकार-क्षेत्र में धनराशि रखी गई है। उसके उस धनराशि के संबंध में निम्नलिखित कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व होते हैं-

- व्यय बजट आवंटन से अधिक नहीं हैं।
- व्यय उस प्रयोजन के लिए किया गया हैं जिसके लिए धनराशि प्रदान की गई है।
- व्यय लोक हित में किया गया है।
- उसके अधीनस्थ कार्यालयों की वित्तीय कार्यवाहियों में त्रुटियों एवं अनियमितताओं से बचाव करने, पता लगाने के लिए और लोक धनराशि के अपव्यय एवं नुकसान से बचने के लिए उसके विभाग में नियंत्रण की पर्याप्त क्रियाविधि कार्य कर रही है।
- नियंत्रण की उपरोक्त विचारित की गई क्रियाविधि को प्रभावकारी तरीके से लागू किया गया है।

संस्वीकृत करने के लिए धनराशि के संबंध में नियम निम्नलिखित प्रावधान करते हैं-

- व्यय को करने के लिए दी गई सभी संस्वीकृतियों में उस प्रासंगिक अनुदान या विनियोग, जिससे ऐसा व्यय पूरा किया जायेगा, में किए गए प्रावधानों के विवरण दिये जायेंगे।
- व्यय की संस्वीकृति देने संबंधी सभी प्रस्ताव यह बतलायेगें कि क्या ऐसे व्यय को वैध विनियोग या पुनर्विनियोग द्वारा पूरा किया जा सकता है।
- ऐसे मामलों में जहां धनराशि को अभी सम्प्रेषित नहीं किया गया है। परन्तु व्यय की संस्वीकृति देना आवश्यक हो जाता है, वहां पर संस्वीकृति प्रदान करने वाले आदेश को यह विनिर्दिष्ट करना चाहिए कि ऐसा व्यय उस वर्ष के बजट में धनराशि को सम्प्रेषित किये जाने के अधीन होगा।

केन्द्र सरकार के विभाग अपने अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले संस्वीकृत किये अनुदानों एवं विनियोगों के सापेक्ष व्यय का नियंत्रण करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। नियंत्रण विभागाध्यक्षों और अन्य नियंत्रक अधिकारियों, यदि कोई है, तथा उनके अधीनस्थ वितरण अधिकारियों के माध्यम से रखा जाता है। किसी अनुदान या विनियोग का उपयोग केवल उन प्रभारों/व्यय (जिनमें पिछले वर्ष की देनदारियां, यदि कोई है, सम्मिलित है) को पूरा करने के लिए किया जाता है, जिनका भुगतान अनुदान या विनियोग के वित्तीय वर्ष के दौरान किया जाना है और जिनका समायोजन वर्ष के लेखा में किया जाना है। संसद द्वारा विधि द्वारा प्राधिकृत किये गए कुल अनुदान या विनियोग से अधिक कोई व्यय नहीं किया जाता है, परन्तु अनुपूरक अनुदान या विनियोग या आकस्मिकता निधि से अग्रिम धनराशि प्राप्त होने की स्थिति में ऐसा किया जा सकता है। व्यय पर प्रभावकारी नियंत्रण रखने के लिए नियंत्रक अधिकारी एवं उनके अधीनस्थ वितरण अधिकारी विहित की गई क्रियाविधि का पालन करते हैं। धनराशि को आहरित करने के लिये आहरण एवं वितरण अधिकारी भारित एवं मतदान व्यय के लिये पृथक-पृथक बिल तैयार करते हैं और उनको प्रस्तुत करते हैं। वे प्रत्येक बिल में लेखा के पूर्ण वर्गीकरण तथा विनियोग की प्राथमिक इकाई के अंतर्गत व्यय के अद्यतन क्रमिक योग की प्रविष्टि करते हैं। सभी वितरण अधिकारी लेखा के प्रत्येक लघु शीर्ष

या उप-शीर्ष के अंतर्गत आवंटन करने के लिये जी0एफ0आर0 9 प्रारूप में पृथक व्यय रजिस्टर को बनाकर रखते हैं। इस रजिस्टर को बनाकर रखने वाला अधिकारी प्रत्येक माह के तीसरे दिन पिछले माह के दौरान इसमें की गई प्रविष्टियों की एक प्रति विभागाध्यक्ष या अन्य निर्दिष्ट नियंत्रक अधिकारी के पास भेजता है। नियंत्रक अधिकारी प्रतिगम का अनुश्रवण करने के लिये जी0एफ0आर0 10 प्रारूप में ब्रॉडशीट को बनाकर रखता है। नियंत्रक अधिकारी वितरण अधिकारियों से प्रतिगमों की प्राप्ति पर उनका परीक्षण करता है और ये देखता है कि लेखाओं का वर्गीकरण उचित प्रकार से दिया गया है; क्रमिक व्यय को उचित प्रकार से नोट किया गया है और शेष धनराशि की गणना सही प्रकार से की गई है; अद्यतन व्यय अनुदान या विनियोग के अंतर्गत हैं; और प्रतिगमों पर वितरण अधिकारियों द्वारा हस्ताक्षर किये गए हैं। यदि नियंत्रक अधिकारी इनमें से किसी/किन्हीं के संबंध में त्रुटियों को पाता है तो उनको सही करने के लिये उसको आवश्यक कदम उठाने होता है। जब वितरण अधिकारियों से किसी विशिष्ट माह के सभी प्रतिगम प्राप्त हो जाते हैं और उन्हें क्रम में पाया जाता है, तब नियंत्रक अधिकारी जी0 एफ0आर0 11 प्रारूप में एक विवरण संकलित करता है तथा इस विवरण में वितरण अधिकारियों से प्राप्त आंकड़ों के योग, जी0एफ0आर0 9 प्रारूप में उसके अपने रजिस्टरों से लिये गए योग, तथा विभिन्न विस्तृत शीर्षों के अंतर्गत ऐसे समायोजनों के योग जो उसको लेखा अधिकारी द्वारा सम्प्रेषित किये गए थे, को समाविष्ट करता है। सभी आवश्यक प्रतिगमों के प्राप्त होने पर विभागाध्यक्ष जी0एफ0आर0 12 प्रारूप में एक समेकित लेखा तैयार करता है, जिसमें पिछले माह की समाप्ति तक उसके अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले अनुदान या विनियोग से हुए पूर्ण व्यय को दिखाया जाता है। विभागाध्यक्ष के द्वारा इस मासिक लेखा को प्रशासनिक मंत्रालय के सचिव के पास भेजा जाता है जो सभी विभागाध्यक्षों से प्राप्त लेखाओं को समेकित करके पूरे मंत्रालय के मासिक लेखा को तैयार करता है। मंत्रालय के मासिक लेखा को वित्त मंत्रालय में स्थित महा लेखा नियंत्रक के पास भेजा जाता है जो सभी प्रशासनिक मंत्रालयों के सचिवों से प्राप्त लेखाओं को समेकित करके पूरे भारत सरकार के मासिक लेखा को तैयार करता है। मासिक लेखाओं के अतिरिक्त वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पश्चात् वार्षिक लेखाओं को इसी प्रकार से तैयार किया जाता है। नियम ये भी प्रावधान करते हैं कि नियंत्रक अधिकारी को प्रत्येक माह जी0एफ0आर0 6ए प्रारूप में व्यय करने वाले प्राधिकारियों से देनदारी विवरण प्राप्त करने चाहिए और देनदारी रजिस्टर को बनाकर रखना चाहिए। एक विभागाध्यक्ष या नियंत्रक अधिकारी को इस स्थिति में होना चाहिए कि वह प्रत्येक माह होने वाली बचत या अतिरेक की संभावना का अनुमान लगा सके और उनका विनियिमितीकरण कर सके।

वित्तीय नियम विभागों द्वारा बचत को अभ्यर्पित करने के संबंध में उचित प्रावधान करते है। नियमों के अनुसार केन्द्र सरकार के विभाग वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व वित्त मंत्रालय द्वारा विहित की तिथि तक उसको अपने द्वारा नियंत्रित किये गए अनुदानों या विनियोगों में देखे गये सभी अनुमानित बचत अभ्यर्पित करेगें; वित्तीय वर्ष के दौरान प्रदान की गई धनराशि का उपयोग उस वित्तीय वर्ष की समाप्ति से पूर्व तक नहीं होने पर उसका व्यपगमन वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर हो जायेगा और किसी भी बचत को संभावित भावी अतिरेक के लिए सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है।

उक्त प्रावधानों के अतिरिक्त नियमों में वित्तीय नियंत्रण संबंधी अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान भी किये गए हैं। कोई प्राधिकारी शासकीय लेखा से तब तक किसी ऐसे व्यय को नहीं कर सकता है या किसी ऐसी देनदारी में नहीं पड़ सकता है, जिसमें निवेश या निक्षेप के लिए धनराशि का व्यय या अंतरण किया जाना सम्मिलित हैं जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसको संस्वीकृत न कर दिया जाए। किसी नये व्यय के लिए दी गई संस्वीकृति, जब तक कि उसका विनिर्दिष्ट रूप से नवीनीकरण नहीं किया गया है, का व्यपगमन हो जायेगा यदि ऐसी संस्वीकृति की जारी होने की तिथि से बारह माह की अवधि के दौरान सम्पूर्ण या आंशिक रूप में कोई भुगतान नहीं किया गया है। किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी सभी वित्तीय संस्वीकृतियां एवं आदेश लेखा-परीक्षण अधिकारी और लेखा अधिकारी को सम्प्रेषित किये जायेंगे। कोई अधीनस्थ प्राधिकारी लेखा-परीक्षण अधिकारी या लेखा अधिकारी को

सभी युक्तिसंगत सुविधाएं उसके कार्य के निर्वाहन हेतु प्रदान करेगा तथा किसी शासकीय लेखा या प्रतिवेदन को तैयार करने के लिए उसके द्वारा अपेक्षित जहां तक संभव हो उतनी पूर्ण सूचना उपलब्ध करायेगा।

वित्तीय नियम शासकीय नुकसान के संबंध में भी उचित प्रावधान करते हैं। नियमों के अनुसार शासन के द्वारा या उसकी ओर से रखे गए/रखी गई किसी/किन्हीं लोक धनराशि, विभागीय राजस्व या प्राप्तियों, स्टाम्प, अफीम, स्टोर्स या अन्य सम्पतियों में होने वाला कोई नुकसान या कमी, नुकसान का कारण और उसका पता लगाने का तरीका चाहे जो भी हो, संबंधित अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा अगले उच्च प्राधिकारी, संविधिक लेखा-परीक्षण अधिकारी तथा प्रमुख लेखा अधिकारी को तत्काल रिर्पोट किया जायेगा; गंभीर अनियमितताओं वाले मामलों के बारे में संबंधित मंत्रालय या विभाग के वित्तीय सलाहकार या मुख्य लेखांकन प्राधिकारी तथा वित्त मंत्रालय के महा लेखा नियंत्रक को सूचित किया जाना चाहिए; जब नुकसान के कारण एवं उसकी सीमा के बारे में पूर्ण जांच हो गई है, तब संबंधित अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा उसकी विस्तृत रिर्पोट शासन को उचित माध्यम से भेजी जानी चाहिए, उसी समय रिर्पोट की प्रति या उसका साराशं लेखा-परीक्षण या लेखा अधिकारी को अग्रसारित की जानी चाहिए; तथा नुकसान के मामलों में पता लगाने, रिर्पोटिंग करने, नकारने, अंतिम निस्तारण करने के प्रत्येक चरण में कार्यवाही यथासमय पर पूरी होनी चाहिए। नियम यह भी प्रदान करते हैं कि कोई अधिकारी छल/कपट या उसकी ओर से लापरवाही के कारण शासन को होने वाले किसी नुकसान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. वित्त विभाग को वर्ष.............में स्थापित किया गया था।
2. भारत सरकार के वित्तीय शक्तियां प्रत्यायोजन नियम कौन से वर्ष के हैं?
   क. 1976 ख. 1978
   ग. 1980 घ. 1982

6.6 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आप यह भली-भांति समझ चुके हैं कि कार्यकारी नियंत्रण आंतरिक नियंत्रण होता जो व्यवस्था में अंतनिर्हित होता है और जिसमें कि निरंतरता होती है। यह नियंत्रण मंत्रिमण्डल, वित्त मंत्रालय तथा विभागीय अधिकारियों द्वारा रखा जाता है। मंत्रिमण्डल शासन में नीति निर्माण करने वाला सर्वोच्च निकाय होता है। यह सभी मुख्य वित्तीय मामलों पर विचार करता है और उनको संस्वीकृत करता है। वित्त मंत्रालय की भूमिका अभिशासन की प्रक्रिया में अत्यंत सशक्त है और इसका प्रमुख उत्तरदायित्व सम्पूर्ण राष्ट्र की अर्थव्यवस्था तथा वित्तीय मामलों का प्रबंधन करना होता है। प्रत्येक प्रशासनिक मंत्रालय के अधिकारियों व कार्मिकों की मुख्य जिम्मेदारी अपने मंत्रालय का वित्तीय प्रबंधन करना होता है। इस इकाई का अध्ययन करने से आप कार्यकारी नियंत्रण की व्यवस्था के बारे में अपना ज्ञान-वर्धन करते हुये उस पर तर्कशील दृष्टिकोण को अपना सकेंगे।

6.7 शब्दावली

पदसोपान- पदसोपान संगठन का एक सिद्धांत व व्यवस्था है, जिसमें उसके सदस्यों को उनकी सापेक्षिक प्रस्थिति या प्राधिकार के अनुसार भिन्न श्रेणीबद्ध पदों में वर्गीकृत किया जाता है। एक पदसोपानिक संगठन पिरामिड के आकार की भांति होता है, जिसका आधार विस्तीर्ण और शीर्ष संकुचित होता है।

प्रत्यायोजन- प्रत्यायोजन संगठन का वह सिद्धांत होता है, जिसमें किसी विनिर्दिष्ट कार्य को करने के लिये एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्राधिकार सौंपा जाता है। प्रत्यायोजन में प्राधिकार प्रत्यायोजित करने वाले व्यक्ति और व्यक्ति जिसको प्राधिकार प्रत्यायोजित किया गया है। दोनों का उत्तरदायित्व उस विनिर्दिष्ट कार्य के लिये रहता है।

मंत्रिमण्डल समिति- मंत्रिमण्डल समिति मंत्रियों का एक समूह होता है जो मंत्रिमण्डल के द्वारा गठित किया जाता है। यह समिति मंत्रिमण्डल के कार्यभार को कम करती है, सौंपे गये कार्य का गहन परीक्षण करती है और उस पर निर्णय लेती है, तथा अंतर-विभागीय समन्वय को लेकर आती है। विभिन्न प्रकार की मंत्रिमण्डल समितियां पायी जाती है। जैसे कि राजनीतिक मामलों की समिति, आर्थिक मामलों की समिति, संसदीय मामलों की समिति, नियुक्ति समिति, सुरक्षा समिति आदि।

वित्तीय वर्ष- वित्तीय वर्ष वह वर्ष होता है, जिसमें कि सरकार के वित्तीय विवरणों को तैयार किया जाता है। वित्तीय वर्ष की अवधि भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग होती है। जैसे कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में अक्टूबर 01 से सितम्बर 30 तक; आस्ट्रेलिया में जुलाई 01 से जून 30 तक; चीन में जनवरी 01 से दिसम्बर 31 तक; तथा भारत, कनाडा, यूनाइटेड किंगडम, जापान व दक्षिण अफ्रीका में अप्रैल 01 से मार्च 31 तक

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1810, **2.** ख

6.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) Indian Public Administration: Institutions and Issues, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अवस्थी, अमरेश्वर एवं आनंद प्रकाश अवस्थी, (1995) Indian Administration, तीसरा संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
3. अवस्थी, अमरेश्वर एवं श्रीराम महेश्वरी, (1994) Public Administration, बीसवां संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. महा लेखा नियंत्रक, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, आंतरिक लेखा-परीक्षण, नई दिल्ली,
5. http://www.cga.nic.in/Page/Internal-Audit.aspx
6. मंत्रिमण्डल सचिवालय, भारत सरकार, (11.09.2017) मंत्रिमण्डल समितियों की संरचना, कार्यालय ज्ञापन संख्या ओ.एम. 1/11/2017, नई दिल्ली।
7. https://cabsec.gov.in/writereaddata/cabinetcommittees/english/1_Upload_1285.pdf
8. व्यय विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (2005) General Financial Rules, नई दिल्ली।
9. http://cgda.nic.in/pdf/gfr2005.pdf
10. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, https://finmin.nic.in/

6.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. चांद, एस. एन., (2008) Public Finance, खण्ड-2, अटलांटिक पब्लिकेशनस् एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
2. फाड़िया, बी.एल., (1997 संस्करण) Indian Government and Politics, साहित्य भवन पब्लिकेशनस्, आगरा।
3. भारतीय रिजर्व बैंक, भारत सरकार, प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न - भारतीय रिजर्व बैंक सरकार के बैंकर के रूप में, मुम्बई।
4. https://www.rbi.org.in/scripts/FAQView.aspx?Id=61

5. शर्मा, एम. पी. एवं बी. एल. सडाना (1992) Public Administration: In Theory and Practice, इक्कीसवां संस्करण, किताब महल, इलाहाबाद।

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्यकारी नियंत्रण की अवधारणा एवं महत्व की विवेचना कीजिये।
2. वित्त मंत्रालय में शासन की वित्तीय शक्तियां निहित की गई हैं, टिप्पणी कीजिये।
3. विभागीय अधिकारियों की वित्तीय नियंत्रण में भूमिका की व्याख्या कीजिये।

इकाई- 7 भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 लेखाशास्त्र का अर्थ एवं महत्व
7.3 भारत में लेखाशासत्र की प्रणाली
7.4 भारत सरकार की लेखाशास्त्र प्रणाली की विशेषताएं
7.5 सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया
7.6 सरकारी लेखाओं के विभाजन
7.7 सरकारी लेखाओं में लेन-देन का वर्गीकरण
7.8 लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था
7.9 वार्षिक लेखा
7.10 व्यक्तिगत निक्षेप खाता
7.11 पूंजी एवं राजस्व लेखा
7.12 भारतीय लेखाशास्त्र प्रणाली का मूल्यांकन
7.13 सारांश
7.14 शब्दावली
7.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.16 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
7.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
7.18 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

इससे पिछली की इकाईयों में आप वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में विधायी नियंत्रण, वित्तीय समितियों की व्यवस्था तथा कार्यकारी नियंत्रण के बारे में अच्छे से अवगत हो चुके हैं। भारत में लेखा शास्त्र की विस्तृत प्रणाली विद्यमान है, जिसे संविधान, विभिन्न अधिनियम, नियम व विनियम शासित करते हैं। प्रस्तुत इकाई में भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली से संबंधित विविध पहलुओं का विवरण दिया गया हैं और उन की चर्चा की गयी है।
प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से लेखाशास्त्र क्या होता है, उसका महत्व क्या होता है, भारत सरकार की लेखाशास्त्र प्रणाली की क्या विशेषतायें हैं, सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया कैसी होती है, सरकारी लेखा के कितने भाग होते हैं, सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है, लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था क्या हैं, वार्षिक लेखा क्या होते हैं, व्यक्तिगत निक्षेप खाता क्या होता हैं, पूंजी एवं राजस्व लेखा क्या होते हैं, और देश की लेखा शास्त्र प्रणाली कैसी रही हैं के संबंध में आपकी जागरूकता में वृद्धि होगी।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जान सकेंगे कि लेखा शास्त्र का अर्थ एवं महत्व क्या होता हैं;
- बूझ सकेंगे कि भारत में लेखा शास्त्र की प्रणाली कैसी हैं और उसकी क्या विशेषतायें हैं;

- समझ सकेंगे कि सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया में कौन से चरण सम्मिलित होते हैं;
- वर्णन कर पायेंगे कि सरकारी लेखाओं का विभाजन तथा सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण किस प्रकार से किया जाता हैं;
- आंकलन कर पायेंगे कि लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था कैसी हैं; और
- स्पष्ट कर सकेंगे कि वार्षिक लेखा, व्यक्तिगत निक्षेप खाता, पूंजी एवं राजस्व लेखा क्या होते हैं।

7.2 लेखाशास्त्र का अर्थ एवं महत्व

लेखा वित्तीय शब्दावली में अभिव्यक्त की गयी विभिन्न गतिविधियों एवं कार्यों के व्यवस्थित अभिलेख होते हैं। लेखा गतिविधि केन्द्रों के द्वारा बनाकर रखे जाते हैं और इनको बनाकर रखने के कार्य एवं प्रक्रिया को लेखाशास्त्र या लेखांकन कहा जाता है। लेखाशास्त्र प्रबंधन का एक अत्यंत उपयोगी साधन है, जिसके द्वारा आंकड़ों को वित्तीय स्वरूप में विश्लेषित किया जाता हैं; उनको व्यवस्थित विस्तृत रूप से अभिलेखबद्ध, वर्गीकृत और सत्यापित किया जाता है; तथा उनका सार सुगम्यतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। शासन में लेखाशास्त्र वित्तीय निर्णय-निर्माण को सुसाध्य बनाता है और बजट संबंधी योजनाओं को बनाने में सहायता करता है। इस प्रकार से लेखा शास्त्र आर्थिक नीतियों को प्रतिपादित करने एवं बजट को निर्मित करने और उसको अधिनियमित करने की प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है। लेखाशास्त्र की प्रणाली उन सभी ऐसी आवश्यक सूचना को प्रदान करती है जो सरकार की आर्थिक नीतियों व कार्यक्रमों का आगणन एवं उनके क्रियान्वयन की कार्यकुशलता का विश्लेषण करने को सुसाध्य बनाती है और ऐसा करते हुये यह वित्तीय नियंत्रण को सुकर बनाती है। ये लोक प्राप्तियों व व्यय पर प्रभावकारी तरीके से नियंत्रण रखने को संभव बनाती है, जिससे कि उनकी उचित प्रकार से गणना की जा सके, यह समर्थ किया जा सके कि लोक धनराशि का प्रयोग केवल सार्वजनिक प्रयोजनों हेतु अधिकृत किया गया है, और लोक संगठनों में आंतरिक लेखापरीक्षण को किया जा सके। ये सब सरकार और लोक प्राधिकारियों की वित्तीय मामलों में उत्तरदायित्व तथा जवाबदेही को सुनिश्चित करते हैं।

7.3 भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली

भारत में लेखा शास्त्र की प्रणाली संविधान, विभिन्न अधिनियमों, नियमों व विनियमों के प्रावधानों के द्वारा शासित होती है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद-150 यह परिकल्पित करता है कि संघ के और राज्यों के लेखाओं को ऐसे प्रारूप में रखा जायेगा जो राष्ट्रपति भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की सलाह पर विहित करें। संविधान में लेखाओं के प्रारूप के संबंध में प्रासंगिक अनुच्छेद हैं- अनुच्छेद-112- वार्षिक वित्तीय विवरण (संघ का); अनुच्छेद-114- विनियोग विधेयक (संघ का); अनुच्छेद-115- अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान (संघ का); अनुच्छेद-116- लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान (संघ का); अनुच्छेद- 202- वार्षिक वित्तीय विवरण (राज्यों का); अनुच्छेद-204- विनियोग विधेयक (राज्यों का); अनुच्छेद-205- अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान (राज्यों का); अनुच्छेद- 206- लेखानुदान, प्रत्यानुदान और अपवादानुदान (राज्यों का); अनुच्छेद-266- भारत और राज्यों की संचित निधियां और लोक लेखे; अनुच्छेद- 267- आकस्मिकता निधि; तथा अनुच्छेद- 283- संचित निधियों, आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं में जमा राशियों और अन्य धनराशियों की अभिरक्षा आदि। संविधान के उपरोक्त सभी अनुच्छेदों का सरोकार संघ एवं राज्यों के साथ है। चूंकि देश में राज्यों के साथ-साथ संघ राज्य क्षेत्र भी हैं, अतः संविधान द्वारा उनके संबंध में भी भाग- VII (अनुच्छेद- 239 से 242) में प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद- 239- संघ राज्य क्षेत्रों का प्रशासन में वर्णित प्रावधान के अनुपालन में संसद के द्वारा वर्ष 1963 में संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम पारित किया गया। इस

अधिनियम की विभिन्न धाराएं संघ राज्य क्षेत्रों के लेखाओं के प्रारूप के साथ संबंध रखती हैं, जैसे कि भाग- II (विधान सभाएं) की अनुच्छेद-27- वार्षिक वित्तीय विवरण, अनुच्छेद-29- विनियोग विधेयक, अनुच्छेद-30- अनुपूरक, अतिरिक्त या अधिक अनुदान, एवं अनुच्छेद-31- लेखानुदान; तथा भाग-V (प्रकीर्ण और संक्रमणकालीन उपबंध) का अनुच्छेद-47- संघ राज्य क्षेत्र की संचित निधि, अनुच्छेद-47 क- संघ राज्य क्षेत्र का लोक लेखा और उसमें जमा की गयी धनराशियां, अनुच्छेद-48- संघ राज्य क्षेत्र की आकस्मिकता निधि, अनुच्छेद-48 ख- संघ राज्य क्षेत्र के लेखाओं का प्रारूप एवं अनुच्छेद-48- लेखापरीक्षण के प्रतिवेदन।

भारत सरकार की लेखाशास्त्र की प्रणाली के संबंध में कुछ मुख्य सिद्धांतों का पालन किया जाता हैं। वे सिद्धांत जिनका पालन करते हुए सरकार के लेखाओं को बनाकर रखा जायेगा शासकीय लेखांकन नियम, 1990; कोषागारों के लिये लेखांकन नियम; व लेखांकन कोड, खण्ड- III में दिये गए हैं।

7.4 भारत सरकार की लेखा शास्त्र प्रणाली की विशेषताएं

भारत सरकार की लेखाशास्त्र की प्रणाली की कुछ विशिष्ट विशेषताएं हैं, जो लेखांकन के संबंध में सरकार के द्वारा बनाये गए नियमों में दृष्टिगोचर होती हैं। केन्द्र सरकार के लेखा प्रत्येक वर्ष बनाये जाते हैं। वार्षिक लेखाओं में उन वित्तीय लेन-देनों को अंकित किया जाता है, जो 1 अप्रैल से 31 मार्च तक के सम्पूर्ण वित्तीय वर्ष के दौरान हुए होते हैं। वार्षिक लेखाओं के अतिरिक्त मासिक लेखा भी तैयार किये जाते हैं, जिनमें कि लेखा तैयार किये जाने वाले माह से तत्काल पूर्व वाले माह के दौरान हुए वित्तीय लेन-देनों को अंकित किया जाता है। मासिक एवं वार्षिक लेखाओं को बनाकर रखने के लिये एक व्यापक शासकीय तंत्र होता है जो कार्यालयों में आहरण एवं वितरण अधिकारियों से आरंभ हो कर वित्त मंत्रालय में महा लेखा नियंत्रक तक जाता है।

सरकारी लेखाओं को देश की बजटीय संरचना को आवश्यक रूप से स्वीकार करना होता है। चूंकि बजट वार्षिक आधार पर बनाया जाता है, इसलिये लेखाओं में शासकीय लेन-देनों को अंतिम रूप भी वार्षिक आधार पर दिया जाता है। इसी के साथ बजट के शीर्षों एवं लेखाओं के शीर्षों के मध्य अनुरूपता पायी जाती है। लेखाओं एवं बजट प्रलेखों में भारित व्यय को मतदान व्यय से, योजना व्यय को गैर-योजना व्यय से, तथा पूंजी व्यय को राजस्व व्यय से अलग दिखाया जाता है। पूंजी व्यय तथा राजस्व व्यय के मध्य अंतर का बजटीय प्रयोजनों हेतु अत्यधिक महत्वपूर्ण होने के कारण केन्द्र और राज्यों में इन व्ययों के मध्य अंतर करने के एक समान सिद्धांतों का अनुपालन किया जाता है। लेन-देन का एक समान वर्गीकरण केन्द्र और राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय तुलना करने को संभव बनाता है।

सरकारी लेखाओं में वित्तीय लेन-देनों को ब्योरेवार विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। शासकीय प्राप्तियों व भुगतानों का सविस्तार तरीके से विभेदन और वर्गीकरण किया जाता है।

सरकारी लेखा नकद आधार पर बनाकर रखे जाते हैं। इसका अभिप्राय है कि सरकारी लेखा में अंकित लेन-देन किसी वित्तीय वर्ष के दौरान नकद की वास्तविक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दर्शाते हैं। लेखाओं में वे धनराशि नहीं दिखायी जाती है जो किसी वित्तीय वर्ष के दौरान सरकार को देय है या उसके द्वारा देय हैं। यद्यपि लेखाओं को नकद आधार पर बनाकर रखा जाता है फिर भी यह आवश्यकता महसूस की गयी है कि उन सरकारी विभागों के मामले में जहां कार्य विशुद्ध रूप से या अधिकांशतः वाणिज्यिक स्वरूप के हैं प्रासंगिक लेखाओं को प्रोद्भवन लेखांकन के संशोधित सिद्धातों के अनुसार वाणिज्यिक आधार पर रखा जाना चाहिये। इस प्रयोजन हेतु किसी मंत्रालय या विभाग के अंतर्गत कार्यरत वाणिज्यिक इकाईयों के लिए प्रोफोर्मा लेखाओं को वाणिज्यिक लेखांकन के सिद्धातों के अनुसार बनाकर रखा जाता है। प्रोफोर्मा लेखा वाणिज्यिक या अर्ध-वाणिज्यिक गतिविधियों को करने वाले सरकारी विभागीय उपक्रमों, जैसे कि औद्योगिक कारखानों या भण्डार घरों के सहायक लेखा होते हैं। इन उपक्रमों के प्रमुखों का उत्तरदायित्व होता है कि प्रोफोर्मा लेखाओं को ऐसे प्रारूप में बनाकर रखें, जैसा कि सरकार तथा

नियंत्रक और महालेखापरीक्षक के मध्य सहमति हुयी होती है। इसमें विनिर्माण, व्यापारिक, लाभ तथा हानि लेखा और तुलन-पत्र सम्मिलित होते हैं। प्रोफोर्मा लेखाओं को विभागीय उपक्रमों के प्रमुखों के द्वारा लेखा अधिकारी को उस तिथि तक प्रस्तुत किया जाना होता है जैसा कि उसके द्वारा अपेक्षित होता है। प्रोफोर्मा लेखाओं को प्रत्येक वर्ष के विनियोग लेखा के साथ संलग्न किया जाता है।

सरकारी लेखा भारतीय रूपये में बनाकर रखे जाते हैं। विदेशी मुद्रा में सभी लेन-देन एवं विदेशी सहायता भारतीय रूपये में रूपांतरित करने के पश्चात् ही लेखाओं में अंकित की जाती है।

प्रत्येक अधिकारी जो शासकीय देय को एकत्र करने या शासकीय धन का व्यय करने के लिये उत्तरदायी होता है। उसे देखना होता है कि प्राप्तियों एवं व्यय के उचित लेखा ऐसे प्रारूप में बनाकर रखे गए हैं जो सरकारी लेन-देनों के लिये विहित किये गए हैं। उसे सरकार, नियंत्रक अधिकारी या लेखा अधिकारी को उनके द्वारा अपेक्षित सभी लेखाओं और उनसे संबंधित प्रतिगमों को सही ढंग से तथा शीघ्रता से देना होता है।

आहरण अधिकारियों को अपने द्वारा आहरित सभी बिलों पर तथा उन चालानों पर जिनसे वे बैंक में शासकीय धनराशि को जमा करते है, उपयुक्त वर्गीकरण को रिकार्ड करना होता है।

लेखाशास्त्र की प्रणाली में अंतर-शासकीय तथा अंतर-विभागीय वित्तीय समायोजनों का प्रावधान किया गया है। इन समायोजनों को करने के लिये प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लेखाओं को आगामी वित्तीय वर्ष में निश्चित अवधि के लिये खुला रखा जाता है। राज्य सरकारों के साथ वित्तीय लेन-देनों के संबंध में समायोजन ऐसी रीति में और उस सीमा तक किया जाता है, जैसा कि केन्द्र सरकार और संबंधित राज्य सरकार के मध्य पारस्परिक रूप से सहमति हुयी होती है। अंतर-शासकीय समायोजन प्रत्येक वर्ष की 15 अप्रैल तिथि तक होते है। यह वह तिथि है, जिस दिन भारतीय रिजर्व बैंक के मार्च माह के लेखा बंद होते हैं। अंतर-विभागीय वित्तीय समायोजनों के संबंध में नियमों में यह प्रावधान किया गया है कि कोई सेवा विभाग अन्य विभागों से प्रदान की गयी उन सेवाओं या की गयी उन आपूत्तियों के लिये जो उसके कर्तव्यों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं कोई शुल्क नहीं ले सकता है। हालांकि कोई वाणिज्यिक विभाग या उपक्रम अन्य विभागों को प्रदान की गयी सेवाओं या की गयी आपूत्तियों के लिये शुल्क ले सकता है। इसी प्रकार से अन्य विभाग किसी वाणिज्यिक विभाग या उपक्रम को प्रदान की गयी सेवाओं या की गयी आपूत्तियों के लिये उस से शुल्क ले सकता है। अंतर-विभागीय समायोजन साधारणतयः वित्तीय लेन-देन वाले समान वित्तीय वर्ष में किये जाते है। ये समायोजन वित्तीय लेन-देन की तिथि से तीन वर्ष की अधिक अवधि में नहीं किये जा सकते हैं।

7.5 सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया

केन्द्र और राज्य सरकारों दोनों में लेखाओं को बनाकर रखने का कार्य वास्तव में अत्यंत जटिल तथा विकट होता है। देश का व्यापक आकार, उसका भौगोलिक विस्तार और सरकार के द्वारा की जा रही विविध एवं विस्तृत गतिविधियां लेखांकन के कार्य को बहुत चुनौतीपूर्ण बनाते हैं। विद्यमान उलझनकारी परिस्थितियों में सरकारी लेखांकन की प्रक्रिया का व्यवस्थित होने का महत्व काफी बढ़ जाता है। लेखांकन की प्रक्रिया को यथासंभव सुनियोजित बनाने के प्रयास किये गये हैं। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण सम्मिलित होते हैं-

1. लेखांकन संबंधी लेन-देनों का आरम्भिक अभिलेखिन करना, किसी कार्य या गतिविधि के संदर्भ में उनका वर्गीकरण करना, प्रशासनिक मंत्रालय/विभाग के साथ उनका सह-संबंध स्थापित करना, और उनका समेकन करना;
2. विधिक रूप से अनुमोदित किये गये विनियोगों के साथ वित्तीय लेन-देनों का मेल करना ताकि विधायी संवीक्षा को समर्थ बनाया जा सके; और

3. लेखांकन संबंधी समस्त आंकड़ों का विश्लेषण करना तथा उनको संबंधित सरकारों को प्रस्तुत करना, जिससे कि वे प्रबंधन के साधन के रूप में प्रयोग हो सके।

7.6 सरकारी लेखाओं के विभाजन

सरकारी लेखा संवैधानिक आवश्यकताओं के अनुसार तीन भागों में रखे जाते हैं। भाग-1 के लेखा संचित निधि के साथ, भाग- 2 के आकस्मिकता निधि के साथ, तथा भाग-3 के लोक लेखा के साथ संबंधित होते हैं।

भाग-1 के संचित निधि वाले लेखा में दो खण्ड होते हैं- राजस्व एवं पूंजी खण्ड। राजस्व लेखा खण्ड में दो अंश होते हैं- प्राप्ति शीर्ष (राजस्व लेखा) और व्यय शीर्ष (राजस्व लेखा)। प्राप्ति शीर्ष (राजस्व लेखा) कराधान से प्राप्त धनराशियों और अन्य प्राप्तियों जिन्हें राजस्व के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, के साथ संबंधित होता है। व्यय शीर्ष (राजस्व लेखा) का सरोकार उन प्राप्तियों से किये गए व्यय के साथ होता है। पूंजी लेखा खण्ड में तीन अंश होते हैं- प्राप्ति शीर्ष (पूंजी लेखा), व्यय शीर्ष (पूंजी लेखा) और लोक उधार, ऋण एवं अग्रिम धन आदि शीर्ष। प्राप्ति शीर्ष (पूंजी लेखा) का सरोकार पूंजी स्वरूप वाली प्राप्तियों के साथ होता है। व्यय शीर्ष (पूंजी लेखा) का सरोकार उस व्यय के साथ होता है जो या तो भौतिक और स्थायी स्वरूप वाली मूर्त परिसम्पतियों को बढ़ाने या आवर्ती देनदारियों को कम करने के लिये किया जाता है। लोक उधार, ऋण एवं अग्रिम धन आदि शीर्ष में लिये गये ऋण और उनकी अदायगी जैसे कि आंतरिक ऋण, बाहरी ऋण तथा उनकी वसूली सम्मिलित होते हैं। पूंजी लेखा खण्ड वाले अंश बदले में विभिन्न सेक्टरों में विभाजित होते हैं, जैसे कि सामान्य सेवायें, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवायें, आर्थिक सेवायें आदि। इन सेक्टरों के अंतर्गत विनिर्दिष्ट कार्यों या सेवाओं को वर्गबद्ध किया जाता है। ये समूहीकरण योजना वर्गीकरण के सेक्टरों के तदनुरूप होते हैं, जो मुख्य शीर्षों द्वारा निरूपित होते हैं।

भाग-2 के आकस्मिकता निधि वाले लेखा में उन लेन-देनों को अभिलिखित किया जाता है जो भारत सरकार द्वारा स्थापित आकस्मिकता निधि के साथ संबंधित होते हैं। इसमें एक मुख्य शीर्ष होता है, जिसके अंतर्गत आकस्मिकता निधि के सभी लेन-देनों को अभिलिखित किया जाना होता हैं।

भाग-3 के लोक लेखा वाले लेखा में उधार, ऋण, प्रारक्षित निधि, निक्षेपों, अग्रिम धन, निलम्बन खातों, विप्रेषित धन तथा नकदी शेष से संबंधित लेन-देनों को अभिलिखित किया जाता है। लोक लेखा वाले लेन-देनों का समूहन सेक्टरों एवं उप-सेक्टरों के अनुसार किया जाता है। ये सेक्टर एवं उप-सेक्टर लेखा के मुख्य शीर्ष और अन्य शीर्षों में विभाजित होते हैं।

7.7 सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण

सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण लेखांकन के नियमों में उसके संबंध में किये गए प्रावधानों के अनुसार किया जाता है। लेखाओं में लेन-देनों के वर्गीकरण का अभिन्न सन्दर्भ सरकार के प्रकार्यों, कार्यक्रमों और गतिविधियों, तथा राजस्व या व्यय के प्रयोजन के साथ होता है। लेखाओं में लेन-देनों का समूहन सेक्टरों में होता है जो आगे उप-सेक्टरों में विभाजित होते हैं। इनके पश्चात् लेन-देनों का वर्गीकरण विभिन्न शीर्षों के अंतर्गत किया जाता हैं जो क्रमानुसार हैं- मुख्य शीर्ष, उप-मुख्य शीर्ष, लघु शीर्ष, उप शीर्ष, विस्तृत शीर्ष, और मद शीर्ष। ये लेखाओं के छः प्रमाणित स्तर हैं जो 15 अंक के अनूठे निम्नलिखित संख्यावाचक कूट के द्वारा दर्शाये जाते हैं-

- मुख्य शीर्षः 4 अंक (प्रकार्य)
- उप-मुख्य शीर्षः 2 अंक (उप-प्रकार्य)
- लघु शीर्षः 3 अंक (कार्यक्रम)
- उप शीर्षः 2 अंक (योजना)

- विस्तृत शीर्षः 2 अंक (उप-योजना)
- मद शीर्षः 2 अंक (विनियोग की प्राथमिक इकाई)

मुख्य शीर्ष सामान्य तौर पर सरकार के किसी विशिष्ट विभाग के प्रत्येक सेक्टर/उप-सेक्टर के अंतर्गत आने वाले व्यापक प्रकार्यों के तदनुरूप होते हैं। उप-मुख्य शीर्ष मुख्य शीर्ष के अंतर्गत खोले जाते हैं उन लेन-देनों का अभिलेखिन करने के लिये जो विशिष्ट स्वरूप के होते है और जिनका इतना पर्याप्त महत्व होता है कि उनको अनन्य रूप से अभिलेखबद्ध किया जाये। लेकिन इसके साथ ही यह शीर्ष मुख्य शीर्ष के प्रकार्य के साथ सम्बद्ध होता है। प्रकार्यों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जो कार्यक्रम चलाये जाते है, वे लघु शीर्षे में दर्शाये जाते हैं। लघु शीर्ष निर्गत उन्मुख होते हैं। उप शीर्ष और विस्तृत शीर्ष क्रमशः योजनाओं और उप-योजनाओं को दर्शाते हैं। मद शीर्ष विनियोग की प्राथमिक इकाई का प्रतिनिधित्व करते हैं जो व्यय के आर्थिक स्वरूप जैसे कि वेतन, भत्ते, कार्यालय व्यय, सहायता अनुदान आदि को दिखाते हैं।

संघ एवं राज्यों के लेखाओं के मुख्य और लघु शीर्षे की सूची महालेखा नियंत्रक (व्यय विभाग, वित्त मंत्रालय) के द्वारा बनाकर रखी जाती है। महालेखा नियंत्रक भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सलाह पर लेखा के नये शीर्ष को खोलने के लिये प्राधिकृत है। इस संबंध में शक्तियां संविधान के अनुच्छेद-150 से निकली हुई हैं। महालेखा नियंत्रक द्वारा बनाकर रखी गई सूची में लेखाओं के शीर्षे को खोलने के सामान्य दिशा-निर्देश; तथा लेखाओं के सेक्टरों, मुख्य, उप मुख्य और लघु शीर्षों की पूर्ण सूची दी गई हुई है। मंत्रालय/विभाग वित्त मंत्रालय के बजट प्रभाग के परामर्श के साथ उप एवं विस्तृत शीर्षों को अपनी आवश्यकतानुसार खोल सकते हैं। वित्त मंत्रालय का व्यय विभाग भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सलाह पर मद के नये शीर्षे को खोल सकता है या विद्यमान मद शीर्षे को संशोधित कर सकता है।

7.8 लेखांकन के लिये बैंकिंग व्यवस्था

भारतीय रिजर्व बैंक सरकार का बैंकर होता है। वह ऐसा भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के अध्याय- III केन्द्रीय बैंकिंग कार्यों की अनुच्छेद 20 एवं 21 के अंतर्गत करता है। अनुच्छेद-20 के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक का दायित्व है कि वह केन्द्र सरकार की प्राप्तियों एवं भुगतान के उत्तरदात्विों को ले तथा विनिमय, विप्रेषण और अन्य बैंकिंग संचालनों को करे। अनुच्छेद-21 के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक का अधिकार है कि वह भारत में संघ के शासकीय कार्यों को करे। राज्य सरकारों के साथ लेन-देनों के संबंध में प्रावधान अनुच्छेद-21 'क' में किया गया है, जिसके अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक किसी भी राज्य सरकार के साथ इस संबंध में समझौता कर सकता है। वर्तमान में सिक्किम राज्य को छोड़कर भारतीय रिजर्व बैंक और सभी राज्य सरकारों के मध्य इस तरह के समझौते हुये हैं। इस प्रकार विधिक रूप से सरकार के बैंकर के तौर पर कार्य करना भारतीय रिजर्व बैंक का दायित्व एवं अधिकार दोनों हैं। सरकार के बैंकर के तौर पर वह सरकार का नकदी शेष बनाकर रखता है। इसके अतिरिक्त वह मंत्रालयों एवं उनके संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों को बैंकिंग सुविधायें भी प्रदान करता है। वह ऐसा या तो सीधे अपने कार्यालयों के माध्यम से या अपने एजेन्ट बैंकों के माध्यम से करता है। एजेन्ट बैंकों के स्थापन का प्रावधान अधिनियम की अनुच्छेद- 45 में किया गया है। भारतीय रिजर्व बैंक महा लेखा नियंत्रक के साथ परामर्श में किसी बैंक को नामित करता है जो किसी मंत्रालय या विभाग के अधिकृत बैंक के रूप में कार्य करता है। यह बैंक व्यावसायिक बैंक होता है जो सार्वजनिक क्षेत्र या निजी क्षेत्र का हो सकता है। भुगतान एवं लेखा कार्यालयों तथा चैक आहरण एवं वितरण अधिकारियों के किसी मंत्रालय या विभाग के अधिकृत बैंक की निर्धारित शाखाओं में समनुदेशन लेखा होते हैं। ये शाखायें विभागीय प्राप्तियों एवं अन्य प्राप्तियों को भी एकत्र करती है। भारतीय रिजर्व बैंक अपने केन्द्रीय लेखा अनुभाग, नागपुर में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के प्रमुख लेखाओं को बनाकर रखता है।

भारतीय रिजर्व बैंक ने सम्पूर्ण देश में सरकार की ओर से राजस्व को एकत्र करने और भुगतान करने की सुसंरचित व्यवस्था को स्थापित किया है। भारतीय रिजर्व बैंक के शासकीय बैंकिंग प्रभागों तथा अधिकृत बैंकों की शाखाओं का नेटवर्क शासकीय लेन-देनों को करता है। भारतीय रिजर्व बैंक अधिकृत बैंकों को केन्द्र/राज्य सरकारों के लेन-देनों को करने के लिये पारितोषिक का भुगतान करता है।

7.9 वार्षिक लेखा

केन्द्र सरकार के द्वारा प्रत्येक वर्ष दो प्रकार के लेखा तैयार किये जाते हैं- वित्त लेखा एवं विनियोग लेखा। केन्द्र सरकार के वित्त लेखा महा-लेखा नियंत्रक द्वारा तैयार किये जाते हैं। वित्त लेखा में केन्द्र सरकार के प्रयोजन हेतु संबंधित शीर्षों के अंतर्गत तीनों निधियों- संचित निधि, लोक लेखा और आकस्मिकता निधि की वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों के विवरणों को दिखाया जाता है। यह लेखा संबंधित वित्तीय वर्ष के लिये केन्द्र सरकार की प्राप्तियों एवं व्यय के हिसाब को प्रस्तुत करता है। इसी के साथ-साथ यह लेखा भिन्न लेखाओं के द्वारा स्पष्ट किये गये वित्तीय परिणामों और अन्य आंकड़ों, जिनका परीक्षण हुआ हैं, को भी दिखाता है। इन लेखाओं में राजस्व लेखा, पूंजी लेखा, लोक ऋण लेखा, तथा अन्य देनदारियां और परिसम्पतियां जो लेखाओं में शेष भागों से निकाले जाते हैं, सम्मिलित होते हैं। वित्त लेखा शुद्ध आधार पर तैयार किया जाता है जो सकल व्यय से वसूलियों के घटाव को दर्शाता है। वित्त लेखा में डाक विभाग, रक्षा मंत्रालय और रेल मंत्रालय के लेन-देन तथा संघ राज्य क्षेत्रों के शासन के भारत के लोक लेखा के अंतर्गत किये गये लेन-देन भी दिखाये जाते है। वित्त लेखा के दो भाग होते हैं- भाग I और भाग II, भाग I राजस्व, पूंजी, ऋण, निक्षेप, निलम्बन और विप्रेषित धन से संबंधित लेन-देनों तथा आकस्मिकता निधि के संक्षिप्त विवरणों को प्रस्तुत करता है। भाग II में उक्त लेन-देनों से संबंधित विस्तृत विवरण और साथ ही में अन्य संबंधित विवरण भी दिये गये होते हैं।

विनियोग लेखा, जो वित्त लेखा के पूरक होते हैं, सरकार के प्रत्येक वित्तीय वर्ष के मतदान एवं भारित व्यय के लेखा होते हैं। इन लेखाओं में मतदान एवं भारित व्यय की तुलना मतदान की गयी अनुदानों और भिन्न प्रयोजनों, जोकि विनियोग अधिनियम के साथ संलग्न अनुसूचियों में विनिर्दिष्ट किये गये होते हैं, के लिये भारित विनियोगों की धनराशियों के साथ होती है। विनियोग लेखा ये प्रकट करने के लिये अभिप्रेत होते हैं कि व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकारी के अनुरूप है। इस के अतिरिक्त विनियोग लेखा मंत्रालय/विभाग के द्वारा आदेशित किये गये पुनर्विनियोगों के प्रभावों को भी स्पष्ट करते हैं। भारत सरकार के मंत्रालयों (रेलवे मंत्रालय के अतिरिक्त) तथा सिविल विभागों (डाक एवं रक्षा सेवा विभागों को छोड़कर) के विनियोग लेखा संबंधित मंत्रालयों/विभागों के प्रमुख लेखा अधिकारियों द्वारा, महालेखा नियंत्रक के दिशा-निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में, बनाये जाते हैं। प्रत्येक प्रमुख लेखा अधिकारी को विहित प्रारूप में मंत्रालय/विभाग के प्रत्येक अनुदान/विनियोग के लिये शीर्षवार विनियोग लेखाओं को तैयार करना होता है। विनियोग लेखाओं पर संबंधित मंत्रालय/विभाग के मुख्य लेखांकन अधिकारी अर्थात् सचिव द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं। ये लेखा संबंधित मंत्रालयों/विभागों द्वारा महालेखा नियंत्रक को भेजे जाते हैं जो इन सभी लेखाओं को समेकित कर के संघ शासन विनियोग लेखा (सिविल) को तैयार करता है। डाक विभाग एवं रक्षा विभाग के विनियोग लेखा इन विभागों के सचिव तैयार करते है और उन पर हस्ताक्षर करते है। रेलवे मंत्रालय के विनियोग लेखा रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष तैयार करते है और उन पर हस्ताक्षर करते हैं। इसी प्रकार से बिना विधान-मंडल वाले संघ राज्य-क्षेत्रों, राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के सचिवालयों, लोक सभा एवं राज्य सभा के सचिवालयों, संघ लोक सेवा आयोग, भारत के नियंत्रक और महा-लेखा परीक्षक, भारत के सर्वोच्च न्यायालय, निर्वाचन आयोग के लेखाओं पर निर्दिष्ट प्राधिकारियों द्वारा हस्ताक्षर किये जाते हैं।

वित्त लेखा एवं विनियोग लेखा संबंधित प्राधिकारियों के द्वारा उस तिथि तक तैयार कर लिये जाते हैं जो भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के साथ पारस्परिक रूप से निर्धारित की जाती है। इन लेखाओं को उन प्रारूपों में

तैयार किया जाता है जो संविधान के अनुच्छेद- 150 के अंतर्गत राष्ट्रपति द्वारा भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की सलाह पर विहित किये जाते हैं। तैयार किये गये लेखाओं को नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के पास उसके अभिनिश्चयन एवं प्रमाण-पत्र के लिये भेजा जाता है। प्रमाणित किये गये वार्षिक लेखाओं तथा उनसे संबंधित प्रतिवेदनों को नियंत्रक और महा-लेखा परीक्षक के द्वारा संविधान के अनुच्छेद- 151 के अंतर्गत राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जो उनको संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाता है। विनियोग लेखा के माध्यम से संसद को पिछले वित्तीय वर्ष में उसके द्वारा किये गये विनियोगों के सापेक्ष कार्यपालिका के द्वारा व्यय की गई धनराशि के बारे में अवगत कराया जाता है।

7.10 व्यक्तिगत निक्षेप खाता

वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग द्वारा वर्ष 2005 में जारी किये गये सामान्य वित्तीय नियमों में व्यक्तिगत निक्षेप खाता के संबंध में प्रावधान किया गया है। व्यक्तिगत निक्षेप खाता प्रधिकृत किये गये बैंक में निर्दिष्ट अधिकारी के लिये खोला जाता है। यह खाता वह युक्ति होता है जो निर्दिष्ट अधिकारी के लिये सुसाध्य बनाता है कि वह इस खाते में सीधे प्राप्तियों को जमा कर सके और धनराशि आहरित कर सके। इस खाते में किये गये लेन-देनों पर समग्र नियंत्रण उस प्रधिकृत बैंक का रहता है जिसमें इस खाते को खोला जाता है। निर्दिष्ट अधिकारी केवल वे सरकारी अधिकारी हो सकते हैं जो अपनी आधिकारिक क्षमता या किसी अन्य क्षमता में कार्य कर रहे होते हैं।

7.11 पूंजी एवं राजस्व लेखा

शासकीय लेखाओं में पूंजी एवं राजस्व व्यय को पृथक-पृथक दिखाया जाता है। पूंजी व्यय वह व्यय होता है जो किन्हीं स्थायी स्वरूप वाले भौतिक/मूर्त्त आस्तियों को अर्जित करने या विद्यमान आस्तियों की उपयोगिता को बढ़ाने के लिये किया जाता है। इन आस्तियों को चलायमान स्थिति में बनाकर रखने के लिये जो रख-रखाव, मरम्मत, अनुरक्षण और कार्यशील व्यय किया जाता हैं; तथा अन्य सभी व्यय जो किसी संगठन के दिन-प्रतिदिन के कार्यकरण, जिसमें स्थापना व प्रशासनिक व्यय सम्मिलित होते हैं, को सुनिश्चित करने के लिये किया जाता है, राजस्व व्यय की श्रेणी में आता है। किसी अस्थायी परिसम्पत्ति या सहायता अनुदान पर किये गये व्यय को साधारणतयः पूंजी व्यय नहीं माना जाता है तथा किसी पूंजी शीर्ष के नामे नहीं लिखा जाता है, लेकिन यदि नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा ऐसा किया जाना प्राधिकृत किया जाता है तो ऐसे मामलों में उपरोक्त किये गये व्यय को पूंजी शीर्ष के नामे लिखा जा सकता है।

पूंजी व्यय को आमतौर पर पूंजी स्वरूप वाली प्राप्तियों से पूरा किया जाता है। पूंजी स्वरूप वाली प्राप्तियां कर, शुल्क, फीस, अर्थ दण्ड और चालू आय के समान मदों से प्राप्त साधारण प्राप्तियों से भिन्न होती है। सरकार यदि चाहे तो साधारण प्राप्तियों/राजस्वों से पूंजी व्यय को कर सकती है, परन्तु शर्त यह है कि इस व्यय को करने के लिये पर्याप्त राजस्व संसाधन होने चाहिये। पूंजी स्वरूप वाले किसी व्यय को शासकीय लेखाओं में पूंजी व्यय के तौर पर तभी वर्गीकृत किया जा सकता है, जब शासकीय आदेशों के द्वारा ऐसा किया जाना स्पष्ट रूप से प्राधिकृत किया गया है।

किसी पूंजीगत योजना पर पूंजी और राजस्व व्यय के मध्य आवंटन नियंत्रक और महालेखा परीक्षक के साथ विचार-विमर्श के पश्चात् सरकार के द्वारा विहित किये गये किन्हीं आदेशों के अनुसार निर्धारित किये जाते हैं। अनुत्पादक स्वरूप वाले कार्यों की पूंजी लागत साधारण राजस्व से पूरी की जाती है। उधार ली गयी धनराशियों तथा राजस्व लेखा से परे अन्य संसाधनों को अनुत्पादक प्रयोजनों के लिये साधारणतयः खर्च नहीं किया जाता है। इसी के साथ नियम यह भी प्रदान करते हैं कि ऐसा किया जा सकता है यदि वे प्रयोजन जिनके लिये धनराशि की आवश्यकता होती है, इतने अत्यावश्यक और अविलंब्य होते है कि व्यय को आगामी वर्षों तक के लिये टाला

नहीं जा सकता है। यदि व्यय की जाने वाली प्रस्तावित धनराशि इतनी अधिक हैं कि उसे चालू राजस्व से पूरा नहीं किया जा सकता है तब भी उधार ली गयी धनराशियों तथा राजस्व लेखा से परे अन्य संसाधनों का प्रयोग प्रस्तावित व्यय को पूरा करने हेतु किया जा सकता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के पूंजी आधार को सुद्दढ़ बनाने या उसको पुनःसंरचित करने के लिये सरकार उनके बकाया ऋण को ईक्विटी निवेश या सहायता अनुदान में परिवर्तित कर सकती है। जब ऐसा किया जाना प्रस्तावित होता है तब संसद का अनुमोदन लेने की आवश्यकता होती है, जोकि प्रासंगिक अनुदान मांगों या पूरक अनुदान मांगों, जो भी समीचीन हो, में प्रतीकात्मक/सांकेतिक प्रावधान करने के द्वारा प्राप्त किया जाता है। संसद का अनुमोदन मिलने के पश्चात् ऋण के शेष भाग और लेखा के पूंजी शीर्ष के क्रमिक व्यय को केन्द्र सरकार के प्रासंगिक वित्त लेखा में पूर्व अवधि समायोजन लेखा के माध्यम से सही किया जाता है। सभी वाणिज्यिक विभागों या इकाईयों के लेखाओं, जिन के लिये शासकीय लेखाओं में पृथक् पूंजी एवं राजस्व लेखाओं को बनाकर रखा जाता हैं, में ब्याज समय-समय पर विनिर्दिष्ट किये गये दरों के अनुसार प्रभारित किया जाता है।

7.12 भारतीय लेखा शास्त्र प्रणाली का मूल्यांकन

भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली का क्रमिक विकास हुआ है। इस प्रणाली को यथासंभव सुव्यवस्थित बनाया गया है। सरकारी लेखा विभिन्न सेक्टरों, उप-सेक्टरों, प्रकार्यों, उप-प्रकार्यों, कार्यक्रमों, योजनाओं, उप-योजनाओं तथा मदों पर किये गये व्यय को स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। देश में लेखाशास्त्र की प्रणाली ने संसद, राज्य विधानमण्डलों और आम जनता को शासन की जवाबदेही के बारे में अधिक सचेत बनाया है। सरकार के लिये लेखा वे साधन होते है, जिसका प्रयोग उसके द्वारा पर्याप्त और समय पर आगत प्राप्त करने के लिये किया जाता है। इन आगतों का प्रयोग वित्तीय लेन-देनों से जुड़ी हुई गतिविधियों का मूल्यांकन करने, उपचारात्मक कार्यवाही करने, तथा भावी नीति निर्णयों को लेने के लिये किया जाता है। सरकारी लेखांकन प्राधिकारियों के द्वारा जो वित्त एवं विनियोग लेखा तैयार किये जाते हैं, उनमें पर्याप्त वित्तीय आंकड़ें होते हैं। इसी के साथ उन में सरकार के वित्तीय निष्पादन का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी दिया गया होता है। सरकारी लेखांकन प्राधिकारी इलेक्ट्रोनिक डेटा प्रोसेसिंग की पद्धतियों का अधिक प्रयोग कर रहे हैं, जिससे कि अंतिम लेखाओं को उपलब्ध कराने की प्रक्रिया को तेज और सूचना को आवश्यकतानुसार शीघ्र प्राप्त किया जा सके। यह कहना अतिशोयक्ति नहीं होगा कि लेखांकन की प्रणाली व्यावहारिक जगत में अनेक चुनौतियों का सामना करती है, जिससे कि समय पर लेखाओं को तैयार करने, उनको प्रस्तुत करने, उनका लेखा-परीक्षण करने और लेखा-परीक्षण के निष्कर्षों के अनुपालन करने में कठिनाईयों का सामना सदैव ही होता रहा है।

अभ्यास प्रश्न-

1. संविधान के किस अनुच्छेद में अतिरिक्त अनुदान का उपबंध किया गया है?
   क. अनुच्छेद-114 ख. अनुच्छेद-115
   ग. अनुच्छेद- 116 घ. अनुच्छेद-117
2. सरकारी लेखा के नकद आधार से क्या अभिप्राय होता है?
3. संचित निधि वाले लेखा के दो खण्ड...................... होते हैं।
4. लेखा के मुख्य शीर्ष प्रकार्यों के तदनुरूप होते हैं।

7.13 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आप यह सुपरिचित हो चुके हैं कि लेखा गतिविधि केन्द्र के द्वारा बनाये जाते हैं और ये विभिन्न गतिविधियों तथा कार्यों के व्यवस्थित अभिलेख होते हैं। भारत में लेखाशास्त्र की व्यापक प्रणाली पायी जाती है और इसका प्रारूप संविधान, विभिन्न अधिनियमों, नियमों व विनियमों के प्रावधानों के द्वारा विहित किया गया हैं। इस प्रणाली की अनूठी विशेषतायें हैं और यह कुछ मुख्य सिद्धांतों का पालन करती है। केन्द्र और राज्य सरकारों में लेखाओं को बनाकर रखने के कार्य में जटिलता होती है जो चुनौतियों से भरपूर होता है। सरकारी लेखाओं के विविध प्रकार होते हैं और उन को तीन भागों में बनाकर रखा जाता है। सरकारी लेखाओं में लेन-देनों का वर्गीकरण का सन्दर्भ सरकार के प्रकार्यों, कार्यक्रमों और गतिविधियों, तथा राजस्व या व्यय के प्रयोजन के साथ होता है। सरकारी लेखांकन के लिये विस्तृत बैंकिंग व्यवस्था पायी जाती है। इस इकाई का अध्ययन करने से आप देश में लेखा शास्त्र की प्रणाली के संबंध में अपनी जिज्ञासाओं का उत्तर पाने का प्रयास कर सकते हैं।

7.14 शब्दावली

पूंजी व्यय- किसी संगठन के द्वारा अचल भौतिक परिसम्पतियों का क्रय करने, उनको बनाकर रखने व सुधारने के लिये जो व्यय किया जाता है, उसको पूंजी व्यय कहा जाता है। पूंजी व्यय दीर्घकालिक व्यय होता है जो नित्य-कर्म में नहीं किया जाता है।

प्रोद्भवन लेखांकन- प्रोद्भवन लेखांकन लेखांकन की वह पद्धति है जो व्यय और राजस्व को तभी अभिलेखबद्ध कर लेती है, जब वे किये गये होते हैं/प्राप्त हुये होते हैं चाहे नकद धनराशि का आदान-प्रदान कभी भी हो।

भारित व्यय- भारित व्यय वे व्यय होते हैं जो संचित निधि पर भारित होते हैं और संसद द्वारा उनके संबंध में केवल चर्चा की जाती है, परन्तु कोई मतदान नहीं किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद- 112 (3) के अनुसार निम्नलिखित व्यय भारत की संचित निधि पर भारित व्यय होगा- राष्ट्रपति की उपलब्धियां और भत्ते तथा उसके पद से संबंधित अन्य व्यय; राज्य सभा के सभापति और उपसभापति के तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते; ऐसे ऋण भार, जिनका दायित्व भारत सरकार पर हैं, जिनके अंतर्गत ब्याज, निक्षेप निधि भार और मोचन भार तथा उधार लेने और ऋण सेवा और ऋण मोचन से संबंधित अन्य व्यय हैं; उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को या उनके संबंध में संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन; भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को या उसके संबंध में संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन; किसी न्यायालय या माध्यस्थम् अधिकरण के निर्णय, डिक्री या पंचाट की तुष्टि के लिये अपेक्षित राशियां; और कोई अन्य व्यय जो संविधान द्वारा या संसद द्वारा विधि द्वारा इस प्रकार भारित घोषित किया जाता है।

राजस्व व्यय- किसी संगठन का राजस्व व्यय अल्पकालिक व्यय होता है जो उसके नित्य-कर्म के व्ययों जैसे कि चालू संचालनात्मक लागत, रखरखाव की साधारण लागत को पूरा करने के लिये किया जाता है।

7.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, **2.** सरकारी लेखा के नकद आधार से अभिप्राय है कि सरकारी लेखा में अंकित लेन-देन किसी वित्तीय वर्ष के दौरान नकद की वास्तविक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दर्शाते हैं। **3.** राजस्व एवं पूंजी खण्ड, **4.** असत्य

7.16 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. इंडिया कोड, *The Government of Union Territories Act, 1963*,
2. https://indiacode.nic.in/bitstream/123456789/1546/1/196320.pdf

3. बजट प्रभाग, आर्थिक कार्य विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (सितम्बर 2010) *Budget Manual* नई दिल्ली।
4. http://indiagovernance.gov.in/files/Budget_Manual_2.pdf
5. भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का केन्द्रीय बैंक, (दिसम्बर 22, 2017) प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्न, भारतीय रिजर्व बैंक सरकार के बैंकर के तौर पर, मुम्बई।
6. https://m.rbi.org.in/Scripts/FAQView.aspx?Id=61
7. भारतीय रिजर्व बैंक, भारत का केन्द्रीय बैंक, (1934) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, मुम्बई।
8. https://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/Publications/PDFs/RBIAM_230609.pdf
9. महालेखा नियंत्रक, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (1990) *Government Accounting Rules*, नई दिल्ली।
10. www.cga.nic.in/DownloadPDF.aspx?filenameid=3
11. व्यय विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, (2005) *General Financial Rules*, नई दिल्ली।
12. http://cgda.nic.in/pdf/gfr2005.pdf
13. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

7.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. आर्थिक कार्य विभाग, संयुक्त राष्ट्र संघ, (1951) *Budgetary Structure and Classification of Government Account*s, न्यूयॉर्क।
2. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली।
3. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) *Public Finance and Financial Administration in India*, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली।
4. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05 वित्तीय प्रशासन, 7- लेखा और लेखा परीक्षण, नई दिल्ली।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ, (1952) Government Accounting and Budget Execution, न्यूयॉर्क

7.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत सरकार की लेखा शास्त्र प्रणाली की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
2. भारत में लेखांकन के लिये विद्यमान बैंकिंग व्यवस्था की विवेचना कीजिये।
3. भारत में पूंजी एवं राजस्व लेखा की व्यवस्था को समझाईये।

इकाई- 8 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 लेखा परीक्षण का अर्थ एवं महत्व
8.3 लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत
8.4 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली
8.5 लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन
8.6 लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन
8.7 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली का मूल्यांकन
8.8 सारांश
8.9 शब्दावली
8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

इस से पिछली की इकाई में आप भारत में लेखाशास्त्र की प्रणाली के बारे में विस्तारपूर्वक परिचित हो चुके हैं। भारत में शासकीय लेखा परीक्षण को संवैधानिक दर्जा़ प्राप्त है और नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को लेखाओं का लेखा परीक्षण करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। प्रस्तुत इकाई में भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के संबंध में विवेचना की गयी है।

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से लेखा परीक्षण क्या होता है, उसका महत्व क्या होता है, लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत क्या होते है, भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली किस प्रकार की है, लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन कैसे होता है, लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन क्या होता हैं तथा लेखा परीक्षण की प्रणाली के मूल्यांकन के संबंध में आपके चिंतन में गहनता आयेगी।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समझ सकेंगे कि लेखा परीक्षण का अर्थ एवं महत्व क्या होता है;
- यह जान पायेंगे कि लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत क्या होते हैं;
- यह ज्ञात कर सकेंगे कि भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली कैसी है;
- यह पता लगा पायेंगे कि लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन कैसे होता है; और
- यह बोध कर कर सकेंगे कि लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन क्या होता है।

8.2 लेखा परीक्षण का अर्थ एवं महत्व

वित्तीय प्रशासन में लेखा परीक्षण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है और यह लेखांकन के उपरांत वित्तीय प्रक्रिया का अगला चरण होता है। लेखा परीक्षण से अभिप्राय वित्तीय लेखाओं, लेन-देनों और अभिलेखों का आधिकारिक परीक्षण करना तथा उनका सत्यापन करना होता है। इसका मूल स्वरूप लोक संगठनों के वित्तीय लेन-देनों व लेखाओं का लेखा परीक्षकों के द्वारा एक प्रकार की पोस्टमोर्टम जांच-पड़ताल करना होता है। लेखा परीक्षण इसलिये किया जाता है ताकि यह निश्चित किया जा सके कि वित्तीय लेन-देनों को अभिलेखबद्ध करने की उदधृत की गयी प्रणाली का अनुपालन किया गया है और कि वित्तीय विवरण सही एवं यथार्थवादी है। लेखा परीक्षण किसी भी राष्ट्र के वित्तीय हितों की रक्षा करने के लिये प्रहरी की भूमिका निभाता है। इसके कारण वित्तीय अनियमितता, अपव्यय, गबन, घाटा और हानि को सार्वजनिक रूप से उजागर करना संभव होता है।

विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के शासन का यह नैतिक उत्तरदायित्व बनता है कि वह देश के सभी क्षेत्रों, समाज के सभी पक्षों एवं अर्थव्यवस्था के सभी सेक्टरों के हित के लिये कल्याणकारी व विकासीय कार्यों को करे और ऐसा करते हुये प्रगति को सुनिश्चित करें। यह महाकाय ध्येय केवल तभी प्राप्त किया जाना संभव होगा जब पर्याप्त मात्रा में और सही समय पर सभी प्रकार के संसाधन- मानवीय, वित्तीय एवं भौतिक उपलब्ध हों। यद्यपि प्रत्येक प्रकार का संसाधन अपने आप में महत्वपूर्ण होता है, परन्तु वित्तीय संसाधनों का अपना एक विशिष्ट स्थान इस कारण से होता है कि किसी भी कार्य एवं गतिविधि को करने के लिये वित्त की आवश्यकता अनिवार्य रूप से होती ही है। चूंकि सरकार लोक संसाधनों को एकत्र करने एवं उनका व्यय करने के लिये उत्तरदायी होती है, अतः उनके मामले में उसकी भूमिका संरक्षक वाली होती है। सरकार के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह लोक संसाधनों के कार्यकुशल उपयोग को सुनिश्चित करने के लिये वित्तीय प्रबंधन के विवेकी सिद्धांतों और कार्यप्रणालियों का अनुपालन करें जिसके लिये वित्तीय प्रबंधन की तर्कसंगत प्रणाली की अपेक्षा होगी। वित्तीय प्रबंधन की किसी भी प्रणाली का एक अत्यावश्यक पहलू वित्तीय रिर्पोटिंग की विचारपूर्ण योजना होती है जिसके माध्यम से सरकार लोक संसाधनों की वस्तुस्थिति के बारे में अपने को निरंतर अवगत रखती है।

भारत में समूचे वित्तीय वर्ष, जोकि अप्रैल 01 से आरम्भ होकर मार्च 31 तक रहता है, के दौरान केन्द्रीय सरकार वित्तीय प्रबंधन की योजना की समस्त गतिविधियों का पालन करना सुनिश्चित करती है। देश की वित्तीय प्रबंधन की योजना के तीन मुख्य पहलू बजटन, लेखांकन एवं लेखापरीक्षण होते हैं। इन तीनों पहलुओं में से प्रत्येक पहलू से जुड़ी हुई गतिविधियां वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में विलक्षणता का द्योतक होती है। लेखापरीक्षण, जिसमें कि लेखाओं का परीक्षण किया जाता हैं, वित्तीय प्रबंधन की प्रणाली में प्रमुख भूमिका निभाता है। लेखापरीक्षण की भूमिका इस प्रकार से समझी जा सकती है कि यह वित्तीय क्षेत्र में जवाबदेही को लेकर आता है, लोक संसाधनों की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है, उनके व्यय की सत्यता को जांचता है, वित्तीय प्रबंधन के प्रति समुचित सतर्कता को बनाकर रखता है तथा जनता के भरोसे को पुष्ट करता है।

8.3 लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांत

लेखा परीक्षण के मापदण्ड किसी भी संगठन के लिये अंकेक्षण के कार्य की गुणवत्ता को बना कर रखने और उसमें निरंतर सुधार लाने के लिये आवश्यक होते हैं। ये मापदण्ड उन मानकों को विहित करते हैं जिनके बारे में लेखा परीक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अंकेक्षण के कार्य में उनका अनुपालन आवश्यक रूप से करेंगे। ये मापदण्ड लेखा परीक्षकों का मार्गदर्शन करते हैं, अंकेक्षण के कार्य को अधिक सुव्यवस्थित बनाते हैं तथा उसमें सम्मिलित चरणों को स्पष्ट करते हैं। इसी के साथ ये मापदण्ड वे कसौटियां प्रदान करते हैं जिनके सापेक्ष अंकेक्षण के कार्य व उस से उत्पन्न होने वाले परिणामों की गुणवत्ता का आंकलन किया जाता हैं। संक्षिप्त रूप में कहा जाये तो यह कहा

जा सकता हैं कि ये मापदण्ड लेखा परीक्षण के उद्देशयों को भली-भांति पूर्वक प्राप्त करने में अत्यंत निर्णायक भूमिका निभाते हैं। शासकीय लेखा परीक्षण के मामले में यह कहा जा सकता है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की ओर से जो भी लेखा परीक्षण किया जायेगा वह लेखा परीक्षण के विहित किये गये मापदण्डों के अनुसार होना चाहिये।

शासकीय अंकेक्षण की व्यवस्था में लेखा परीक्षण के जो मापदण्ड हैं उनमें लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम, 2007 के अनुसार सम्मिलित है- मूलभूत अवधारणायें, सामान्य मापदण्ड, क्षेत्रीय मापदण्ड, और रिपोर्टिंग मापदण्ड। लेखा परीक्षण की मूलभूत अवधारणायें वे मूलभूत आधार वाक्य एवं आवश्यकतायें होते हैं जिनका उपयोग अंकेक्षण के मापदण्डों को विकसित करने तथा लेखा परीक्षकों के कार्य को दिशा-निर्देशित करने में किया जाता है। इन मूलभूत अवधारणाओं में सम्मिलित होते हैं- लेखा परीक्षकों के द्वारा लेखा परीक्षण के मापदण्डों का अनुपालन किया जाना; लेखा परीक्षकों के द्वारा विविध प्रकार की स्थितियों में अपने विवेक का प्रयोग किया जाना; जवाबदेही की प्रभावकारी प्रक्रिया का क्रियाशील स्थिति में होना; वित्तीय रिपोर्टिंग और वित्तीय स्थिति का प्रकटन करने के लिये लेखा परीक्षण के मापदण्डों के प्रख्यापन को सुनिश्चित किया जाना; आंतरिक नियंत्रण की पर्याप्त व्यवस्था का होना; अंकेक्षणीय संगठनों के सहयोग को सुनिश्चित किया जाना; लेखा परीक्षण से संबंधित सभी गतिविधियों का नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के अंकेक्षण के अधिदेश के साथ सुसंगत होना; तथा लेखापरीक्षक एवं अंकेक्षणीय संगठन के मध्य हित के टकराव का न होना। लेखा परीक्षण के सामान्य मापदण्ड लेखापरीक्षक एवं लेखापरीक्षा वाली संस्था की योग्यताओं और विशिष्टिताओं को इंगित करते हैं तथा इनमें आते हैं- लेखापरीक्षक एवं लेखापरीक्षा वाली संस्था की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना; उनमें व्यावसायिक सामर्थ्य का होना; लेखापरीक्षकों को लेखा परीक्षण के मापदण्डों का अनुपालन करने में यथोचित सतर्कता एवं सावधानी का रखा जाना; लेखापरीक्षकों के द्वारा अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करने में व्यावसायिक विवेक का प्रयोग किया जाना; तथा लेखापरीक्षा वाली संस्था द्वारा गुणवत्ता नियंत्रण की व्यवस्था को स्थापित किया जाना। क्षेत्रीय मापदण्ड उस समग्र रूपसंरचना को प्रदान करते हैं जोकि लेखा परीक्षण को करने और उसका प्रबंधन करने के लिये आवश्यक होते हैं। क्षेत्रीय मापदण्डों में सम्मिलित होते हैं- लेखा परीक्षक के द्वारा अंकेक्षण के संबंध में वांछित नियोजन को किये जाना; लेखा परीक्षण के कार्य का पर्यवेक्षण व समीक्षा किया जाना; आंतरिक नियंत्रण की व्यवस्था का मूल्यांकन किया जाना; प्रयोज्य विधियों, नियमों और विनियमों का अनुपालन किया जाना; तथा अंकेक्षण से संबंधित साक्ष्यों को प्राप्त किया जाना। रिपोर्टिंग मापदण्ड लेखा परीक्षण के परिणामों की रिपोर्टिंग करने के लिये लेखा परीक्षकों को अपेक्षित दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं। प्रमुख रिपोर्टिंग मापदण्ड हैं- अंकेक्षण के प्रतिवेदनों को पूर्ण, परिशुद्ध, वस्तुनिष्ठ, निश्चयात्मक, विश्वसनीय, स्पष्ट, संक्षिप्त, रचनात्मक और समयोचित होना चाहिये; रिपोर्टिंग करते समय किसी मामले के महत्व पर यथोचित ध्यान दिया जाना चाहिये; अंकेक्षण के दौरान पाये गये नियमों के अपालन व कुप्रयोग की महत्वपूर्ण घटनाओं को रिपोर्ट किया जाना चाहिये; छल-कपट तथा भ्रष्टाचार के होने या होने के संदेह के मामलों की रिपोर्टिंग होनी चाहिये; आंतरिक नियंत्रण की व्यवस्था में अर्थपूर्ण कमियों की रिपोर्टिंग की जानी चाहिये; और वित्तीय मामलों में सुधार लाने संबंधी की गयी सिफारिशों की अनुवर्तन कार्यवाहियों में लेखा परीक्षक को वस्तुनिष्ठता तथा स्वतंत्रता रखनी चाहिये।

8.4 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली

भारत में शासकीय लेखा परीक्षण को संवैधानिक दर्जा़ प्राप्त है। संविधान द्वारा लेखा परीक्षण करने का जो एकमात्र प्राधिकारी विहित किया गया है, वह है- नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को संघ, राज्यों और संघ राज्य-क्षेत्रों के लेखाओं का लेखा परीक्षण करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है और यह कार्य करना उसका कर्तव्य है। उसके द्वारा जो भी लेखा परीक्षण का कार्य किया जाता है, वह संविधान, नियंत्रक एवं

महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्तें) अधिनियम, 1971, तथा उसके द्वारा जारी किये गये विनियमों, आदेशों और दिशा-निर्देशों के अनुसार होता है। उक्त अधिनियम की अनुच्छेद- 23 के अंतर्गत नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक एकमात्र प्राधिकारी है जो लेखा परीक्षण के कार्य-क्षेत्र व विस्तार को निर्धारित करेगा।

भारत में शासकीय लेखा परीक्षण कुछ व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने को सुनिश्चित करता है और वे हैं लोक वित्तीय प्रबंधन की वैधता, नियमितता, मितव्ययता, कार्यकुशलता और प्रभावशीलता। इन व्यापक उद्देश्यों को मोटे तौर पर वित्तीय लेखा परीक्षण, अनुपालन लेखा परीक्षण तथा निष्पादन लेखा परीक्षण करने के माध्यम से प्राप्त किया जाता हैं। वित्तीय लेखा परीक्षण का सरोकार हैं यह देखना कि वित्तीय विवरणों को उचित प्रकार से तैयार किया गया है, वे सभी प्रकार से पूर्ण हैं और उन्हें समुचित प्रकटनों के साथ प्रस्तुत किया गया है। अनुपालन लेखा परीक्षण के माध्यम से संविधान के उपबंधों, उनके अंतर्गत बनाये गये विधियों, नियमों तथा विनियमों के प्रावधानों, और सक्षम प्राधिकारी के द्वारा जारी किये गये विविध आदेशों व अनुदेशों के अनुपालन की सीमा को निश्चित किया जाता है। निष्पादन लेखा परीक्षण का संबंध उस सीमा को निर्दिष्ट करना होता है जिस तक कोई गतिविधि, कार्यक्रम, या संगठन मितव्ययी ढंग से, कार्यकुशलतापूर्वक और प्रभावशील तरीके से संचालित हो रही होती/रहा होता है।

देश में लेखा परीक्षण की व्यवस्था की विस्तृत संरचना विद्यमान है। इस व्यवस्था का सबसे अहम भाग है भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग जिस के शीर्ष पर संवैधानिक प्राधिकारी नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक होता है। वर्तमान का भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग वास्तव में एक ब्रिटिश विरासत हैं। यह विभाग वर्ष 1753 में अस्तित्व में आया। इस विभाग में अधिकारी वर्ग लेखा परीक्षा और लेखा सेवा, एक केन्द्रीय सेवा, के अधिकारियों का होता है जो नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के नियंत्रण में कार्य करते हैं। ये अधिकारी केन्द्र तथा राज्य सरकारों एवं सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के लेखाओं का अंकेक्षण करने व राज्य सरकारों के लेखाओं को बनाकर रखने के लिये उत्तरदायी होते हैं। कुछ अधिकारी नई दिल्ली में स्थित नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कार्यालय, जो उनका मुख्यालय हैं, में कार्य करते हैं। शेष अधिकारी क्षेत्र में कार्य करते हैं और केन्द्र तथा राज्य सरकारों से संबंधित लेखांकन और लेखा परीक्षण के मुद्दों को देखते हैं। मुख्यालय में कार्य कर रहे विभिन्न महत्वपूर्ण अधिकारियों में सम्मिलित हैं नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के सचिव, उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, अतिरिक्त उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, महा निदेशक, प्रधान निदेशक, उप निदेशक, और सहायक निदेशक। उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक प्रशासन एवं स्टाफ, केन्द्रीय राजस्व लेखा परीक्षण, रक्षा, संचार, रेलवे, केन्द्रीय वाणिज्यिक लेखा परीक्षण, सरकारी लेखा, प्रतिवेदन केन्द्रीय एवं स्थानीय निकाय के क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। अतिरिक्त उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक निरीक्षण, पूर्वी प्रदेश, पश्चिमी प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तरी प्रदेश, दक्षिणी प्रदेश, उत्तर-पूर्वी प्रदेश के क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों का उक्त प्रदेशों में समूहीकरण लेखा परीक्षण के कार्य को सुसाध्य बनाने के लिये किया गया है। यह समूहीकरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है-

तालिका में लेखा परीक्षण के प्रयोजनों हेतु राज्यों तथा संघ राज्यक्षेत्रों का प्रदेशों में समूहीकरण

क्रम संख्या	प्रदेश	राज्य और संघ राज्यक्षेत्र
1.	पूर्वी	पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश
2.	पश्चिमी	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा
3.	मध्य	बिहार, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़
4.	उत्तरी	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली

5.	दक्षिणी	कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, पुदुचेरी
6.	उत्तरपूर्वी-	आसाम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा, सिक्किम

स्रोतः भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, नई दिल्ली, संगठन चार्ट, *https://www.cag.gov.in/hi/content/organisation-chart*

राज्यों में कार्य कर रहे अधिकारियों में सबसे वरिष्ठ पद प्रधान महालेखाकार/महालेखाकार का होता है। प्रधान महालेखाकार/महालेखाकार केन्द्र में संबंधित उप नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक/अतिरिक्त उप नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को रिर्पोट करते हैं। राज्यों में अन्य अधिकारियों में उप महालेखाकार, प्रधान निदेशक और सहायक महालेखाकार सम्मिलित होते हैं। प्रधान महालेखाकार/महालेखाकार के पर्यवेक्षण में उनके कार्यालय के अधिकारियों के द्वारा आमतौर पर राज्य के वित्त विनियोग लेखा एवं वित्त लेखा, सामान्य तथा सामाजिक सेक्टर, आर्थिक सेक्टर, राज्य के सार्वजनिक सेक्टर के उपक्रमों, ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों, शहरी स्थानीय निकायों और पंचायती राज संस्थाओं का लेखा परीक्षण किया जाता है। प्रधान महालेखाकार/महालेखाकार के द्वारा अपने राज्य से संबंधित लेखाओं के लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन प्रत्येक वर्ष नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को सौंपा जाता है।

उपरोक्त संगठनात्मक संरचना के अतिरिक्त एक लेखा परीक्षा सलाहकार बोर्ड पाया जाता है जो नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की अध्यक्षता में कार्य करता है। इस बोर्ड का प्रमुख दायित्व लेखा परीक्षण से संबंधित सरोकारों पर सलाह प्रदान करना होता है। इस बोर्ड में आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के सदस्य होते हैं। बाहरी सदस्यों में शासकीय व्यक्तियों के साथ-साथ गैर-शासकीय व्यक्तियों को भी प्रायः सम्मिलित किया जाता है।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा संघ सरकार, राज्य सरकारों व स्थानीय निकायों के लेखाओं का लेखा परीक्षण प्रत्येक वर्ष किया जाता है। उसके द्वारा अनेक सेक्टरों के लेखाओं का अंकेक्षण किया जाता है जिनमें सम्मिलित हैं कर एवं शुल्क; वित्त; परिवहन एवं अवसंरचना; शक्ति एवं ऊर्जा; उद्योग एवं वाणिज्य; विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी; सूचना एवं संचार; पर्यावरण एवं सत्त विकास; कला, संस्कृति एवं खेल; कृषि एवं ग्रामीण विकास; सामाजिक कल्याण; शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण; सामाजिक अवसंरचना; रक्षा एवं राष्ट्रीय सुरक्षा; सामान्य सेक्टर के मंत्रालय एवं संवैधानिक निकाय; तथा स्थानीय निकाय। इसी के साथ उसके द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया जाता है और इनमें आते हैं- अनुपालन लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन, वित्तीय लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन, और निष्पादन लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन।

8.5 लेखा परीक्षण का आयोजन तथा संचालन

भारत में लेखा परीक्षण के आयोजन और संचालन के संबंध में विस्तृत प्रावधान देश के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा वर्ष 2007 में जारी किये गये ‘लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम’ के अध्याय-13, लेखापरीक्षा का आयोजन व अध्याय-14, आडिट नोट्स में किया गया है। विनियमों के उक्त अध्यायों की अनुच्छेद- 174 से 204 लेखा परीक्षण के सुचारू संचालन संबंधी सभी आवश्यक प्रावधान करती है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद- 149 के अनुपालन में संसद द्वारा वर्ष 1971 में अधिनियमित किया गया नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्त्ते) अधिनियम नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को प्राधिकृत करता है कि उसके लेखा परीक्षण के अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले कार्यालयों का वह निरीक्षण करे और उनमें लेखा परीक्षण का आयोजन करे। इस को सुनिश्चित करने के लिये लेखा परीक्षण के दलों को निरीक्षण अधिकारियों की अगुवाई में समय-समय पर उन संगठनों के कार्यालयों में प्रतिनियुक्त किया जाता है जिनका कि

लेखा परीक्षण किया जाना प्रस्तावित है। ये दल उन समस्त स्थानों पर जा सकते है जहां इन संगठनों के प्रासंगिक अभिलेख रखे गये है। ऐसे हर एक संगठन के कार्यालय अध्यक्ष का यह कर्तव्य बनता है कि वह लेखा परीक्षण के दल को शासकीय उपयोग हेतु उपयुक्त एवं युक्तिसंगत कार्यालय स्थान तथा अन्य कार्यालयीन सुविधाएं प्रदान करे। यह विभागाध्यक्षों का कर्तव्य है कि वे लेखा परीक्षण कार्यालय को अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले सभी कार्यालयों की सूची प्रत्येक वर्ष के दिसम्बर माह के अंत तक उपलब्ध कराए, जिससे कि वह सूची आगामी वर्ष के जनवरी माह के समाप्त होने से पहले लेखा परीक्षण कार्यालय में पहुंच जाये। लेखा परीक्षण किसी लेखा परीक्षणीय प्राधिकार के उन आंकड़ों, सूचना और प्रलेखों के संदर्भ में भी किया जाता है जो किसी अंकेक्षण कार्यालय या लेखा कार्यालय में उपलब्ध होते हैं। ऐसे लेखा परीक्षण के परिणाम लेखा परीक्षणीय प्राधिकार को अंकेक्षण नोट्स के रूप में सम्प्रेषित किये जाते हैं।

लेखा परीक्षण कार्यालय को लेखा परीक्षण किये जाने वाले कार्यालय के प्रभारी अधिकारी को जहां तक संभव हो तीन सप्ताह की न्यूनतम अवधि की पूर्व सूचना देनी होती है। इस सूचना में लेखा परीक्षण की सम्भावित अवधि बतलायी जाती है और साथ ही में उन सभी मूल अभिलेखों की सूची दी जाती है जिन्हें कि लेखा परीक्षण के दल के आगमन से पहले तैयार करके रखा जाना होता है। प्रभारी अधिकारी को यह सुनिश्चित करना होता है कि लेखा परीक्षण के दल के आगमन से पूर्व चाहे गये सभी मूल अभिलेखों को तैयार रखा गया है। लेखा परीक्षण के कार्य से जुड़े हुये व्यक्तियों के द्वारा आंकड़ों, सूचना या प्रलेखों की मांग लिखित रूप में की जाती है। इस लिखित मांग में उस समय को इंगित किया जाता हैं जिस के दौरान अपेक्षित किये गये आंकड़ों, सूचना या प्रलेखों को उपलब्ध कराया जाना होता है। यह प्रभारी अधिकारी का दायित्व होता है कि वह उपलब्ध कराये जाने वाले सूचना और अभिलेखों से संबंधित अनुरोधों का अनुपालन जितना संभव हो सके उतना पूर्ण रूप में तथा विनिर्दिष्ट की गयी समय सीमा में करे। इसी के साथ ही प्रत्येक विभाग या संगठन को यह सुनिश्चित करना होता है कि सूचना आदि उपलब्ध कराने के लिये किसी उपयुक्त क्रियाविधि को स्थापित और उसको क्रियान्वित किया गया है। यदि अपेक्षित आंकड़ों, सूचना और अभिलेखों को कोई विभाग या संगठन अंकेक्षण कार्यालय को उपलब्ध नहीं कराता है तो परवर्ती ऐसे मामलों को नियंत्रक अधिकारी को और अगर आवश्यक हो तो संबंधित सरकार को उपयुक्त कार्यवाही के लिये रिपोर्ट करता है तथा इन प्राधिकारियों को अंकेक्षण कार्यालय को ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने की तिथि के तीन माह के भीतर की गयी कार्यवाही के बारे में बतलाना होता है। किसी विभाग या संगठन से संबंधित गोपनीय, गुप्त या अत्यंत गुप्त प्रलेख जो लेखा परीक्षकों को उपलब्ध कराये जाते हैं उन पर लेखा परीक्षक वैसी ही कार्यवाही करते है जो ऐसे प्रलेखों के प्रबंधन और संरक्षण के लिये शासन के द्वारा जारी किये गये स्थायी अनुदेशों के अनुसार होती है।

किसी विभाग या संगठन के लेखा परीक्षण का कार्य आरम्भ होने के साथ ही निरीक्षण अधिकारी उसके प्रभारी अधिकारी के साथ एक बैठक करते हैं। लेखा परीक्षण का कार्य चरणबद्ध रीति से आगे बढ़ता है और उसके अंतिम चरण में निरीक्षण अधिकारी अपने हस्ताक्षर से अंकेक्षण ज्ञापनों को जारी करता है। इन ज्ञापनों में विभाग या संगठन के अभिलेखों की स्थिति तथा वित्तीय दशा को निरूपित किया जाता है। यह विभाग या संगठन के प्रभारी अधिकारी को सुनिश्चित करना होता हैं कि अंकेक्षण ज्ञापनों के माध्यम से लेखा परीक्षण से संबंधित जो अभ्युक्तियां की गयी हैं उनके प्रासंगिक व उपयुक्त उत्तर दिये गये हैं। यह उसका कर्तव्य होता है कि वह इस बात के लिये आश्वस्त हो कि अंकेक्षण ज्ञापनों के उत्तरों में जो विवरण दिये गये हैं वे अभिलेखों के संदर्भ में सही है जिससे कि उनसे जुड़े हुये तथ्यों एवं आंकड़ों की यथार्थता विवादों से परे रहे। प्रभारी अधिकारी को अंकेक्षण दल के द्वारा जो अभ्युक्तियां की जाती है उन पर जहां कहीं भी संभव होता है वहां पर उपयुक्त सुधारत्मक कार्यवाही करने के लिये तत्काल कदम उठाने होते हैं जिससे कि जहां तक संभव हो वहां तक लेखा परीक्षण के दौरान ही अधिक से अधिक अंकेक्षण से जुड़े हुये मुद्दों का निपटारा हो जाये। लेखा परीक्षण के पूर्ण होने पर निरीक्षण अधिकारी निरीक्षण का

मसौदा प्रतिवेदन तैयार करता है। लेखा परीक्षण के समाप्त होने पर निरीक्षण अधिकारी और प्रभारी अधिकारी इस प्रतिवेदन पर चर्चा करते हैं। प्रभारी अधिकारी प्रतिवेदन में सम्मिलित किये गये तथ्यों एवं आंकड़ों की पुष्टि करता हैं। यदि असहमति का कोई बिंदु होता है तो उस पर निरीक्षण अधिकारी के साथ चर्चा की जाती है, जिससे कि उसका निराकरण हो जाये। प्रभारी अधिकारी लेखा परीक्षण के निष्कर्षों और सिफारिशों पर अपनी अभियुक्तियां देता है तथा निरीक्षण अधिकारी उन अभियुक्तियों को निरीक्षण प्रतिवेदन में दर्शाता है। निरीक्षण प्रतिवेदन में प्रणालीगत कमियों का निराकरण करने तथा नियंत्रण को सुधारने के लिये सिफारिशें की गयी होती है।

अंकेक्षण कार्यालय लेखा परीक्षणीय प्राधिकारियों को लेखा परीक्षण के परिणामों को अंकेक्षण नोट्स या निरीक्षण प्रतिवेदनों के माध्यम से सम्प्रेषित करता है। विनियमों में यह प्रावधान किया गया है कि अंकेक्षण कार्यालय लेखा परीक्षण के पूर्ण होने की तिथि से छः सप्ताह या विहित की गयी कोई अन्य अवधि के भीतर अंकेक्षण नोट्स या निरीक्षण प्रतिवेदनों को यथासम्भव जारी करेंगे। शासन ऐसी व्यवस्थाओं और क्रियाविधियों को स्थापित तथा क्रियान्वित करता है जो अंकेक्षण नोट्स या निरीक्षण प्रतिवेदनों में की गयी अभियुक्तियों के संबंध में पर्याप्त, रचनात्मक एवं समयोचित कार्यवाहियों को करना सुनिश्चित करते हैं।

किसी लेखा परीक्षणीय विभाग या संगठन को अंकेक्षण नोट या निरीक्षण प्रतिवेदन प्राप्त होने की तिथि से चार सप्ताह के भीतर उसका उत्तर भेजना होता हैं। यदि किसी अंकेक्षण नोट या निरीक्षण प्रतिवेदन में लेखा परीक्षण से संबंधित कोई महत्वपूर्ण अभ्युक्तियां की गयी हैं तो अंकेक्षण कार्यालय उनकी प्रतियां संबंधित विभाग के विभागाध्यक्ष को भेज सकता है। अगर ऐसा होता है तब विभागाध्यक्ष का यह कर्तव्य बनता है कि वह उपयुक्त सुधारात्मक और दोषनिवारक कार्यवाही करने के लिये ऐसे सभी मामलों में अनुवर्ती कार्यवाही करे तथा इंगित की गयी महत्वपूर्ण अभ्युक्तियों के अनुपालन का प्रतिवेदन अंकेक्षण कार्यालय को भेजे।

किसी विभाग या संगठन के लेखाओं का जब लेखा परीक्षण होता है तब उसके द्वारा विगत वर्ष में किये गये वित्तीय लेन-देनों में हुई प्रमुख अनियमिततायें ज्ञात हो जाती है। चूंकि वित्तीय अनियमिततायें वित्तीय संसाधनों के कुप्रबंधन के कारण होती हैं और उनके विघातक परिणाम होते हैं, इसलिये उनके पता लगने की स्थिति में उन पर अविलम्बनीय कार्यवाही किया जाना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। वित्त मंत्रालय द्वारा जारी किये गये लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियमों में इस संबंध में यथोचित प्रावधान किये गये हैं। लेखाओं में लेखा परीक्षण दल के द्वारा प्रमुख वित्तीय अनियमितताओं के ज्ञात होने पर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को प्रत्येक ऐसे दृष्टांत को, उसके पता लगने के छः सप्ताह के भीतर, विशेष प्रबंधन पत्र के माध्यम से संबंधित विभाग के सचिव को अवगत कराना होता है और उसकी प्रतिलिपि विभागाध्यक्ष को करनी होती है। इसके अतिरिक्त महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को प्रमुख वित्तीय अनियमितता के प्रत्येक दृष्टांत को विहित की गयी रीति के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखा परीक्षक को भी सूचित करना होता है। जब संबंधित विभाग को ऐसी सूचना प्राप्त हो जाती है तब शासन को तथ्यों की प्रथमदृष्टया जांच-पड़ताल करनी होती है और सूचना प्राप्त होने के छः सप्ताह के अन्दर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को एक प्रारम्भिक प्रतिवेदन भेजना होता है जिसमें तथ्यों की या तो पुष्टि की जानी होती है या उनको नकारा जाना होता है। जहां पर प्रारम्भिक प्रतिवेदन में प्रमुख अनियमितता को शासन के द्वारा नकारा नहीं जाता है वहां पर ऐसे प्रतिवेदन को भेजने के तीन माह के अन्दर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को एक विस्तृत प्रतिवेदन भेजना होता है जिसमें कि यह बतलाना होता है कि ऐसी प्रमुख अनियमितता की पुनरावृत्ति से बचाव करने के लिये क्या सुधारात्मक कार्यवाही की गयी है और उस चूक के लिये उत्तरदायी व्यक्तियों के विरूद्ध क्या कार्यवाही की गयी है।

महालेखाकार (लेखा परीक्षण) प्रत्येक वर्ष के अप्रैल माह के अंत तक संबंधित विभाग के सचिव को एक प्रबंधन पत्र लिखता है जिसमें पिछले वर्ष के दौरान लेखा परीक्षण से निकल कर सामने आये अभ्युक्तियों और निष्कर्षों को

सम्प्रेषित किया जाता है। सचिव ऐसे पत्र प्राप्त होने के तीन माह के भीतर अभ्युक्तियों और निष्कर्षों से जुड़े हुये मामलों पर की गयी कार्यवाही के बारे में महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को सूचित करता है।

प्रत्येक विभागाध्यक्ष को प्रत्येक वर्ष की तिमाही में अपने विभाग से संबंधित अंकेक्षण की लम्बित अभ्युक्तियों के संबंध में एक वार्षिक लोक विवरण बनाना होता है। इस विवरण में विविध महत्वपूर्ण बातों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पिछले वर्ष के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन/प्रतिवेदनों में सम्मिलित अंकेक्षण के परिच्छेदों की संख्या और सार; पिछले वर्ष के दौरान महालेखाकार (लेखा परीक्षण) के द्वारा अवगत करायी गयी प्रमुख अनियमितताओं की संख्या और सार; उक्त दोनों के संबंध में विभाग के द्वारा की गयी कार्यवाही; तथा पिछले वर्ष के दौरान जारी किये गये निरीक्षण प्रतिवेदनों में सम्मिलित किये गये अंकेक्षण के परिच्छेदों की संख्या और उन परिच्छेदों का सार जिनमें अधिक धन मूल्य शमिल होता है।

8.6 लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन

भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन, जो अत्यंत विस्तारपूर्ण प्रलेख होते हैं, लोक प्रशासन पर वित्तीय नियंत्रण रखने के बहुत ही प्रभावकारी माध्यम होते हैं। लेखा परीक्षण के द्वारा जो वित्तीय दशाओं का परीक्षण किया जाता है और उस से जो निष्कर्ष निकल कर सामने आते है उनको इन प्रतिवेदनों में सम्मिलित किया जाता है। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन से संबंधित प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 151 संपरीक्षा प्रतिवेदन में किये गये हैं। इस अनुच्छेद के अनुसार- भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के संघ के लेखाओं संबंधी प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा, जो उनको संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा; भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के किसी राज्य के लेखाओं संबंधी प्रतिवेदनों को उस राज्य के राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा, जो उनको राज्य के विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगा। लेखा परीक्षण के प्रतिवेदनों के प्रारूप, अन्तर्वस्तु तथा प्रस्तुतीकरण के समय को नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक निश्चित करता है।

चूंकि लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन बहुत ही महत्वपूर्ण प्रलेख होते हैं और इन प्रतिवेदनों में सम्मिलित निष्कर्षों का शासन के संबंधित मंत्रालयों/ विभागों/लोक संगठनों के द्वारा अनुपालन किया जाना अनिवार्य रूप से आशायित होता है। अतः इन प्रतिवेदनों को तैयार करने, उनको प्रस्तुत करने और उनके अनुपालन के संबंध में विस्तृत अवधान करना आवश्यक हो जाता है। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक द्वारा जारी किये गये ‘लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम, 2007 के अध्याय-15- लेखापरीक्षा प्रतिवेदन की धारायें 205-215 इन को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक एवं वांछित विनियमों को समाविष्ट करती है।

भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के समग्र नेतृत्व में लेखा परीक्षण दल के द्वारा किसी मंत्रालय/विभाग/ लोक संगठन के अंकेक्षण के उपरांत उस से संबंधित प्रतिवेदन, पहले ड्राफ्ट रूप में फिर उसके पश्चात् अंतिम रूप में, तैयार किया जाता है। इसी प्रकार से समूचे संघ/राज्य सरकार के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदनों को तैयार किया जाता है। इस संबंध में विनियम यह प्रदान करते हैं कि लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन में किसी मामले को सम्मिलित करने से पूर्व सरकार को अपनी टिप्पणियों, अभियुक्तियों और स्पष्टीकरण को प्रस्तुत करने का अवसर दिया जायेगा। महालेखाकार (लेखा परीक्षण) अंकेक्षण की प्रस्तावित अभियुक्तियों की एक प्रति ड्राफ्ट परिच्छेद के रूप में सरकार के संबंधित सचिव को उसके नाम से भेजता हैं दूसरी प्रति वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग के सचिव को उसके नाम से भेजता है। इसी के साथ-साथ अंकेक्षण की प्रस्तावित अभियुक्तियों की दूसरी प्रति वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग के सचिव को उसके नाम से महालेखाकार (लेखा परीक्षण) के द्वारा भेजी जाती है। संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव को इस पत्र की तिथि के छः सप्ताह या विनिर्दिष्ट की गयी किसी अवधि के अंदर अपनी टिप्पणियों, अभियुक्तियों और स्पष्टीकरण को सम्प्रेषित करना होता है। संबंधित सचिव इस समयावधि का विस्तार

करने के लिये महालेखाकार (लेखा परीक्षण) से कारणों सहित अनुरोध कर सकता है। यदि विनिर्दिष्ट या विस्तार की गयी अवधि के अंदर महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता है तो वह इस पूर्वानुमान से आगे बढ़ता हैं कि इंगित किये गये मामले में सरकार के पास कोई टिप्पणी, अभियुक्ति और स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिये नहीं है। संबंधित सचिव के द्वारा उत्तर भेजने की स्थिति में महालेखाकार (लेखा परीक्षण) उस पर पूरा सोच-विचार करता हैं। इसी के आधार पर यह निर्णय लिया जाता हैं कि ड्राफ्ट परिच्छेद को लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन में संशोधित किया जायेगा या उसे निपटाया जायेगा या सम्मिलित नहीं किया जायेगा। संघ सरकार के मामले में अंतिम रूप दिये गये परिच्छेद की एक प्रति संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव को भेजी जाती है। किसी राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार के मामले में अंतिम रूप दिये गये परिच्छेद की एक प्रति संबंधित विभाग के सचिव के साथ-साथ वित्त विभाग के सचिव को भेजी जाती है।

अंकेक्षण के सभी परिच्छेदों को अंतिम रूप दिये गये जाने के उपरांत लेखा परीक्षण का अंतिम प्रतिवेदन नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के द्वारा तैयार किया जाता है। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा प्राधिकृत किया गया कोई अधिकारी पूर्ववर्ती के द्वारा विधिवत् हस्ताक्षर की गयी लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन की प्रतियों को वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग के सचिव को भिजवाता है। वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग का सचिव अग्रिम कार्यवाही के लिये राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक को इस प्रतिवेदन को प्रस्तुत करने तथा उस को संसद या राज्य विधानमंडल या संघ राज्यक्षेत्र के विधानमंडल में प्रस्तुत करने के लिये तत्पर कार्यवाही करता है। इसी के साथ-साथ लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन की अहस्तारक्षित प्रति राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक के सचिव को भेजी जाती है।

संसद या विधानमंडल में जब लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन प्रस्तुत हो जाता है तब महालेखाकार (लेखा परीक्षण) संबंधित मंत्रालयों/विभागों के सचिवों को इस प्रतिवेदन की प्रतियां भिजवाते हैं। ये सचिव अपने मंत्रालयों/विभागों से संबंधित अंकेक्षण के परिच्छेदों की की गयी कार्यवाहियों की स्वतःबोधक टिप्पणियों को विधायी लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति को प्रस्तुत करने के लिये तैयार करते हैं। उक्त टिप्पणियों की महालेखाकार (लेखा परीक्षण) की समीक्षा के पश्चात् संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव संवीक्षित टिप्पणी की प्रतियां अपेक्षित संख्या में, जैसा कि लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति के द्वारा विहित किया गया होता है, लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति के सचिवालय को भेजते हैं और संवीक्षित टिप्पणी की प्रति वित्त मंत्रालय/वित्त विभाग तथा महालेखाकार (लेखा परीक्षण) को अग्रसारित करते है। जब लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति की सिफारिशें प्राप्त हो जाती हैं तब संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव की-गयी-कार्यवाहियों की टिप्पणी तैयार करने संबंधी कार्यवाही आरम्भ करते हैं। यह टिप्पणी समिति की सिफारिशों के प्रति सरकार के प्रत्युतर को दिखाती है।

इस टिप्पणी को उस प्रारूप में बनाया जाता है, जैसा कि लोक लेखा समिति/लोक उपक्रम समिति के द्वारा विहित किया जाता है तथा समिति के द्वारा विहित की गयी अवधि के अंदर उसको प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु की गयी कार्यवाहियों की टिप्पणी को समिति को प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उसे महालेखाकार (लेखा परीक्षण) के पास संवीक्षा हेतु भेजा जाता है। सरकार के द्वारा जो प्रत्युतर समिति को भेजा जाता है, उसमें महालेखाकार (लेखा परीक्षण) की संवीक्षा से संबंधित अभियुक्तियां यथोचित रूप में दर्शायी जाती है। यदि की गयी कार्यवाहियों की टिप्पणी को प्रस्तुत करने में विलम्ब होता है तो महालेखाकार (लेखा परीक्षण) विलम्ब के ऐसे मामलों को संघ सरकार के मामले में वित्त मंत्रालय के सचिव (व्यय) को, राज्य सरकार के मामले में मुख्य सचिव को, तथा विधान सभा वाले संघ राज्य-क्षेत्र के मामले में प्रशासक को रिर्पोट करते हैं। लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन में भी विलम्ब के मामलों पर उपयुक्त प्रकार से अभियुक्ति की जाती है।

8.7 भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली का मूल्यांकन

भारत में लेखा परीक्षण की विस्तृत प्रणाली प्रचलित है जिसमें कि विविध प्रकार के मापदण्ड सम्मिलित होते हैं। देश में शासकीय लेखा परीक्षण को संवैधानिक रूप से विहित किया गया है। शासकीय लेखा परीक्षण की व्यवस्था के शीर्ष पर नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक होता है। इस व्यवस्था के माध्यम से विभिन्न व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। इस में कोई संदेह नहीं हैं कि लेखा परीक्षण की जो व्यापक व्यवस्था पायी जा रही है, उसी के कारण देश में समय-समय पर अनेक वित्तीय अनियमिततायें प्रकाश में आयी हैं और वित्तीय व्यवस्था को सुधारने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसी के साथ-साथ यह भी सच्चाई है कि लेखा परीक्षण की व्यवस्था भी अपने आप में पूर्णतयः त्रुटिहीन नहीं हैं और इसमें भी भ्रष्टाचार का बोलबाला है, जिससे कि लेखा परीक्षण की प्रक्रिया में कमियां पायी जाती हैं जो उसकी उपयुक्तता को सीमित करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन से संबंधित प्रावधान संविधान के कौन से अनुच्छेद में किये गये हैं?
2. भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग वर्ष............ में अस्तित्व में आया।
3. संसद द्वारा कौन से वर्ष में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा शर्तें) अधिनियम अधिनियमित किया गया था?

   क. 1970 ख. 1971

   ग. 1972 घ. 1973

8.8 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आप यह सुअवगत हो चुके हैं कि लेखा परीक्षण में लेखाओं, लेन-देनों और अभिलेखों का परीक्षण किया जाता है। इसके कुछ मापदण्ड होते हैं और यह विभिन्न मार्गदर्शी सिद्धांतों का अनुपालन करता है। देश में शासकीय लेखा परीक्षण की संवैधानिक स्थिति है और नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को लेखा परीक्षण का शीर्ष प्राधिकारी विहित किया गया है। यहां पर लेखा परीक्षण की विस्तृत व्यवस्था है, जिसका सबसे अहम भाग भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग हैं। लेखा परीक्षण के आयोजन और संचालन के संबंध में विस्तृत प्रावधान लेखा तथा लेखापरीक्षा विनियम, 2007 में किये गये हैं। नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के लेखा परीक्षण के प्रतिवेदन वित्तीय नियंत्रण रखने का अत्यंत प्रभावकारी माध्यम होते हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आप भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के बारे में अपने अपनी सोच में समग्रता ला सकते हैं।

8.9 शब्दावली

मार्गदर्शी सिद्धांत- किसी भी संगठन के लिये मार्गदर्शी सिद्धांत वे दिशा-निर्देश होते हैं जो उसमें कार्य कर रहे व्यक्तियों का सदैव उनके कार्यों में मार्गदर्शन करते हैं।

लेखा परीक्षण- लेखा परीक्षण वित्तीय प्रबंधन की प्रक्रिया का एक अभिन्न पहलू होता है। इसमें वित्तीय लेखाओं, लेन-देनों और अभिलेखों का आधिकारिक रूप से परीक्षण और फिर उनका सत्यापन किया जाता है।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद- 151, **2.** वर्ष 1973, **3.** ख

8.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, ऑडिट रिपोर्ट, नई दिल्ली।
2. https://www.cag.gov.in/hi/hindi-audit-reports
3. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, (2007) लेखा तथा लेखापरीक्षा विनिमय, नई दिल्ली।
4. http://www.cag.gov.in/sites/default/files/cag_pdf/regulation/regulation2007.pdf
5. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, संगठन चार्ट, नई दिल्ली। https://www.cag.gov.in/hi/content/organisation-chart
6. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

8.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली
2. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) *Public Finance and Financial Administration in India*, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली
3. विकीपीडिया, *Indian Audit and Accounts Service*
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Indian_Audit_and_Accounts_Service
5. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05, वित्तीय प्रशासन, 7, लेखा और लेखापरीक्षण, नई दिल्ली।

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लेखा परीक्षण के मापदण्ड और उनके मार्गदर्शी सिद्धांतों की विवेचना कीजिये।
2. भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली को समझाईये।
3. भारत में लेखा परीक्षण के आयोजन और संचालन के संबंध में प्रावधानों का वर्णन कीजिये।

इकाई- 9 लेखा नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक की भूमिका

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास
9.3 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति
9.4 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सेवा-शर्त्तें
9.5 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतंत्रता
9.6 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां
9.7 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी
9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

इस से पिछली की इकाई में आप भारत में लेखा परीक्षण की प्रणाली के संबंध में अच्छे प्रकार से समझ चुके हैं। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर अवस्थित प्राधिकारी को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कहा जाता है। प्रस्तुत इकाई में देश में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की वित्तीय प्रशासन में भूमिका को निरूपित किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने से भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास किस प्रकार से हुआ, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कौन करता है और कौन उसको शपथ दिलवाता है, उसकी सेवा-शर्त्तें क्या होती हैं, उसकी स्वतंत्रता संविधान द्वारा किस प्रकार से सुनिश्चित की गयी हैं, उसके कर्तव्य एवं शक्तियां क्या हैं और उसकी भूमिका की प्रभावशीलता कितनी रही हैं से संबंधित आपके दृष्टिकोण में व्यापकता आयेगी।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जान पायेंगे कि भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद का उद्भव कब हुआ एवं उसका विकास किस प्रकार से हुआ; और
- बोध कर पायेंगे कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कौन करता है, उसकी सेवा-शर्त्तें क्या होती हैं तथा उसकी स्वतंत्रता किस प्रकार से सुनिश्चित की जाती है।

9.2 भारत में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के पद का उद्भव एवं विकास

लेखापरीक्षण का कार्य वास्तविकता में दुस्साध्य व अत्यधिक चुनौतीपूर्ण होता है इसलिये इसको करने के लिये लेखापरीक्षण के सुविस्तृत तंत्र का होना अनिवार्य हो जाता है। लेखापरीक्षण के तंत्र के शीर्षस्थान पर जो प्राधिकारी

होता हैं वह भिन्न-भिन्न देशों में अलग-अलग नाम से बुलाया जाता है। भारत में उस प्राधिकारी को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कहा जाता है।

भारत के अभिशासन में अनेक महत्वपूर्ण पद ब्रिटिश विरासत वाले हैं, जिनमें से एक पद नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक का है। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद वर्ष 1858 में अस्तित्व में आया, जब भारत सरकार अधिनियम द्वारा देश में ईस्ट इंडिया का शासन समाप्त कर दिया गया और शासकीय शक्तियों का अंतरण ब्रिटिश क्राउन को कर दिया गया। सर एडमन्ड ड्रूमोन्ड देश के प्रथम लेखापरीक्षक के तौर पर वर्ष 1860 में नियुक्त किये गये। ब्रिटिश संसद द्वारा जब वर्ष 1919 में अगला भारत सरकार अधिनियम अधिनियमित किया गया तब उस अधिनियम ने लेखापरीक्षक के पद को संविधिक दर्जा दिया। इस अधिनियम ने देश में स्वतंत्र लेखापरीक्षण का सूत्रपात किया और यह प्रदान किया कि अब से लेखापरीक्षक भारत सरकार से स्वतंत्र रहकर कार्य करेगा, उसकी नियुक्ति सेक्रेटरी ऑफ स्टेट द्वारा की जायेगी और वह अपना पद अपने मेजेस्टी के प्रसादपर्यन्त तक धारण करेगा। वर्ष 1935 के अगले भारत सरकार अधिनियम द्वारा लेखापरीक्षक की स्थिति को अधिक सशक्त बनाया गया। इस अधिनियम के प्रावधानों के द्वारा उसकी स्वतंत्र स्थिति को सुदृढ़ बनाया गया। उसे प्रतिषेध किया गया कि वह अपना पद छोड़ने के पश्चात् क्राउन के अधीन कोई पद धारण नहीं करेगा। उसकी स्थिति फेडरल न्यायालय के न्यायाधीश के समतुल्य की गयी और यह प्रदान किया गया कि जिस तरीके से उक्त न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता हैं उसी तरीके से उसको भी अपने पद से हटाया जा सकेगा। ब्रिटिश शासन द्वारा वर्ष 1936 में भारत सरकार (लेखापरीक्षण एवं लेखा) आदेश जारी किया गया जिसमें उसके कर्तव्यों, शक्तियों एवं सेवा शर्त्तों को विहित किया गया। देश की स्वतंत्रता के उपरांत जब वर्ष 1950 में संविधान प्रभावी हुआ तो लेखापरीक्षक के पद को संवैधानिक दर्जा दिया गया, लेखापरीक्षक के पदनाम को भारत के नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के रूप में निर्दिष्ट किया गया और संविधान के भाग V (संघ) के अध्याय V (भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक) के अनुच्छेदों 148-151 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के संबंध में प्रावधान किये गये। ये अनुच्छेद इस प्रकार से हैं- अनुच्छेद 148- भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक; अनुच्छेद 149- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां; अनुच्छेद 150- संघ के और राज्यों के लेखाओं के प्रारूप; अनुच्छेद 151- लेखापरीक्षण के प्रतिवेदन। देश में वर्ष 1860 से वर्ष 1948 तक निम्नलिखित 16 लेखापरीक्षक और उनके निम्नवत कार्यकाल रहे- एडमन्ड ड्रूममोन्डः 1860-1862, आर. पी. हैरिसनः 1862-1867 ई. एफ. हैरिसनः 1867-1879 (सबसे लंबा कार्यकाल), डब्लू. वॉटरफील्डः 1879-1881, जेम्स वेस्टलैण्डः 1881-1889, ई. गेः 1889-1891, एस. जेकॉबः 1891-1898, ए. एफ. कोक्सः 1898-1906, ओ. जे. बारॉः 1906-1910, आर. डब्लयू. गिलानः 1910-1912, सर फ्रेडरिक गौंटलेटः 1912-1914, सर आर. ऐ. गैम्बलः 1914-1918, सर फ्रेडरिक गौंटलेटः 1918-1929 , सर अर्नस्ट बर्डनः 1929-1940 , सर अलेक्जेंडर कैमरामन बन्डोचः 1940-1945, तथा सर बर्टीई स्टैगः 1945-1948

9.3 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की नियुक्ति

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत का सर्वोच्च लेखापरीक्षण प्राधिकारी होता है। राष्ट्रपति के अनुमोदन पर राष्ट्रपति सचिवालय द्वारा वर्ष 1979 में जारी किये गये भारतीय वरीयता क्रम में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक क्रम संख्या 9 'क' पर है। उसकी नियुक्ति के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 148 (1) में किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत का एक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा। स्वतंत्रता के पश्चात् से वर्तमान (वर्ष 2018) तक अनुच्छेद- 148 (1) के प्रावधानुसार निम्नलिखित नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षकों को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया है जिनके नाम व कार्यकाल निम्नवत हैं- वी. नरहरी रावः 1948-1954, ए. के. चन्दाः 1954-1960, ए. के. रॉयः 1960-1966,

एस. रंगनाथनः 1966-1972, ए. बक्शीः 1972-1978, ज्ञान प्रकाशः 1978-1984, टी. एन. चतुर्वेदीः 1984-1990, सी. जी. सोमैयाः 1990-1996, वी. के. शुंगलूः 1996-2002, वी. एन. कौलः 2002-2008, विनोद रायः 2008-2013, शशि कान्त शर्माः 2013-2017, राजीव महर्षिः 2017 से कार्यरत हैं।
नियुक्त किये गये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के द्वारा लिये जाने वाले शपथ या किये जाने वाले प्रतिज्ञान के संबंध में संविधान के अनुच्छेद- 148 (2) में प्रावधान किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक नियुक्त किया जाता है, अपना पद ग्रहण करने से पहले, राष्ट्रपति या उसके द्वारा निमित्त व्यक्ति के समक्ष शपथ लेगा या प्रतिज्ञान करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा।

9.4 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सेवा-शर्त्तें

नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक की सेवा-शर्तों के संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद- 148 (3) में किये गये है। इस अनुच्छेद के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्त्तें ऐसी होंगी जो संसद, विधि द्वारा, अवधारित करे। उक्त प्रावधान को प्रभाव में लाने हेतु संसद ने सर्वप्रथम वर्ष 1953 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक (सेवा की शर्त्तें) अधिनियम को अधिनियमित किया। यह अधिनियम वर्ष 1971 तक प्रभावी बना रहा जब संसद द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम का अधिनियमन किया गया। 1971 के अधिनियम के अध्याय- II (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्त्तें) के खण्डों- 3 से 9 तक में उनके वेतन, पदावधि, अवकाश, पेंशन, पेंशन के संराशीकरण, साधारण भविष्य निधि में अंशदान देने के अधिकार, यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा सुविधाओं आदि सेवा की शर्त्तें दी गयी हैं। ये सेवा की शर्त्तें, संक्षेप में, निम्नलिखित हैं-

1. खण्ड-3, वेतन- नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के बराबर वेतन दिया जायेगा।
2. खण्ड- 4, पदावधि- नियंत्रक-महालेखापरीक्षक उस तारीख जिस तारीख को वह पद ग्रहण करता है, से छह वर्ष की अवधि के लिये पद धारण करेगा। परन्तु जहां वह छह वर्ष की उक्त अवधि के अवसान के पूर्व 65 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है वहां वह ऐसा पद उस तारीख को रिक्त कर देगा जिसको वह उक्त आयु प्राप्त कर लेता हैं। अग्रेतर वह, किसी भी समय, राष्ट्रपति को संबोधित स्वहस्ताक्षरित लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा।
3. खण्ड- 5, अवकाश- किसी व्यक्ति जिसे नियंत्रक-महालेखापरीक्षक नियुक्त किया गया है, को ऐसे नियमों के अनुसार अवकाश की अनुमति दी जा सकती है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा के किसी सदस्य पर तत्समय लागू है। नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के अवकाश को स्वीकृत करने या अस्वीकृत करने और उसके स्वीकृत किये गये अवकाश का प्रतिसंहरण करने या कम करने की शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी।
4. खण्ड- 6, पेंशन- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद ग्रहण करता है, उक्त पद को छोड़ने पर पेंशन का पात्र होगा।
5. खण्ड- 7, पेंशन का संराशीकरण- इस प्रावधान का वर्ष 1987 में लोप कर दिया गया।
6. खण्ड- 8, भविष्य निधि में अंशदान देने का अधिकार- प्रत्येक व्यक्ति जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद धारण कर रहा है, साधारण भविष्य निधि (केन्द्रीय सेवा) में अभिदान करने का पात्र होगा।
7. खण्ड- 9, सेवा की अन्य शर्त्तें- यात्रा भत्ता, किराया मुक्त आवास की सुविधा और ऐसे किराया मुक्त आवास के मूल्य पर आय कर के संदाय से छूट, यातायात सुविधाओं, सत्कारी भत्ता, चिकित्सा

सुविधाओं से संबंधित सेवा की शर्त्तें जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पर तत्समय लागू हैं, जहां तक हो सके, किसी सेवारत या सेवानिवृत्त नियंत्रक-महालेखापरीक्षक पर लागू होंगी।

9.5 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की स्वतंत्रता

लेखापरीक्षण, जोकि वित्तीय प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है, की प्रभावशीलता को बनाकर रखने हेतु नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्थिति का स्वतंत्र होना आवश्यक हो जाता है। उसकी स्वतंत्र स्थिति को संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेदों के द्वारा सुनिश्चित किया गया है-

1. अनुच्छेद- 148 (1)- भारत का एक नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त करेगा और उसे उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।
2. अनुच्छेद- 148 (3)- नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के न तो वेतन में और न ही उसके अनुपस्थिति अवकाश, पेंशन या सेवानिवृत्ति की आयु के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिये अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जायेगा।
3. अनुच्छेद- 148 (4)- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक अपने पद पर न रह जाने के पश्चात् भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी और पद का पात्र नहीं होगा।
4. अनुच्छेद- 148 (6)- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय के प्रशासनिक व्यय, जिनके अंतर्गत उस कार्यालय में सेवा करने वाले व्यक्तियों को या उनके संबंध में संदेय सभी वेतन, भत्ते और पेंशन सम्मिलित हैं, भारत की संचित निधि पर भारित होंगे।

9.6 नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कर्तव्य व शक्तियों के संबंध में संविधान का अनुच्छेद- 149 जो प्रावधान करता है वह इस प्रकार से हैं- नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ के और राज्यों के तथा किसी अन्य प्राधिकारी या निकाय के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जिन्हें संसद द्वारा बनायी गयी विधि द्वारा या उसके अधीन विहित किया जाये और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है, तब तक संघ के और राज्यों के लेखाओं के संबंध में ऐसे कर्तव्यों का पालन और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले क्रमशः भारत डोमिनियन के और प्रान्तों के लेखाओं के संबंध में भारत के महालेखा परीक्षक को प्रदत्त थीं या उसके द्वारा प्रयोक्तव्य थीं। स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश शासकों के द्वारा भारत सरकार (लेखापरीक्षण और लेखा) आदेश वर्ष 1936 में जारी किया गया था, जिसमें कि महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्यों और शक्तियों का उल्लेख किया गया था। यह आदेश वर्ष 1971 तक प्रभावी रहा, जब संसद ने नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम को अधिनियमित किया। वर्ष 1971 के अधिनियम ने वर्ष 1936 के आदेश को निरस्त कर दिया। अधिनियम के अध्याय-III (नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां) के खण्डों- 10-20 में उसके कर्तव्यों एवं शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। ये कर्तव्य एवं शक्तियां व्यापक तौर पर लोक निकायों के लेखाओं का संकलन करने और संकलित किये गये लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के साथ संबंधित हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां, संक्षिप्त में, अधिनियम के खण्डानुसार निम्नलिखित हैं-

- खण्ड- 10, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किया जाना;

- खण्ड-11, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किया जाना और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किया जाना;
- खण्ड-12, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिया जाना और सहायता प्रदान किया जाना;
- खण्ड-13, लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान;
- खण्ड-14, संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त-पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-15, अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋणों के मामले में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्य;
- खण्ड- 16, संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-17, भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-18, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियां;
- खण्ड-19, सरकारी कम्पनियों एवं निगमों का लेखापरीक्षण किया जाना;
- खण्ड-19 'क', सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया जाना; तथा
- खण्ड- 20, कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किया जाना।

नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम, 1971 में प्रदान किये गये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों का सविस्तार खण्डवार विवरण निम्नवत हैं-

1. खण्ड-10- अधिनियम के खण्ड-10 में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक द्वारा संघ और राज्यों के लेखाओं का संकलन किये जाने संबंधी उसके कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ के और प्रत्येक राज्य के लेखाओं का संकलन उन प्रारम्भिक और सहायक लेखाओं से करने के लिये उत्तरदायी होगा जो ऐसे लेखाओं को बनाकर रखने के लिये जिम्मेदार कोषागारों, कार्यालयों या विभागों के द्वारा उसके नियंत्रण के अधीन लेखापरीक्षण और लेखा कार्यालयों को दिये गये हैं। इसी के साथ वह उक्त निर्दिष्ट किये गये किन्हीं मामलों में से किसी के संबंध में लेखाओं को बनाकर रखने के लिये भी उत्तरदायी होगा।

   खण्ड-10 का उपखण्ड (1), यह भी प्रावधान करता है कि नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को संघ के और राज्यों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किया जा सकता है। इसके संबंध में अधिनियम के अनुसार संघ के मामले में राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे संघ के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीरे विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या संघ के किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। अधिनियम अग्रेतर यह प्रावधान करता है कि राज्यों के मामले में किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे राज्य के उपरोक्त लेखाओं (या तो एक ही समय में या धीरे-धीरे विभिन्न आदेशों को जारी करने के द्वारा) या राज्य की किन्हीं विशिष्ट सेवाओं या विभागों के लेखाओं का संकलन करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है। खण्ड में आगे यह भी प्रावधान किया गया है कि

राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे किसी विशिष्ट वर्ग या स्वरूप के लेखाओं को बनाकर रखने की जिम्मेदारी से भी अवमुक्त कर सकता है।

2. खण्ड-11- अधिनियम के खण्ड- 11 का सरोकार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखाओं को तैयार किये जाने और राष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपाल तथा विधान सभा वाले संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रशासकों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। प्रावधानुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक, अपने द्वारा या सरकार के द्वारा या उस निमित्त जिम्मेदार किसी व्यक्ति के द्वारा संकलित किये गये लेखाओं में से, प्रत्येक वर्ष उन लेखाओं (जिनमें सम्मिलित हैं, उसके अपने द्वारा संकलित किये गये लेखाओं के मामले में, विनियोग लेखा) को तैयार करेगा जो संघ के या प्रत्येक राज्य के या विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्य क्षेत्र के प्रयोजन हेतु विशिष्ट शीर्षों के अंतर्गत वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों को दिखा रहे हैं, और ऐसे लेखाओं को राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को ऐसी तिथियों, जिन्हें वह, संबंधित सरकार की सहमति के साथ निर्धारित करे, को या उनके पूर्व प्रस्तुत करेगा। इस खण्ड में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त किये जाने का प्रावधान भी हैं। संघ या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रयोजन हेतु राष्ट्रपति, नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, तथा किसी के प्रयोजन हेतु किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के साथ और नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के साथ परामर्श के पश्चात्, आदेश द्वारा, उसे उक्त लेखाओं को तैयार करने और उनको प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से अवमुक्त कर सकता है।

3. खण्ड-12- अधिनियम के खण्ड- 12 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा संघ और राज्यों को सूचना दिये जाने और सहायता प्रदान किये जाने के संबंध में उसके कर्तव्य का वर्णन किया गया है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, जहां तक उन लेखाओं के संबंध में जिनका संकलन करने या जिनको बनाकर रखने के लिये वह जिम्मेदार है, संघ सरकार को, राज्य सरकारों को या विधान सभाओं वाले संघ-राज्य क्षेत्रों की सरकारों को, जैसा कि मामला हो, ऐसी सूचना देगा जिसकी आकांक्षा, समय-समय पर, उनको होगी, और उनके वार्षिक वित्तीय विवरणों को तैयार करने में उनको ऐसी सहायता प्रदान करेगा जिसकी वे यथोचित मांग करे।

4. खण्ड-13- अधिनियम के खण्ड-13 में लेखापरीक्षण से संबंधित सामान्य प्रावधान दिये गये हैं जो इस प्रकार से है। यह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में से किये गये व्यय का लेखापरीक्षण करे और यह अभिनिश्चित करे कि क्या लेखाओं में वे धनराशियां जो संवितरित की गई दिखायी गयी है, वैध रूप से उपलब्ध थी और उस सेवा या प्रयोजन जिसके लिये उन्हें लागू या प्रभारित किया गया था के लिये वैध रूप से प्रयोज्य थी तथा क्या व्यय उसको शासित करने वाले प्राधिकार के अनुरूप हैं; आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं से संबंधित संघ के एवं राज्यों के सभी संव्यवहारों का लेखापरीक्षण करे; और संघ के या किसी राज्य के किसी विभाग में रखे गये सभी सकल व्यापार, विनिर्माण, लाभ एवं हानि के लेखाओं तथा तुलन-पत्रों और अन्य सहायक लेखाओं का लेखापरीक्षण करे, और प्रत्येक मामले में उसके द्वारा लेखापरीक्षण किये गये व्यय, संव्यवहारों या लेखाओं के बारे में रिपोर्ट करे।

5. खण्ड-14- अधिनियम का खण्ड- 14 संघ या राज्यों के राजस्वों से वस्तुतः वित्त-पोषित निकायों या प्राधिकरणों के आय और व्यय का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) में यह प्रावधान किया गया है कि जहां कोई निकाय या प्राधिकरण भारत की या किसी राज्य की और विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि से दिये गये अनुदानों या ऋणों के द्वारा

वस्तुतः वित्त-पोषित है तो नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का यह कर्तव्य होगा कि वह उस निकाय या प्राधिकरण की सभी प्राप्तियों और व्यय का लेखापरीक्षण करे तथा उसकी रिर्पोट दे। इस खण्ड के उपखण्ड (2) में अग्रेतर यह प्रावधान किया है कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के पूर्व अनुमोदन के साथ, किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण की सभी प्राप्तियों और व्यय का लेखापरीक्षण कर सकता है, जहां किसी वित्तीय वर्ष में भारत की या किसी राज्य की या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र की संचित निधि, जैसा कि मामला हो, से ऐसे निकाय या प्राधिकरण को दिया गया अनुदान या ऋण एक करोड़ रूपये से कम नहीं है।

6. खण्ड-15- अधिनियम के खण्ड 15 में अन्य प्राधिकरणों या निकायों को दिये गये अनुदानों या ऋणों के मामले में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों का विवरण दिया गया है। इसके प्रावधानुसार जहां किसी निकाय या प्राधिकरण, जो कोई विदेशी राज्य या अंतर्राष्ट्रीय संगठन नहीं है, को भारत की या किसी राज्य की और विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र की संचित निधि से किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिये कोई अनुदान या ऋण दिया गया हैं तो नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक उन क्रियाविधियों की संवीक्षा करेगा जिनके द्वारा संस्वीकृत करने वाला प्राधिकारी उन शर्त्तों की पूर्ति के बारे में अपना समाधान करता है कि जिनके अधीन रहते हुये ऐसे अनुदान या ऋण दिये गये थे और इस प्रयोजन हेतु उस निकाय या प्राधिकरण की बहियों एवं लेखाओं तक, उचित पूर्व नोटिस देने के उपरांत, पहुंच का अधिकार होगा।

7. खण्ड-16- अधिनियम का खण्ड-16 संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। इस खण्ड के अनुसार यह नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह उन सभी प्राप्तियों का लेखापरीक्षण करे जो भारत की और प्रत्येक राज्य की और विधान सभा वाले प्रत्येक संघ-राज्यक्षेत्र की संचित निधि में संदेय है और अपना समाधान करे कि इस निमित्त नियम एवं क्रियाविधियां राजस्व के आंकलन, संग्रहण और उचित आवंटन पर प्रभावकारी नियंत्रण को प्राप्त करने के लिये बनाये गये हैं और उनका यथायोग्य अनुपालन किया जा रहा है तथा इस प्रयोजन के लिये लेखाओं का ऐसा परीक्षण करे जैसा कि वह उपयुक्त सोचे और उस पर रिपोर्ट दे।

8. खण्ड-17- अधिनियम का खण्ड-17 भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने के संबंध में प्रावधान करता है, जिसके अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के पास संघ के या किसी राज्य के किसी कार्यालय या विभाग में रखे गये भण्डारों और स्टॉक के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और रिर्पोट करने का प्राधिकार होगा।

9. खण्ड-18- अधिनियम के खण्ड- 18 में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में शक्तियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। इस से संबंधित आवश्यक प्रावधान उपखण्ड (1) में किये गये हैं। उपखण्ड (1) के अनुसार नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के पास अपने कर्तव्यों का निष्पादन करने के संबंध में प्राधिकार होगा कि वह संघ के या किसी राज्य के अधीन किसी लेखा कार्यालय जो उसे लेखाओं को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कोषागार और ऐसे कार्यालय जो प्रारम्भिक या सहायक लेखाओं को बनाकर रखने के लिये उत्तरदायी हैं, का निरीक्षण करे; यह अपेक्षा करे कि किन्हीं लेखाओं, बहियों, लेखापत्रों और अन्य प्रलेखों जो उन संव्यवहारों जिन तक लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विस्तार है, के साथ संबंधित है या उनका आधार बनाते हैं या अन्यथा प्रासंगिक हैं को ऐसे स्थान पर भेजा जाये जो वह अपने निरीक्षण के लिये नियत करे; तथा वह कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति से ऐसे प्रश्न पूछे या

ऐसी टिप्पणी करे जो वह आवश्यक समझे और ऐसी सूचना मांगे जिसकी आकांक्षा उसे हो किसी ऐसे लेखा या प्रतिवेदन को तैयार करने के लिये जिसको तैयार करना उसका कर्तव्य है।

खण्ड-18 के उपखण्ड (2) में कार्यालय के प्रभारी व्यक्ति के लेखापरीक्षण के संबंध में उसके कर्तव्यों का विवरण दिया गया है। इस उपखण्ड के अनुसार किसी कार्यालय या विभाग, जिसके लेखाओं का निरीक्षण और लेखापरीक्षण नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा किया जाना है, का प्रभारी व्यक्ति ऐसे निरीक्षण के लिये सभी सुविधाएं जुटायेगा और सूचना उपलब्ध कराने संबंधी किये गये अनुरोधों का अनुपालन जहां तक संभव हो वहां तक उतने पूर्ण रूप में एवं यथोचित शीघ्रता के साथ करेगा।

10. खण्ड- 19- अधिनियम का खण्ड-19 सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखापरीक्षण किये जाने के साथ संबंधित है। खण्ड के उपखण्ड (1) व (2) के अनुसार सरकारी कम्पनियों तथा संसद द्वारा या उसके द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अंतर्गत स्थापित निगमों के लेखाओं के लेखापरीक्षण के संबंध में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक के कर्तव्य एवं शक्तियां उसके द्वारा क्रमशः कम्पनी अधिनियम, 1956 व विशिष्ट विधायनों के प्रावधानों के अनुसार सम्पादित और प्रयोग की जायेगी। खण्ड के उपखण्ड (3) में यह प्रावधान किया गया है कि किसी राज्य का राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र का प्रशासक नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक से राज्य या संघ-राज्यक्षेत्र के विधानमण्डल, जैसा कि मामला हो, द्वारा बनायी गयी किसी विधि के द्वारा स्थापित की गयी किसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये अनुरोध कर सकता है और जहां पर ऐसा अनुरोध किया गया है, वहां पर नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक ऐसी निगम के लेखाओं का लेखापरीक्षण करेगा तथा उसकी बहियों व लेखाओं तक उसके पास पहुंच का अधिकार होगा।

खण्ड-19 क- अधिनियम के खण्ड-19क का सरोकार सरकारी कम्पनियों एवं निगमों के लेखाओं के संबंध में प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किये जाने के साथ है। इस अधिनियम के उपखण्डों (1), (2) व (3) के अनुसार किसी सरकारी कम्पनी या किसी निगम के लेखाओं के संबंध में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन संबंधित सरकार या सरकारों को प्रस्तुत किये जायेंगे। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार उनके द्वारा प्राप्त प्रत्येक प्रतिवेदन, उसके प्राप्त होने के उपरांत यथाशीघ्र, को क्रमशः संसद के प्रत्येक सदन और राज्य विधानमण्डल के समक्ष रखवायेंगे।

11. खण्ड-20- अधिनियम का खण्ड- 20 कतिपय प्राधिकरणों या निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण किये जाने से संबंधित है। इस खण्ड के उपखण्ड (1) के अनुसार जहां पर किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि द्वारा या उसके अंतर्गत नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक को सौंपा नहीं गया है, वहां पर यदि उस से राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्य क्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, के द्वारा ऐसा करने का अनुरोध किया गया है तो वह ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण ऐसे निबंधनों व शर्त्तों पर करेगा जो उसके और संबंधित सरकार के मध्य सहमत की गयी हो। खण्ड के उपखण्ड (2) में यह प्रावधान किया गया है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह प्रस्तावित कर सकता है कि उसे किसी ऐसे निकाय या प्राधिकरण, जिसके लेखाओं का लेखापरीक्षण करना उसे विधि द्वारा सौंपा नहीं गया है, के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जाये यदि उसका अभिमत है कि ऐसा लेखापरीक्षण आवश्यक है, क्योंकि केन्द्र सरकार या किसी राज्य सरकार या विधान सभा वाले किसी संघ-राज्यक्षेत्र के सरकार द्वारा उस निकाय या प्राधिकरण में पर्याप्त धनराशि निवेश की गयी है या उसे उधार दी गयी है और ऐसा अनुरोध किये जाने पर राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि

मामला हो, ऐसे निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये प्राधिकृत किया जा सकता है। खण्ड का उपखण्ड (3) यह प्रदान करता है कि उक्त किसी निकाय या प्राधिकरण के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने के लिये नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को तभी प्राधिकृत किया जा सकता है। यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल या प्रशासक, जैसा कि मामला हो, को यह समाधान हो गया है कि लोक हित में ऐसा करना समीचीन होगा और ऐसे लेखापरीक्षण के प्रस्ताव के संबंध में अभ्यावेदन करने के लिये संबंधित निकाय या प्राधिकरण को यथोचित अवसर दे दिया गया है।

9.7 नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा निभायी जा रही भूमिका का आंकलन

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक राष्ट्र के लेखापरीक्षक के रूप में कार्य कर रहा है और उसके कार्य को दिशा-निर्देशित करने वाले मूलभूत मूल्य स्वतंत्रता, वस्तुनिष्ठता, सच्चरित्रता, विश्वसनीयता, व्यावसायिक उत्कृष्टता, पारदर्शिता एवं सकारात्मक दृष्टिकोण हैं। वह शासन के तीनों स्तरों- संघ, राज्य व स्थानीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों; तथा संघ व राज्य सरकारों द्वारा वित्त-पोषित स्वायत्त निकायों के लेखाओं का लेखापरीक्षण करने और सम्बद्ध गतिविधियों को करने के लिये उत्तरदायी है। वह अपने कामों के माध्यम से लेखापरीक्षण संबंधी कार्यों में उत्कृष्टता के तत्व को सुनिश्चित करने और सुशासन की कार्यप्रणालियों का समर्थन करने हेतु प्रयास करता है। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कार्यालय की विस्तृत संगठनात्मक संरचना उसकी सहायता उसके नियत कार्यों को प्रवीणतापूर्वक कर सकने में करती है।

नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की देश की लोकतांत्रिक रूपसंरचना में अपूर्व स्थिति है। वह लोक प्राधिकारियों के संबंध में वित्तीय मामलों में प्रहरी की भूमिका निभाता हैं जिसके द्वारा वह यह सुनिश्चित करता है कि वे संविधान, विधियों एवं नियमों के अधीन रहकर वित्तीय कार्यों को कर रहे है। एक ओर वह लोक प्राधिकारियों की वित्तीय गतिविधियों पर प्रत्यक्ष निरोध रखता है तो दूसरी ओर वह संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की सहायता उन पर वित्तीय नियंत्रण रखने में करता है। संसद एवं राज्य विधानमण्डलों की लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति, जोकि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों का परीक्षण उनके संसद/राज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् करते हैं, का सुचारू कार्यकरण नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सहायता से ही संभव हो पाता है। यथार्थता में उसे इन समितियों का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक कहा जाता है।

लोक प्राधिकारियों के वित्तीय मामलों के संबंध में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा किये जा रहे बाह्य लेखापरीक्षण, जिसमें व्यापक तौर पर वित्तीय लेखापरीक्षण, निष्पादन लेखापरीक्षण और अनुपालन लेखापरीक्षण सम्मिलित होते हैं, का विस्तार-क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और उसको निर्धारित करने का अनन्य प्राधिकार उसके पास है। लेखापरीक्षण से संबंधित सभी मामलों में निर्णय लेने का अंतिम प्राधिकार उसके पास होता है। सरकारें लेखापरीक्षण से संबंधित मामलों में उस से अनुरोध तो कर सकती है, परन्तु उसको कोई निर्देश जारी नहीं कर सकती है। लेखापरीक्षण का कार्य पूर्ण होने के उपरांत वह संघ और राज्यों के लेखाओं से संबंधित लेखापरीक्षण के प्रतिवेदनों को संविधान के अनुच्छेद-151 में किये गये प्रावधान के अनुसार क्रमशः राष्ट्रपति एवं राज्यपाल को प्रस्तुत करता है और फिर इन प्रतिवेदनों को क्रमशः संसद व राज्य विधानमण्डलों के समक्ष रखा जाता है। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से विगत वर्षों के दौरान अनेक वित्तीय अनियमिततायें तथा घोटाले सामने आये है। यह तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक देश में वित्तीय प्रबंधन की स्थिति को सुधारने में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है, परन्तु कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो लेखापरीक्षण के कार्य को चुनौतीपूर्ण बना रहे हैं। इन मुद्दों में से कुछ मुद्दे हैं, जैसे कि लेखापरीक्षण के निष्कर्षों की अधिक नकारात्मक प्रवृत्ति का होना, वित्तीय अनियमितताओं के घटने और लेखापरीक्षण के माध्यम से उनके पकड़ में आने के बीच समय का काफी अंतराल

होना, सरकारों द्वारा लेखापरीक्षण के निष्कर्षों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाना, लेखापरीक्षकों के साथ लोक कार्मिकों का प्रायः कम सहयोगपूर्ण रवैया होना आदि।

अभ्यास प्रश्न-

1. नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम के खण्ड..............में संघ की या राज्यों की प्राप्तियों का लेखापरीक्षण किये जाने संबंधी उपबंध किये गये हैं।
2. ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान लेखापरीक्षक का पद कब अस्तित्व में आया?
3. स्वतंत्र भारत के प्रथम नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक कौन थे?
4. संविधान के अनुच्छेद- 148 (1) में यह प्रावधान किया गया हैं कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को उसके पद से केवल उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जायेगा जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। सत्य/असत्य
5. भारत सरकार (लेखापरीक्षण और लेखा) आदेश कौन से वर्ष में जारी किया गया था?

   क. 1936 ख. 1938

   ग. 1940 घ. 1942

9.8 सारांश

प्रकट इकाई का अध्ययन करने से आपको यह ज्ञात हो चुका है कि भारत में नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक लेखापरीक्षण के तंत्र का सर्वोच्च प्राधिकारी होता है। इस पद का अस्तित्व ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान हुआ और समय के साथ इस की स्वतंत्र स्थिति सुदृढ़ होती गयी। संविधान के प्रभावी होने के साथ ही यह पद संवैधानिक हो गया। नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के द्वारा वित्तीय मामलों में लोक प्राधिकारियों के संबंध में जो भूमिका निभायी जा रही है, वह एक प्रकार से प्रहरी की तरह होती है। वह लोक लेखा समिति एवं लोक उपक्रम समिति का मित्र, दार्शनिक एवं मार्ग-दर्शक होता है। उसके प्रतिवेदन समय-समय पर वित्तीय अनियमितताओं तथा घोटालों को प्रकाश में लाते रहे हैं। इस इकाई का अध्ययन करने से आपका मनन नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के बारे गहन हो सकता है।

9.9 शब्दावली

लोक निगम- लोक या संविधिक निगम लोक उद्यम का वह प्रकार होता हैं जो संसद या राज्य विधानमंडल के किसी विशेष अधिनियम के द्वारा स्थापित किया जाता है। लोक निगम की शक्तियां एवं कार्य सुस्पष्ट होते है और उसके कार्यकरण में स्वायत्ता होती है।

सरकारी कम्पनी- कम्पनी अधिनियम, 2013 की अनुच्छेद- 2 (45) के अनुसार सरकारी कम्पनी वह कम्पनी होती है, जिसकी प्रदत्त अंश पूंजी का कम से कम 51 प्रतिशत केन्द्र सरकार के द्वारा, या किसी राज्य सरकार या किन्हीं राज्य सरकारों के द्वारा, या आंशिक रूप से केन्द्र सरकार के द्वारा तथा आंशिक रूप से एक या अधिक राज्य सरकारों के द्वारा धारण किया जाता है और इसमें वह कम्पनी सम्मिलित होती हैं जो ऐसी किसी सरकारी कम्पनी की सहायक कम्पनी होती है।

स्वायत्त निकाय- स्वायत्त निकाय एक प्रकार से स्वशासी निकाय होता है, जिसके पास अपने नियमों को बनाने व अपने कार्यकलापों का प्रबंधन करने की स्वतंत्रता होती है।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. खण्ड-10, **2.** वर्ष 1858, **3.** वी0 नरहरि राव, **4.** सत्य, **5.** क

9.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी, अमरेश्वर एवं श्रीराम महेश्वरी, (1994) *Public Administration*, बीसवां संशोधित संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. कारपोरेट कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, (2013) कम्पनी अधिनियम।
3. www.mca.gov.in/Ministry/pdf/CompaniesAct2013.pdf
4. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, पूर्व नियंत्रक एवं महा-लेखापरीक्षक।
5. https://www.cag.gov.in/former-cag
6. http://www.cag.gov.in/former-cag?page=1
7. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, (जनवरी 2014) भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्त्तें) अधिनियम,1971 पर विवरणिका।
8. https://www.cag.gov.in/sites/default/files/cag_pdf/DPC2014new.pdf
9. भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक, नई दिल्ली, हमारा मिशन, दृष्टि और मूल्य।
10. https://www.cag.gov.in/hi
11. राष्ट्रपति सचिवालय, राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली, (जुलाई 26, 1979) वरीयता तालिका।
12. https://mha.gov.in/sites/default/files/table_of_precedence.pdf
13. सरकार, एस. और जे. जे. मुनीर, (2004 संस्करण) भारत का संविधान, 1950, आलिया लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।

9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य साम्रगी

1. अरोड़ा, रमेश के. एवं रजनी गोयल, (1995) *Indian Public Administration: Institutions and Issues*, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली
2. द्वितीय प्रशासनिक आयोग, भारत सरकार, (अप्रैल 2009) चौदहवां प्रतिवेदनः वित्तीय प्रबंधन प्रणाली को मजबूत बनाना, नई दिल्ली।
3. लाल, जी. एस., (जनवरी 1987) *Public Finance and Financial Administration in India*, एच. पी. जे. कपूर, नई दिल्ली
4. सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, ई.पी.ए.-05, वित्तीय प्रशासन, 7-लेखा और लेखापरीक्षण, नई दिल्ली।

9.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के पद के विकास को समझाईये।
2. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक की सेवा-शर्तों का वर्णन कीजिये।
3. नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई- 10 सार्वजनिक उपक्रमों का वित्तीय प्रशासन

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 सार्वजनिक उपक्रम का अर्थ
    10.2.1 सार्वजनिक उपक्रमों की विशेषताएं
10.3 सार्वजनिक उपक्रमों के रूप
10.4 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन
10.5 निष्कर्ष
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन का एक सार्थक गुण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सरकार का आर्थिक क्षेत्र में बढ़ता हुआ हस्तक्षेप है। इस प्रकार के हस्तक्षेप के तीन प्रमुख प्रकार हैं, जैसे- नियोजित अर्थव्यवस्था का शुभारंभ, लोक वित्त में जोड़-तोड़ तथा सार्वजनिक उपक्रमों का प्रशासन। सार्वजनिक उपक्रमों के स्वामित्व, प्रचलन और विनियमन में सरकारी हस्तक्षेप ने सकारात्मक रूप ले लिया है। आज सार्वजनिक सेवाओं का रूप व्यापक और विविध प्रकार का हो गया हैI सार्वजनिक उपक्रमों ने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति में सशक्त भूमिका निभाई है। सार्वजनिक उपक्रम अर्थव्यवस्था के कुछ गंभीर अंतराल को पाटने में सहायक हुए हैं- चाहे वे राज्य उद्यमों के लिए आरक्षित क्षेत्रों में हो अथवा क्षेत्रों में हो जिन में निजी पूंजी या उद्यम आकर्षित नहीं हो सकते। इन सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन की भी अपनी महत्ता होती है। सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबंध में वित्तीय प्रशासन एक महत्वपूर्ण कार्यात्मक क्षेत्र है। सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन का अर्थ होता है सार्वजनिक उपक्रमों के वित्त का प्रबंध। वित्तीय प्रशासन की एक विश्वस्त प्रणाली, सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय नीतियों को प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन करने के लिए आवश्यक होती है।प्रस्तुत अध्याय में सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक उपक्रमों के अर्थ को भलीभांति समझ पाएंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों की विशेषताएं एवं उनके विभिन्न रूपों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन के बारे में जान पाएंगे।

10.2 सार्वजनिक उपक्रम का अर्थ

सार्वजनिक उपक्रम भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र गामी विकास की वृद्धि दर के प्रमुख निर्धारक है। पिछले लगभग चार दशकों में इन्होंने सुनियोजित, त्वरित तथा आत्मनिर्भर आर्थिक उन्नति में अहम भूमिका निभाई है। भारत में सार्वजनिक उपक्रमों का संबंध विभिन्न क्रियाकलापों से है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनका संबंध ऋण देने, व्यापार के नियमन, विकास कार्यों के संगठन, भारी मशीनरी, मशीनों के पुर्जो, यंत्रों, विद्युत यंत्रों, रसायनों, औषधियों के निर्माण, खाद्य उर्वरकों के उत्पादन, तेल एवं कच्चे तेल शोधक, इस्पात एवं अन्य धातुओं का निर्माण, दुग्ध उत्पादन एवं वितरण, व्यापार, बाजार, होटल उद्यम आदि से है।

जैसा कि आपको ज्ञात होगा भारत एक मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला देश है जहां सामाजिक-आर्थिक विकास में सरकार के साथ-साथ निजी क्षेत्र का भी योगदान सुनिश्चित किया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में पूर्ण समाजवादी अर्थव्यवस्था अथवा पूर्ण निजी करण का स्पष्ट रास्ता अपनाने की अपेक्षा मध्यम मार्गी नीति धारण करना उचित माना। इस निर्णय के अनुसरण में सरकारी उद्योगों या लोक उपक्रमों की स्थापना एवं प्रसार होने लगा। सन 1954 में तत्कालीन कांग्रेस पार्टी ने समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया, जिसे 42वें संविधान संशोधन(1976) के माध्यम से संविधान की प्रस्तावना में स्थान दिया गया है। वस्तुतः भारतीय समाजवाद एक विशिष्ट प्रकार का 'प्रजातांत्रिक समाजवाद' है।

संविधान का अनुच्छेद-39 यह प्रावधान करता है कि "राज्य का कर्तव्य है कि वह अपनी नीति इस प्रकार निर्देशित करें कि देश के भौतिक साधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण तथा वितरण में सामान्य हितों का संवर्धन हो और आर्थिक प्रणाली के संचालन के फल स्वरुप जनहित के विरुद्ध संपत्ति एवं उत्पादन के साधनों का केंद्रीकरण नहीं हो।" इसी संदर्भ में उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण कर लोक उपक्रम स्थापित किए जा रहे हैं। सामान्यतया राष्ट्रीयकरण से आंखें उस व्यवस्था से है जिसमें भूमि, संसाधन तथा उद्योग इत्यादि का नियंत्रण तथा स्वामित्व राष्ट्र के हाथों में कर दिया जाता है।

लोक उपक्रम वह सरकारी संगठन या संस्थान होते हैं जो सरकार के सामान्य विभागों से पृथक प्रकृति के होते हैं। सरकार द्वारा संचालित चिकित्सालय या महाविद्यालय लोक उपक्रम नहीं है, बल्कि सरकार द्वारा वस्तु उत्पादन, ऊर्जा उत्पादन, वित्तीय लेनदेन तथा अन्य व्यापारिक गतिविधियों से संलग्न संगठन लोक उपक्रम कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जब सरकार वाणिज्यिक, व्यापारिक, औद्योगिक, कृषि तथा अन्य विशिष्ट सेवाओं का संचालन करती है, तब ऐसे संगठन स्थापित करती है जो सरकारी तंत्र के मूल ढांचे से पृथक रहकर स्वतंत्रता पूर्वक अपना कार्य संपादित करते हैं तो वे लोक उपक्रम कहलाते हैं। इस कार्यप्रणाली को 'Public Sector' के नाम से भी पुकारा जाता है।

"लोक उद्योग" के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे- सार्वजनिक उपक्रम, राजकीय उपक्रम, सार्वजनिक उपक्रम, सरकारी उद्योग, राष्ट्रीयकृत उद्योग आदि।

खेरा ने सार्वजनिक उपक्रम की व्यापक परिभाषा की। उनके अनुसार, "सार्वजनिक उपक्रम से आशय औद्योगिक, व्यापारिक एवं आर्थिक क्रियाओं से है जो केंद्रीय या राज्य सरकारों द्वारा सामूहिक रूप से संपादित की जाती है तथा प्रत्येक मामले में स्वयं या निजी उद्यम के सहयोग से पूर्ण प्रबंध के अधीन होती है।"

ए.एच. हेन्सन के अनुसार, ''लोक उद्योग का आशय सरकार के स्वामित्व में संचालित औद्योगिक, कृषि, वित्तीय एवं वाणिज्य तथा व्यापारिक इकाइयों से है।"

एन. एन. माल्या के अनुसार, "लोक उपक्रमों से अभिप्राय सरकारी स्वामित्व में स्थापित तथा नियंत्रित ऐसी स्वायत्तशासी या अर्ध-स्वायत्तशासी कंपनियों तथा निगमों से है जो औद्योगिक तथा वाणिज्य क्रियाओं में संलग्न है।"

लोकसभा सचिवालय के दस्तावेज अनुसार, "लोक उपक्रम का अर्थ ऐसे संगठन से है, जिसका व्यक्तित्व कानून द्वारा निर्धारित हो और जिसकी स्थापना संविधि या उसके किसी प्रावधान के अधीन सरकार की ओर से किसी औद्योगिक, व्यापारिक या आर्थिक प्रतिष्ठान या विशेष सेवा का अधिग्रहण लोकहित में किया गया हो तथा एक बड़ी मात्रा में उसे वित्तीय या प्रशासनिक स्वतंत्रता प्राप्त हो।"

10.2.1 सार्वजनिक उपक्रमों की विशेषताएं

सार्वजनिक उपक्रमों की निम्नांकित विशेषताएं हैं-

1. सार्वजनिक उपक्रम का प्रबंध सरकार अथवा किसी सार्वजनिक सत्ता के द्वारा किया जाता है।
2. लोक उपक्रमों का नियंत्रण भी सरकार या किसी लोकसत्ता द्वारा किया जाता है।
3. लोक उपक्रम या तो सरकार की पूंजी से संचालित होते हैं या कुल पूंजी में सरकार का हिस्सा सर्वाधिक होता है।
4. लोक उपक्रम सरकार के किसी विधान द्वारा स्थापित किए जाते हैं।
5. लोक उपक्रमों का कार्य क्षेत्र व्यापारिक, वाणिज्यिक,वित्तीय, कृषि, औद्योगिक या आर्थिक प्रकृति से संबंधित होता है।
6. सार्वजनिक उपक्रम अपने दैनिक प्रशासनिक कार्यों में सरकारी हस्तक्षेप से मुक्त रहते हैं।
7. इनकी कार्य प्रकृति में प्रशासनिक तत्वों के बजाय प्रबंध के तत्वों का अधिकतम आवेश रहता है।
8. यह उद्योग व्यापारिक प्रकृति के होते हुए भी मूलतः लाभ कमाने के उद्देश्य से स्थापित नहीं किए जाते हैं, बल्कि जनहित में सरकार के दायित्वों का निर्वहन करते हैं।
9. सार्वजनिक उपक्रमों को वित्तीय एवं कार्य संचालन के अधिकांश मामलों में स्वायत्तता प्राप्त होती है।

इन सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन को विस्तार से समझने से पूर्व आइए सार्वजनिक उपक्रम के विभिन्न रूपों के बारे में भी थोड़ा जान लें।

10.3 सार्वजनिक उपक्रमों के रूप

अपने उद्देश्यों, कार्यों तथा प्रकृति के आधार पर लोक उपक्रम कई प्रकार के हो सकते हैं।
खेरा ने स्वामित्व के आधार पर सार्वजनिक उपक्रमों की समीक्षा की है। उन्होंने उसे चार प्रकारों में विभाजित किया है-

- केंद्रीय शासन के उद्यम, जैसे- हिंदुस्तान स्टील, भारतीय स्टेट बैंक, जीवन बीमा निगम।
- राज्य शासन के उद्यम, जैसे- विद्युत मंडल एवं राज्य यातायात निगम।
- उद्यम जो केंद्रीय एवं राज्य सरकारों के संयुक्त स्वामित्व में हैं, जैसे- दामोदर घाटी निगम एवं भाखरा-नांगल योजना।
- उद्यम जो शासन एवं निजी प्रतिष्ठानों के सहयोग से स्थापित किए जाते हैं, जैसे- सिंगरेनी खदान एवं ऑयल इंडिया लिमिटेड।

विलियम रॉब्सन ने सार्वजनिक उपक्रमों को उनके उद्देश्य प्रकृति की दृष्टि से निम्नलिखित 7 भागों में विभाजित किया है-

- सार्वजनिक उपयोग के उपक्रम- जल, गैस तथा विद्युत संयंत्र इत्यादि।
- यातायात एवं संचार संबंधित- रेलवे, हवाई, जहाजरानी, डाक एवं तार आदि।

- बैंकिंग, साख एवं बीमा संबंधी- जीवन बीमा निगम तथा राष्ट्रीय कृत बैंक।
- बहुउद्देशीय विकास योजनाएं- भारत में दामोदर घाटी निगम तथा अमेरिका में तेनेसी घाटी परियोजना।
- आधारभूत उद्योग- कोयला, खनन, लोहा, स्टील तथा तेल उत्पादन से संबंधित जैसे- कोल इंडिया लिमिटेड, सेल तथा ओ.एन.जी.सी. इत्यादि। ऐसे उद्योग निजी स्वामित्व से लेकर राष्ट्रीय कृत भी किए जाते हैं।
- नवीन उद्योग या सेवाएं- राष्ट्रीय परियोजना निर्माण निगम लिमिटेड, तथा भारतीय खाद्य निगम।
- सांस्कृतिक गतिविधियों संबंधी- भारतीय प्रसारण निगम(प्रसार भारती) तथा राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम इत्यादि।

स्वामित्व के आधार पर भी लोक उपक्रम कई वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं-

- केंद्र सरकार के उपक्रम- भारतीय स्टेट बैंक, हिंदुस्तान मशीन टूल्स तथा राष्ट्रीय खनिज विकास निगम लिमिटेड इत्यादि।
- राज्य सरकार के उपक्रम- राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम, हरियाणा राज्य खनिज विकास निगम तथा उत्तर प्रदेश वित्त निगम आदि।
- केंद्र एवं राज्य के संयुक्त उपक्रम- नाथपा- झाकरी पावर निगम लिमिटेड (केंद्र तथा हिमाचल प्रदेश सरकार का संयुक्त उपक्रम) टिहरी हाइड्रो इलेक्ट्रिक डेवलपमेंट निगम लिमिटेड (केंद्र तथा उत्तर प्रदेश सरकार) तथा स्पंज आयरन लिमिटेड (केंद्र तथा आंध्रप्रदेश सरकार)।
- सरकारी एवं निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम- मारुति उद्योग लिमिटेड (केंद्र सरकार तथा जापान की सुजुकी मोटर कंपनी का संयुक्त उपक्रम) तथा लुब्रिजोल इंडिया लिमिटेड (केंद्र सरकार तथा अमेरिकी कंपनी का संयुक्त उपक्रम)।
- केंद्र, राज्य तथा निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम भी होते हैं।
- राज्य सरकार तथा निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम भी हो सकते हैं।
- दो या अधिक राज्य सरकारों के उपक्रम भी संयुक्त उपक्रम कहलाते हैं।

वस्तुतः यह वर्गीकरण विनियोग तथा स्वामित्व के आधार पर होता है। लोक उपक्रमों में 51प्रतिशत या तुलनात्मक रूप से अधिक पूंजी सरकार अर्थात मुख्य स्वामित्वधारी की होती है।

स्थापना के वैधानिक आधार पर लोक उपक्रम चार प्रकार के होते हैं-

- विभागीय उपक्रम- जो सरकारी विभागों की मूल संरचना के ही एक भाग होते हैं, जैसे- रेलवे, डाक तथा तार इत्यादि।
- निगम- जिनकी स्थापना केंद्र या राज्य विधायिका द्वारा पारित एक विशेष अधिनियम के द्वारा की जाती है, जैसे- दामोदर घाटी निगम तथा भारतीय जीवन बीमा निगम इत्यादि।
- सरकारी कंपनी- जब किसी लोक उपक्रम की स्थापना भारतीय कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत की जाती है, जैसे- हिंदुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड, तथा हिंदुस्तान कॉपर लिमिटेड इत्यादि।
- सहकारी संस्था- जब किसी लोक उपक्रम की स्थापना सहकारी संगठन के रूप में की जाती है (सभी सहकारी संस्थाएं लोक उपक्रम नहीं होती), जैसे- इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर कोऑपरेटिव, कृषक भारती को-ऑपरेटिव तथा नेशनल हेवी इंजीनियरिंग कोऑपरेटिव लिमिटेड इत्यादि।

कुछ विद्वान लोक उपक्रमों को एक श्रेणी में रखते हैं तथा प्रशासनिक कार्य आधार को विवश करते हैं, जैसे-

- प्रशासनिक विभाग- सरकार के वित्तीय कार्यों (कर एकत्रीकरण), रक्षा कार्य, पुलिस, जेल, विदेश, सामुदायिक सेवा, शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन तथा कृषि से संबंधित विभाग में सम्मिलित हैं।
- वाणिज्यिक विभाग- सरकारी स्वामित्व एवं नियंत्रण में लगे उत्पादन या सेवा कार्य के संस्थान, जैसे- रेलवे, संचार, सिंचाई, दूध वितरण, आयुध फैक्ट्री तथा विद्युत मंडल इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं।
- लोक उपक्रम- सरकारी क्षेत्र के वे उपक्रम जो कंपनी अधिनियम या किसी पृथक विधान के अंतर्गत पंजीकृत है। जिनमें सरकार की 51 प्रतिशत या अधिक पूंजी लगी हुई है; जैसे- तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम तथा भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेडा

यद्यपि कार्य, उद्देश्य, क्षेत्र, प्रकृति तथा स्वामित्व के आधार पर लोक उपक्रम कई प्रकार के हो सकते हैं, किंतु संगठनात्मक आधार पर तीन प्रकार के लोक उपक्रम अधिक प्रचलित हैं- विभागीय संगठन, लोक निगम तथा सरकारी कंपनी।

10.4 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन

सार्वजनिक उपक्रमों के अर्थ परिभाषा एवं विभिन्न प्रारूपों को जानने के बाद आइए अब सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन को समझने का प्रयास करते हैं। सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन को विभिन्न विचारधाराओं के द्वारा समझा जा सकता है। परंपरागत दृष्टिकोण की एक विचारधारा के अनुसार सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन का अर्थ होता है उन उपक्रमों की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन एकत्रित करना। साधारण शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन को इन उपक्रमों के द्वारा वित्त एकत्र करने के तरीकों एवं साधनों तक ही सीमित मान लिया गया है। आज इस बदलते परिवेश में वित्तीय प्रशासन को यदि वित्त एकत्र करने एवं वित्तीय संसाधनों के समन्वय तक ही सीमित कर दिया जाएगा तो यह उचित नहीं होगा। आज वित्तीय प्रशासन वित्त एकत्र करने के इस कार्य से कहीं आगे निकल चुका है। दूसरी विचारधारा यह कहती है की सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन केवल नकद प्रबंधन से संबंधित ही होता है। अर्थात यह विचारधारा यह मानकर चलती है कि इन सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा संपादित की जाने वाली ऐसी समस्त गतिविधियां जो इन उपक्रमों में नकद प्रवाह को प्रभावित करती है वह सब इन उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन के अंतर्गत आती हैं। यह विचारधारा सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन के एक व्यापक दृश्य को दर्शाती है। सार्वजनिक उपक्रमों में व्यापक स्तर पर ऐसी गतिविधियां संपादित की जाती है, जिनको नकद प्रबंधन से संबंधित किया जा सकता है। कुछ विचारकों का ऐसा मानना है कि सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय प्रशासन गतिविधियों का एक ऐसा समूह है जो वित्त एकत्र करने, विभिन्न उद्देश्यों के लिए उसके आवंटन एवं उनके वित्तीय निष्पादन की देखरेख से संबंधित होता है।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अन्य सभी उपक्रमों की भांति सार्वजनिक उपक्रमों में भी वित्तीय प्रशासन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सार्वजनिक उपक्रमों की सफलता के लिए एक अच्छे वित्तीय प्रशासन की महत्ता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक उपक्रमों की सफलता ना केवल वित्तीय बल्कि उसके साथ साथ गैर-वित्तीय प्रशासकों के मध्य एक स्वस्थ अंतः क्रिया पर निर्भर करती है। ऐसा एक सामान्य मत है कि सार्वजनिक उपक्रमों में विभिन्न अधिकारियों के द्वारा वित्त का कार्य अधिक पसंद नहीं किया जाता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम भी लाभांश, ब्याज, कॉर्पोरेट कर, उत्पाद शुल्क आदि के भुगतान के माध्यम से केन्द्र सरकार के संसाधनों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त योगदान दे रहे हैं, से देश के नियोजित विकास के लिए वित्तीय जरूरतों को पूरा करने हेतु धन जुटाने में सहायता मिल रही है।

भारत सरकार ने 1901 सत्र में यह तय कर लिया था कि वित्तपोषण में1:1 का रेंट इक्विटी अनुपात होगा। हर नए प्रोजेक्ट का आधा निवेश इक्विटी पूंजी में और आधा हिस्सा कर्ज़ में होगा। पूंजीगत व्यय के बारे में निर्णय में कई संगठन शामिल होते हैं- उपक्रम के निदेशक मंडल, प्रशासनिक मंत्रालय, सार्वजनिक निवेश बोर्ड (पी.आई.बी.), योजना आयोग, वित्त मंत्रालय, सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो (बी.पी.ई.), तथा (डी.जी.टी.बी.)

हर पूंजीगत व्यय प्रस्ताव पर पहले संबंधित उद्यम के निदेशक मंडल स्तर पर चर्चा की जाती है। बोर्ड केवल एक मिश्रित राशि तक ही निर्णय ले सकता है। बोर्ड द्वारा अधिक निवेश की आवश्यकता वाले प्रस्तावों की संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय को सिफ़ारिश की जाती है। इसके बाद मंत्रालय में एक उचित अध्ययन के बाद प्रस्ताव को शामिल लागत के आधार पर या तो सार्वजनिक निवेश बोर्ड या परियोजना मूल्यांकन प्रभाग को भेजा जाता है। परियोजना मूल्यांकन प्रभाग रुपये की आवश्यकता वाले प्रस्तावों का मूल्यांकन करता है। इस स्तर पर प्रस्ताव के विभिन्न पहलुओं, जैसे- तकनीकी, वित्तीय, आर्थिक, प्रबंधकीय लाभप्रदता आदि का मूल्यांकन किया जाता है। मंत्रालय स्तर पर जाँच के बाद प्रस्ताव को योजना से संबंधित आयोग की निवेश योजना समिति के पास भेजा जाता है। सलाहकार भी प्रस्ताव की जाँच करते हैं और फिर इसे पाँच वर्षीय योजना में शामिल करने की सिफ़ारिश की जाती है।

वित्त मंत्रालय को विभिन्न योजनाओं के लिए धन जुटाना पड़ता है। वित्त मंत्रालय के तहत व्यय विभाग में नागरिक व यह प्रभाग और सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो सार्वजनिक उद्यमों के प्रस्तावों की जाँच में लगे रहते हैं। जब तक व्यय विभाग के द्वारा मंजूरी नहीं दी जाती है तब तक प्रशासनिक मंत्रालय कोई खर्च नहीं कर सकता है। तकनीकी विकास महानिदेशालय प्रशासनिक मंत्रालयों को तकनीकी सलाह प्रदान करता है। विदेशी सहयोग के मामले में, विदेशी मुद्रा बोर्ड से भी संपर्क किया जाता है। बड़े निवेश निर्णयों के लिए संसद की मंजूरी भी आवश्यक होती है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा उचित बजट प्रणाली का विज्ञापन किया जाता है। वे राजस्व बजट, पूंजीगत व्यय बजट, नकद बजट आदि प्रकार के बजट तैयार करते हैं। राजस्व बजट चालू वर्ष और अगले वर्ष के लिए एक अनुमानित लाभ और हानि का खाता होता है। यह उत्पादन अनुमान, बिक्री अनुमान, उत्पादन बजट की लागत, क्षमता उपलब्धता बजट तथा व्यय अनुमान आदि पर आधारित होता है। पूंजीगत व्यय बजट भविष्य के पूंजीगत व्यय निर्णयों का पूर्वानुमान लगाने के लिए तैयार किया जाता है। भविष्य की अवधि के लिए विस्तार, विविधीकरण योजनाओं आदि का पालन किया जाता है। नकद बजट नकदी पैदा करने और उपयोग करने के अनुमानों पर आधारित होता है। नकद बजट राजस्व बजट में दिखाए गये खर्चों और आय को ध्यान में रखता है। अधिकांश उपक्रम अपने उपयोग के लिए स्वयं बजट तैयार करते हैं। लेकिन रेलवे, एलआईसी, ओएनजीसी आदि जैसे उपक्रम हर साल संसद में अपना बजट अनुमान प्रस्तुत करते हैं। इस बजट को पहले निदेशक मंडल द्वारा अनुमोदित किया जाता है और फिर प्रशासनिक मंत्रालय के सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो और योजना से संबंधित आयोग को भेजा जाता है।

सार्वजनिक उपक्रमों में बजटीय नियंत्रण प्रणाली का पालन नहीं किया जाता है। एक उचित बजटीय नियंत्रण प्रणाली बजट के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करती है। बजट से किसी भी विचलन की सूचना तुरंत शीर्ष प्रबंधन को दी जाती है। दक्षता सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक उद्यमों में एक व्यवस्थित बजटीय नियंत्रण प्रणाली की आवश्यकता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों द्वारा निर्मित उत्पादों के लिए मूल्य निर्धारण हमेशा से एक समस्या का क्षेत्र ही रहा है। ये इकाइयां पर्याप्त लाभ नहीं कमा रही है और विस्तार आदि के लिए अधिशेष नहीं बनाया गया है। कीमतों के निर्धारण को लेकर हमेशा विवाद रहा है। क्या इन उद्यमों को निजी क्षेत्र की इकाइयों की तरह मुनाफा कमाना चाहिए? क्या उनकी मूल्य संग रचना उपयोगिता अवधारणा का पालन करना चाहिए? सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में प्रशासित मूल्य निर्धारण अर्थात मूल्य, प्रशासन द्वारा निर्धारित किया जाता है ना की माँग और आपूर्ति

की बाजार शक्तियों के द्वारा। मूल्य निर्धारण के कुछ उद्देश्य और सिद्धांत होने चाहिए। यदि कीमतें तर्कसंगत रूप से तैयार नहीं की जाती है तो ये लाभ या हानि का कारण बन सकते हैं। यदि कीमतें बढ़े हुए मुनाफे से अधिक हैं तो इकाई की अक्षमता को छुपाया जाएगा। दूसरी ओर यदि कीमतें कम हैं तो नुकसान हो सकता है और इसके लिए कुशल इकाइयों को दंडित किया जाएगा। कम कीमत इकाइयों को अधिशेष बनाने की अनुमति नहीं देगी जोकि विस्तार और विविधीकरण के आगे वित्तपोषण के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

मूल्य निर्धारण में दो दृष्टिकोण होते हैं, अर्थात सार्वजनिक उपयोगिता दृष्टिकोण और प्रतिफल की दर दृष्टिकोण। सार्वजनिक उपयोगिता दृष्टिकोण 'नो प्रॉफिट नो लॉस' के दृष्टिकोण पर जोर देता है। चूँकि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयां बुनियादी उद्योगों में लगी हुई हैं और उनके उत्पाद अन्य उद्योगों के लिए एक महत्वपूर्ण इनपुट हैं, इसलिए उनकी क़ीमतें कम रखी जानी चाहिए। ऐसी भावना है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को कीमतें तय करने में निजी क्षेत्र के पैटर्न का पालन करना चाहिए। हालाँकि, कुछ उपभोक्ताओं या समार्थ के वर्गों के पक्ष में कुछ भेदभाव विचार हो सकते हैं।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों द्वारा क़ीमतें तय करने के लिए कुछ दिशा निर्देश जारी किए, जो इस प्रकार से हैं-

- औद्योगिक और विनिर्माण क्षेत्रों में सार्वजनिक उद्यमों को अधिशेष अर्जित करने का लक्ष्य रखना चाहिए, ताकि वे पूंजी विकास के लिए धन उत्पन्न करने में सक्षम हो।
- कीमतें तय करते समय निजी क्षेत्र की अनुमानित मूल्य और आय नीति को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- सार्वजनिक उपयोगिता वाली सेवाओं के मामले में उद्देश्य निवेश पर वापसी की दर के बजाय अधिक उत्पादन करना है।
- पी. ई. को अपनी पूरी क्षमता का उपयोग सुनिश्चित करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की लाभप्रदता और दक्षता के बारे में यदि बात की जाए तो ये दोनों एक दूसरे से संबंधित हैं। पिता का सामान ने पैमाना ही लाभप्रदता है। यदि कोई प्रतिष्ठान लाभ अर्जित कर रहा है तो हम उसे लाभदायक कहते हैं और दूसरी ओर यदि कोई लाभ नहीं है तो उसे अकुशल कहा जाएगा। यूनिक उद्यमों के मामले में यह मानदंड लागू नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक उद्यमों का मुख्य उद्देश्य एक सामाजिक कारण की सेवा करना है और लाभप्रदता इसके बाद आती है। इसके अतिरिक्त ये उद्यम उद्योग के विकास के लिए एक बुनियादी ढांचा भी प्रदान कर रहे हैं। इसलिए सामाजिक उद्यमों की दक्षता का आंकलन इसी संदर्भ में किया जाना चाहिए।

लाभ लागत से अधिक अधिशेष है। निजी क्षेत्र में मुख्य उद्देश्य लाभों को अधिकतम करना है। भारत में सार्वजनिक उद्यमों को भी लाभ अर्जित करना चाहिए, क्योंकि उन्हें विकसित देशों की इकाइयों की तुलना में कुछ लाभ मिलते हैं। श्रम लागत जो लागत का एक महत्वपूर्ण तत्व हैं प्रचुर आपूर्ति के कारण भारत में बहुत कम है। सरकार इन उपक्रमों को रियायती धन राशि प्रदान करती है, जिससे उनकी लागत भी कम होनी चाहिए। यहाँ तक की विपणन में भी इन इकाइयों के उत्पादों को सरकारी विभागों द्वारा वरीयता दी जाती है। न केवल उनके विस्तार और विविधीकरण के लिए बल्कि सरकार के योजनागत व्यय के लिए भी पर्याप्त धन राशि के सृजन की तत्काल आवश्यकता है। भारत में सार्वजनिक उद्यम अपनी काम लाभप्रदता के कारण भी आलोचना का शिकार होते हैं। इस काम लाभप्रदता के भी अनेक कारण हैं जो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. योजना और क्रियान्वयन चरण के सब मैं प्रारंभिक भारी लागत।
2. सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की लंबी अवधि।

3. बड़ी अप्रयुक्त क्षमता अर्थात स्थापित अक्षमताएं बढ़ी है, लेकिन वास्तविक उपयोग की गई क्षमता बहुत कम है और ओवर हेड खर्च बहुत अधिक है।
4. भारी सामाजिक लागत भी एक कारण है। ये इकाइयां टाउनशिप के निर्माण, कर्मचारियों को शैक्षिक और चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने में भारी मात्रा में खर्च करती है।
5. कम कीमत वाले उत्पाद भी एक कारण है। इन उद्यमों के उत्पादों की कीमतों को जानबूझकर कम रखा जाता है, क्योंकि इनमें से कई उत्पाद अन्य औद्योगिक इकाइयों के लिए इनपुट बन जाते हैं।
6. एक अन्य कारण उच्च व्यय अनुपात भी होता है। इन इकाइयों के खर्चों पर कोई नियंत्रण नहीं है। अन्य क्षेत्रों में भारी नौकरशाही प्रबंधन और अधिक कर्मचारी है।
7. नुकसान प्रबंधन की अक्षमता भी इनके ख़राब प्रदर्शन का कारण माना जाता है।

और इसके अतिरिक्त इन इकाइयों में शीर्ष पदों पर लोक सेवक स्थापित होते हैं। इन संगठनों में पेशी पर लोगों की कमी है। साथ ही इन लोक सेवकों को भी अक्सर स्थानांतरित कर दिया जाता है इसलिए उनकी जवाब देही भी न ही रहती हैं। प्रबंधन की अदक्षता इन इकाइयों में काम लाभप्रदता का एक प्रमुख कारण है।

इन सब तथ्यों के अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में वित्तीय सलाहकार की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका और स्थान होता है। सभी वित्तीय मामलों में उनकी सहमति आवश्यक रही। ये व्यक्ति आम तौर पर अखिल भारतीय लेखा सेवाओं से संबंधित होते थे। इन वित्तीय सलाहकारों की भूमिका हमेशा से विवाद का विषय रही है। यह वित्तीय सलाहकार स्वयं को बाहर का व्यक्ति मानता रहा। पूर्व में इस वित्तीय सलाहकार की नियुक्ति वित् मंत्रालय के द्वारा की जाती थी और निदेशक मंडल का उसमें कोई हाथ नहीं होता था। बुत वित्तीय सलाहकार नियुक्त करने की शक्ति नियंत्रण मंडल के पास है। वह मुख्य कार्यकारी के सलाहकार के रूप में काम करता है। साथ ही वह है उद्यम के सभी वित्तीय मामलों पर सलाह देता है और वह वित् और लेखा विभाग का प्रमुख होता है।

वित्तीय सलाहकार को आम तौर पर निम्नलिखित कार्य सौंपें जाते हैं-

- वित्तीय सहमति प्रदान करना।
- बिलों का भुगतान और उनका लेखा जोखा रखना।
- बिक्री और वाणिज्यिक गतिविधियां।
- लागत लेखांकन, लागत नियंत्रण और प्रबंधन लेखांकन।
- बजट और बजटीय नियंत्रण।
- कर योजना।
- भविष्य निधि उत्पादन निधि आदि के लिए न्यासी।

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उपक्रमों के संबंध में एक इस बात पर भी आम सहमति है कि सरकार को वाणिज्यिक उद्यमों का संचालन नहीं करना चाहिए। इसके कारणों में सार्वजनिक संसाधनों की कमी, मौजूदा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अक्षम और घाटे में चल रहे संचालन आदि बातें शामिल हैं। उसी के अनुसार, उदारीकरण प्रक्रिया के हिस्से के रूप में, ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सुधार शुरू कर दिए हैं। सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन के संदर्भ में सरकार की नीति के कुछ प्रमुख तत्वों की विवेचना कुछ इस प्रकार से की जा सकती है-

- यदि आवश्यक हो तो सभी गैर-रणनीतिक सार्वजनिक उपक्रमों में सरकारी इक्विटी को 26 प्रतिशत या उससे कम पर लाना।
- संभावित व्यवहार यह सार्वजनिक उपक्रम को प्रतिबंधित और पुनर्जीवित करना।

- कौन सार्वजनिक उपक्रमों को बंद कर देना जिन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता है तथा
- श्रमिकों के हितों की पूरी तरह से रक्षा करना।

10.5 निष्कर्ष

भारत जैसे मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले देश की आर्थिक व्यवस्था में सार्वजनिक उपक्रमों का विशिष्ट स्थान और महत्व है। हमारे संविधान के नीति-सिद्धांतों में सत्ता के विकेंद्रीकरण पर ज़ोर दिया गया है, एकाधिकारी प्रवृति पर रोक लगाने की बात की गई है और आर्थिक नियोजन के लक्ष्यों की प्राप्ति, संतुलित क्षेत्रीय विकास, समाजवादी समाज की रचना, रोजगार के अवसरों में वृद्धि आदि के लिए राज्य को निर्देश दिए गए हैं। इन सब बातों की पूर्ति के लिए, निजी उपक्रम की अकुशलता पर अंकुश लगाने के लिए और सरकारी स्तर पर प्राप्त विदेशी सहायता के समुचित उपयोग के लिए देश में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की गई है। सार्वजनिक उद्यम भारत के आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में उभरे। सार्वजनिक क्षेत्र हालाँकि सिद्धांत रूप में सही है पर फिर भी उम्मीदों पर खरे नहीं उतरे हैं। इनके उत्पादन की लागत अधिक है, प्रबंधन नौकरशाही है और परंपरा-बाध्य और आयातित तकनीक हमेशा अच्छी तरह से नहीं चुनी जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सार्वजनिक उपक्रमों के अन्य प्रचलित कोई दो नाम बताइए।
2. विलियम रॉब्सन ने सार्वजनिक उपक्रमों को कितने भागों में विभाजित किया है?
3. क्या सार्वजनिक उपक्रम केंद्र, राज्य तथा निजी क्षेत्रों के संयुक्त उपक्रम भी हो सकते हैं?
4. कंपनी अधिनियम के तहत आने वाले सार्वजनिक उपक्रमों में सरकार की कितनी प्रतिशत पूंजी लगती है?

10.6 सारांश

आजादी से पहले देश के आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की भागीदारी लगभग शून्य थी।1956 की औद्योगिक नीति के बाद ही सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को बढ़ावा मिला। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम वर्तमान में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम भी लाभांश ब्याज कॉरपोरेट दर उत्पाद शुल्क आदि के भुगतान के माध्यम से केन्द्र सरकार के संसाधनों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त योगदान दे रहे हैं, ताकि देश के नियोजित विकास के लिए वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन जुटाने में सहायता मिले।

10.7 शब्दावली

त्वरित- तीव्र गति वाला, राष्ट्रीयकृत- राष्ट्र का बनाया हुआ, उत्पाद शुल्क- देश में उत्पादित वस्तुओं पर जो शुल्क लगाया जाता है, नियोजित- वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भविष्य की रूपरेखा तैयार करने हेतु आवश्यक क्रियाकलापों के बारे में चिंतन करना नियोजन कहलाता है, अधिशेष- अतिरिक्त, बकाया

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोक उपक्रम और लोक उद्योग, **2.** 7 **3.** हां, **4.** 51 प्रतिशत

.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी,2016. भारतीय प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी,2014. भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कटारिया, सुरेंद्र, 2009. भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
2. लेखी, आर. के., 2009 लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

।.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक उपक्रमों का अर्थ एवं परिभाषाएं स्पष्ट करते हुए सार्वजनिक उपक्रमों के विभिन्न प्रारूपों की विवेचना कीजिए।
2. सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय प्रशासन पर एक निबंध लिखिए।

इकाई- 11 सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय सहायता एवं जवाबदेयता

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व
11.3 सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याएं
11.4 सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्व
    11.4.1 स्वायत्तता के पहलू
    11.4.2 पर्याप्त स्वतंत्रता की आवश्यकता
    11.4.3 उत्तरदायित्व की अवधारणा
    11.4.4 सार्वजनिक उपक्रमों के उत्तरदायित्व के कारण
    11.4.5 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने की पद्धतियां
    11.4.6 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही की वर्तमान स्थिति
11.5 निष्कर्ष
11.6 सारांश
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

सार्वजनिक क्षेत्र में अथवा सार्वजनिक उद्योगों की निरंतर बढ़ती हुई संख्या, शक्ति, आकार आदि ने उत्तरदायित्व और स्वायत्तता की समस्या को जन्म दिया है। समुचित हिसाब देयता या उत्तरदायित्व और साथ ही पर्याप्त सहायता के अभाव में सार्वजनिक उद्योगों से अपेक्षित सफलता की आशा नहीं की जा सकती है। पर्याप्त सहायता के अभाव में सार्वजनिक उद्योग केवल विभागीय संगठन बनकर रह जाएंगे। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक उपक्रमों के निर्माण का मूलभूत उद्देश्य ही विफल हो सकता है। आज सार्वजनिक उद्यमों को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान किए जाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्याय में हम सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय एवं अन्य स्वायत्तता एवं जवाबदेयता के संदर्भ में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व को समझ पायेंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याओं से अवगत हो पायेंगे।
- सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्वों पर अपनी समझ बढा पायेंगे।

11.2 सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व

पिछले अध्याय में आपने सार्वजनिक उपक्रमों के अर्थ, परिभाषाएं एवं प्रकार तथा वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तृत रूप से जाना। सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेयता के बारे में विस्तार से जानने से पूर्व आइए पहले सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व को समझा जाए। यह जानने का प्रयास किया जाए कि सार्वजनिक उपक्रम हमारी आर्थिक व्यवस्था के लिए कितने महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन के बाद ही सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं उत्तरदायित्व की समस्या को समझने में आसानी होगी।

किसी भी देश में उपलब्ध भौतिक एवं तकनीकी संसाधनों का समुचित उपयोग एवं वितरण सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य ऐसी नीतियां प्रतिपादित करें जो जनसाधारण के विकास और कल्याण को गति देते हुए आर्थिक न्याय की भी स्थापना कर सके। इसी संदर्भ में भारत में केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अपने अपने कार्य क्षेत्र में सार्वजनिक उपक्रम स्थापित किए गए हैं। इन उपक्रमों की स्थापना के संदर्भ में जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं वे कुछ इस प्रकार से हैं-

1. **महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार का नियंत्रण-** सामान्य उपयोग में आने वाली कुछ वस्तुएं, जैसे- लोहा, खनिज, कोयला, व इत्यादि निजी उद्योगों के अधीन की जा सकती है। परंतु इसके अतिरिक्त कुछ बहुमूल्य धातु तथा अन्य गंभीर तकनीकी प्रकृति के उद्योगों जैसे रक्षा उपकरण, आणविक संयंत्र, वित्तीय एवं मौद्रिक उत्पादन, गोपनीय दस्तावेज एवं प्रतिभूति आदि पर सरकार का नियंत्रण होना अत्यधिक आवश्यक है। इन उद्योगों को निजी क्षेत्रों को सौंपना सही नहीं होगा। यदि सुरक्षा, अस्त्र शस्त्र तथा मुद्रा इत्यादि के उपयोग निजी हाथों में संचालित होंगे तो किसी भी समय राष्ट्र के समक्ष संकट उत्पन्न हो सकता है। अतः यह उचित होगा कि गंभीर तथा राष्ट्रीय महत्व के उद्यम सरकार द्वारा संचालित किए जाएं जिसके कारण न केवल इन उद्योगों पर सरकार का नियंत्रण रहता है, बल्कि अर्थव्यवस्था को भी एक वांछित दिशा एवं गति दी जा सकती है।
2. **समाजवादी समाज की स्थापना-** स्वतंत्रता के पश्चात भारत में कल्याणकारी एवं प्रशासकीय राज्य की संरचना में सरकारी उद्यमों का स्थान सुनिश्चित हुआ। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि सामाजिक आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक होता है कि उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व बना रहे। कुछ समय के पश्चात सरकार द्वारा समाजवादी समाज की अवधारणा को सरकार के द्वारा अंगीकार किया गया, जिसमें पूंजी एवं संसाधनों का न्यायोचित वितरण एक आवश्यक शर्त मानी जाती है। वर्तमान में अहस्तक्षेपवादी राज्य की अवधारणा को छोड़कर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राज्य की भूमिका दिनों दिन बढ़ती जा रही है।
3. **मूल्य नियंत्रण तथा स्वस्थ प्रतिस्पर्धा-** उत्पादन के क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप का एक और लाभ होता है कि, औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिस्पर्धा को इससे बढ़ावा मिलता है। बिल्कुल इसी प्रकार विशिष्ट सेवाओं, वस्तु तथा उत्पादन पर मूल्य को नियंत्रित करने में सार्वजनिक उपक्रम एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। निधि उपक्रमों का एकमात्र उद्देश्य लाभ कमाना होता है, जबकि सरकारी उद्योगों का उद्देश्य जनहित में सस्ती एवं कुशल सेवाएं प्रदान करना होता है। आयात निर्यात तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवहार से संबंधित अन्य वाणिज्यिक गतिविधियां भी सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा संचालित की जा सकती है।
4. **राजनीतिक कार्यक्रमों के पर्याय-** विश्व भर में कार्यरत विभिन्न मान्यताओं वाले राजनीतिक दलों में सरकारी उद्योगों को निरंतर आश्रय प्रदान किया है। भारत, फ्रान्स या ब्रिटेन में ही नहीं, बल्कि अमेरिका जैसे पूंजीवादी देश में भी लोक उपक्रमों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण बढ़ाने

के लिए उनका राष्ट्रीयकरण करना एक बहुत ही सहज माध्यम माना जाता है। इसी प्रकार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नवीन अधिकारों को सरकार अपने उपक्रमों के माध्यम से जन उपयोगी बनाना चाहती है।

5. **आर्थिक नियोजन एवं राष्ट्रीय विकास-** भारत उन देशों में शामिल है, जिन्होंने नियोजन के माध्यम से आर्थिक सामाजिक विकास की राह चुनी है। आर्थिक क्रियाओं पर सरकार का नियम, संसाधनों का समुचित वितरण, उनका सदुपयोग तथा उनसे समयानुकूल वृद्धि,पूंजी बाजार पर नियंत्रण, आई वितरण में समानता तथा विकास के संपूर्ण क्षेत्रों पर निगरानी रखने के लिए सरकारी उपक्रमों का महत्वपूर्ण योगदान है। इन उपकरणों के माध्यम से रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं तथा श्रमिकों से संबंधित कल्याणकारी योजनाओं को मूर्त रूप प्रदान किया जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य प्राप्त करने, सामाजिक सेवाओं को आम जनता तक पहुंचाने तथा राष्ट्रीय विकास से लक्ष्यों की प्राप्ति में सार्वजनिक उपक्रम महत्वपूर्ण साबित होते हैं। निर्यात में वृद्धि करने, लघु एवं कुटीर उद्योगों को विकसित करने, औद्योगिक विकास दर को उच्च बनाने, निजी क्षेत्र की कमियों या दोषों से मुक्ति पाने तथा आम उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के लिए सार्वजनिक उपक्रम स्थापित किए जाते हैं।
6. **राज्य की विनियोग क्षमता-** ऐसे सभी उद्योग जिनमें एक साथ बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी और साथ ही साथ अन्य संसाधनों की विनियोग की आवश्यकता होती है, निजी क्षेत्र सरलता से कदम नहीं रख सकता है, जबकि दूसरी तरफ ऐसे क्षेत्रों में विनियोग हेतु सरकार की क्षमताएं बहुत और सीमित और व्यापक होती हैं। अतः लोक महत्व की बड़ी और बहुउद्देशीय परियोजनाओं एवं उनसे संबंधित उद्योगों की स्थापना में सरकार सदैव आगे रहती है। कुछ एक उद्योग इस प्रकार के भी होते हैं, जिनमें लाभ का अंश कम रहता है तथा जोखिम या हानि का प्रतिशत अधिक पाया जाता है। निजी उद्योग इस प्रकार के सभी उद्योगों से बचना चाहते हैं। लेकिन जनहित को देखते हुए सरकार को ऐसे हानि देने वाले उद्योग भी स्थापित करने पड़ते हैं। भारत, रूस, ऑस्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे विशाल भू-भाग वाले देशों में रेलवे का विकास सरकारी प्रयोगों के द्वारा ही संभव हुआ है। इसी प्रकार कृषि, ग्राम विकास, सहकारिता, पशुपालन, कुटीर उद्योग, समाज कल्याण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य, भारी उद्योग, परिवहन, संचार, ऊर्जा तथा खनन कार्यों में सरकारी उद्यम अधिक उपयुक्त रहते हैं।
7. **राज्य के वित्तीय साधनों में वृद्धि-** हालांकि लोक उपक्रमों की स्थापना लाभ कमाने के प्राथमिक उद्देश्य को लेकर नहीं की जाती है बल्कि राज्य इन के माध्यम से अपने दायित्वों की पूर्ति करता है, फिर भी सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा नागरिकों का जीवन बेहतर बनाया जा सकता है तथा कुशल प्रबंधन के द्वारा इसके साथ-साथ लाभ भी कमाया जा सकता है। ज्यादातर विकसित देशों के सार्वजनिक उपक्रम सरकार को प्रतिवर्ष वित्तीय लाभ प्रदान करते हैं। इस लाभ को सरकार अन्य नए उपक्रमों एवं सार्वजनिक सेवाओं में विनियोजित करती है। सरकार ऐसे क्षेत्रों में उद्यम स्थापित कर सकती है, जहां कोई निजी उद्यम कतराता है।

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना के मूल में राष्ट्रीय सुरक्षा, संतुलित आर्थिक विकास, सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति, तकनीकी विकास तथा अनेक प्रकार के असंतुलन को समाप्त करने के उद्देश्य निहित रहते हैं।

11.3 सार्वजनिक उपक्रमों की समस्याएं

सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता और उत्तरदायित्व की समस्याओं को विस्तार में जाने से पहले आवश्यक है कि हम सार्वजनिक उपक्रमों की मूलभूत समस्याओं के बारे में एक संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें। सार्वजनिक उपक्रम

अनेक मूलभूत समस्याओं से ग्रस्त हैं, जिनके निराकरण के बिना उनके कुशल कार्य निष्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इन समस्याओं को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है- समस्त उपक्रमों की सामान्य समस्याएं, और किसी एक उपक्रम की विशिष्ट समस्याएं।

समझने की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याओं का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है-

1. **परियोजना संबंधी समस्याएं-** वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे में विस्तृत क्षेत्रीय कार्य आ गए हैं और निवेश की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है। सार्वजनिक क्षेत्रों की परियोजनाओं के प्रभावी प्रबंध का बहुत महत्व बढ़ गया है। इससे संबंधित समस्याएं हैं- स्थान का चयन, औचित्य रिपोर्ट की वैधता, समय और लागत का अतिलंघन, भूमि प्राप्त करने की समस्या, तकनीकी ज्ञान की समस्या आदि।
2. **संस्थागत समस्याएं-** किसी भी उनकी सफलता के लिए उसके संस्था के स्वरूप का महत्व बहुत अधिक होता है। 1948 के औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव में इस पक्ष पर पर्याप्त चर्चा की गई थी। इस प्रस्ताव में कहा गया कि राज्य क्षेत्र का प्रबंध, नियम पूर्वक सार्वजनिक निगमों के माध्यम से केंद्रीय सरकार के वैधानिक नियंत्रण में होगा। इससे संबंधित समस्याएं हैं- सरकार की अस्पष्ट नीति,उद्देश्यों में विरोधाभास, स्थापना के राजनीतिक कारण, पहल करने की तथा स्वायत्त परिचालन की समस्या।
3. **वित्तीय समस्या-** सार्वजनिक उपक्रमों के सबसे प्रमुख समस्या, वित्तीय समस्या है। इन की वित्तीय स्थिति संतोषजनक नहीं है। अधिक निवेश के बावजूद इन संस्थाओं के असंतोषजनक कार्यों ने राष्ट्रीय परियोजना प्रक्रिया को बहुत कमजोर बनाया है और साथ ही साथ कर के बोझ को भी बढ़ाया है।प्रमुख वित्तीय समस्याएं हैं- वित्तीय जागरूकता की समस्या, वित्तीय अनुशासन, अधिक पूंजी निवेश समस्या, बजट संबंधी समस्या, असंतोषप्रद कार्य, ऋण,कम लाभ, फिजूल खर्च, कार्यकारी पूंजी एवं प्रबंध में लापरवाही आदि।
4. **मूल्य निर्धारण तथा लाभ की समस्या-** उद्यमों की प्रकृति में अंतर के कारण मूल्य निर्धारण एक कठिन समस्या बन गया है। कुछ उपक्रम औद्योगिक तथा व्यापारिक होते हैं, कुछ विकासात्मक तथा उन्नति कारक होते हैं और कुछ अन्य आधारभूत होते हैं। इससे संबंधित समस्याएं हैं- स्पर्धात्मक वातावरण, बचत की क्षमता कम होने, निवेश योग्य संसाधनों की कमी के कारण, ना लाभ हानि के आधार पर संचालन आदि के कारण आयी पद्धति बिगड़ जाती है और आर्थिक विकास के लिए किए गए प्रयासों में बाधा खड़ी हो जाती है।
5. **सेवी वर्ग की समस्या-** सार्वजनिक उपक्रमों की एक यह समस्या भी बहुत महत्वपूर्ण है- नौकरशाही का नियंत्रण, कार्मिक-प्रबंधन के बीच अच्छे संबंध का ना होना, मानव शक्ति का नियोजित ना होना, भर्ती की दोषपूर्ण नीति, प्रवीणता, गुणवत्ता की उपेक्षा, नियुक्ति में राजनीतिक हस्तक्षेप, प्रतिनियुक्तियों की समस्या, वैज्ञानिक प्रशिक्षण का अभाव, निजी क्षेत्रों की तुलना में कम वेतन, अन्य सुविधाओं की कमी, मनोबल की कमी, अनाकर्षक सेवा शर्तें आदि।
6. **उत्पादन की समस्या-** उत्पादन की समस्या का अभिप्राय है कि कम समय और कम लागत में अधिक उत्पादन करना। ऐसा करते समय वस्तु की गुणवत्ता और उत्तम तक ध्यान रखना आवश्यक होता है। इससे संबंधित समस्याएं हैं- ऊर्जा की कमी, पुरानी शक्तिहीन उत्पादन संस्थाएं, उत्पादन क्षमता का उपयोग ना होना, माल की विवरण सूची, प्रबंध की समस्या, हल्की किस्म का कच्चा माल, शोध और विकास क्रियाओं का असंतोषजनक स्तर आदि।
7. **विपणन की समस्या-** सार्वजनिक उपक्रम का यह सबसे कम विकसित क्षेत्र है। इसकी समस्याएं हैं- सार्वजनिक उपक्रमों के पास योग्य विक्रेताओं की कमी, सरकार तथा ऑडिटरओं के कठोर नियंत्रण के

कारण विक्रय कमीशन के रूप में विक्रय प्रोत्साहन का अभाव, घटिया उत्पादित वस्तुओं, प्रतिस्पर्धा क्षमता की कमी आदि।

8. **सामग्री प्रबंधन की समस्या-** इन क्षेत्रों के प्रबंध क्षेत्र में सामग्री का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंध का अभाव पाया जाता है। इससे संबंधित कठिनाइयां हैं- अधिक सामग्री का भंडार, लंबे समय तक अनुत्पादक रूप में धनराशि को बंद रखना हानिकारक होता हैI सामग्री प्राप्त करने में कठिनाई और विलंब, नियम कठोर और अलोचशील, सरकारी हस्तक्षेप, वाणिज्य और व्यापार जैसी प्रवृत्ति का अभाव, आदि।
9. **नियंत्रण और उत्तरदायित्व की समस्या-** सार्वजनिक क्षेत्र में जनता का धन लगा होता है इसलिए इनके नियंत्रण और उत्तरदायित्व का कार्य संसद को सौंप दिया गया है। इससे संबंधित समस्याएं हैं- स्वायत्तता की समस्या, सरकारी नियंत्रण की समस्या, परस्पर विरोधी उद्देश्य संबंधित समस्या, उत्तरदायित्व की समस्या।

सार्वजनिक उपक्रम हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और विकास के महत्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। अतः उनकी समस्याओं का सुधार किया जाना भी अनिवार्य है, जिससे सार्वजनिक उपक्रम राष्ट्र के निर्माण में अपनी अपेक्षित भूमिका निभा सके।

11.4 सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्व की समस्या

स्वायत्तता शब्द का यदि साधारण अर्थ निकाला जाए तो वह होता है निर्णय लेने एवं उसके अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रताI वहीं दूसरी ओर उत्तरदायित्व का अर्थ होता है किसी उच्च सत्ता के समक्ष अपने लेखे-जोखों को प्रस्तुत करनाIसार्वजनिक उपक्रमों को दी जाने वाली वित्तीय स्वायत्तता का अर्थ है कि उन्हें निवेश प्रबंध, निवेश के लिए धन प्राप्त करने एवं सुदृढ़ व्यापारिक सिद्धांतों तथा वित्तीय प्रशासकों की बुद्धिमता पर आधारित निजी उपक्रमों के वित्तीय निष्पादन को नियंत्रित करने के क्षेत्र में अपने आप निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करना।

स्वायत्तता से यहां हमारा आशय मनमानी या स्वतंत्रता से नहीं है, परंतु स्वायत्तता से हमारा अभिप्राय है मर्यादित एवं विशिष्ट सीमाओं के भीतर रहकर अपने तरीके से कार्य करने की स्वतंत्रता। सार्वजनिक उपक्रमों में स्वायत्तता के संदर्भ में इक्फे सेमिनार,1959 में कहा गया था कि, "स्वायत्तता का समर्थन करने का अभिप्राय शासन के उत्तरदाई उच्च अंगों को इस बात के लिए शिक्षित करने की आवश्यकता पर बल देता है कि वे संयम से काम लें और वास्तविक महत्वपूर्ण विषयों में हस्तक्षेप करने तक ही अपने आप को सीमित रखेंI साथ ही यह भी समस्या है कि ऐसी संस्थाओं के मुख्य अधिकारियों को मंत्रियों और सचिवों द्वारा उनको दिए गए परामर्श से भयभीत होने से बचाया जाए।" मार्च, 1959 में सार्वजनिक उपक्रमों के राष्ट्रीय सम्मेलन में कहा गया था कि, "स्वायत्तता का अभिप्राय आंतरिक प्रबंध की ऐसी पूर्ण स्वतंत्रता से है जो राजकीय अभिक्रम ओं के दबावों से मुक्त रहते हुए राज्य द्वारा अपनाए गए सामाजिक उद्देश्यों के अधीन होती है।" स्वायत्तता का अर्थ संकुचित अर्थ में किसी उपक्रम को परिचालन स्वायत्तता और वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने से हैं, किंतु विस्तृत अर्थ में इसका आशय यह है कि उपक्रम को उद्देश्यों की प्राप्ति तथा व्यवसाय के कुशल संचालन के लिए संबंधित अधिनियम और संबंधित मंत्रालय के नियंत्रण के अंतर्गत दैनिक कार्यकलापों में हस्तक्षेप से मुक्त रहकर प्रबंध एवं संचालन कार्य करने दिया जाए।

स्वायत्तता और उत्तरदायित्व सार्वजनिक उपक्रम प्रबंध के दो मूल प्रश्न हैं जिन पर चर्चा किया जाना आवश्यक होता है। सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त सहायता दी जानी चाहिए जिससे वे अपने लक्ष्यों को कुशलता पूर्वक प्राप्त कर सकें। हमारे देश में सार्वजनिक उपक्रमों में बड़ी मात्रा में पूंजी का विनियोजन होता है और भारतीय अर्थव्यवस्था में यह उद्योग सामूहिक रूप से एक शक्तिशाली निवेशन-शक्ति बन चुके हैं। सार्वजनिक उपक्रम चूँकि जनहित से पूरी तरह से जुड़े हुए हैं, अतः यह महत्वपूर्ण समस्या उत्पन्न हो रही है कि इन सार्वजनिक उपक्रमों पर

पूर्णतया प्रभावशाली नियंत्रण रखा जाए अथवा उन पर समुचित नियंत्रण रखते हुए, पर्याप्त सहायता भी प्रदान की जाए। आज यह प्रश्न अत्यधिक विचारणीय है कि सार्वजनिक उपक्रमों को कितनी स्वायत्तता दी जाए कि वे एक और तो निजी उद्यमों की भांति कुशलता से कार्य कर सकें और दूसरी ओर उनके संसदीय उत्तरदायित्व में भी कमी ना आए।

सार्वजनिक उपक्रमों को निवेश के संबंध में परियोजना को पहचानने, चुनाव करने, उसके विस्तृत प्रतिवेदन का निर्माण करने, मूल्यांकन करने तथा उसके क्रियान्वयन पर नियंत्रण करने की प्राप्त होनी चाहिए। साथ ही उनको इस बात की भी स्वतंत्रता होनी चाहिए अपने दायित्वों के स्तर को वर्तमान परिसंपत्तियों के किसी भी अनुपात पर स्थित करने को स्वतंत्र होने चाहिए। सामान्य काल में सार्वजनिक उपक्रमों को पूंजी की लागत के अनुसार स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। उन्हें विभिन्न रेल भागीदारी प्रस्तावों के मध्य चुनाव करने की स्वतंत्रता भी होनी चाहिए। साथियों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे बैंकों, वित्तीय संस्थाओं तथा उनके पास उपलब्ध कार्यशील पूंजी की आवश्यकता के लिए पूंजी बाजार एवं मुद्रा के माध्यमों का चुनाव कर सकें। सरकार द्वारा लगाए गए सामाजिक प्रतिबंधों के अंतर्गत इन उपक्रमों को वित्तीय प्रतिष्ठा सुनिश्चित करने के लिए निजी क्षेत्र के अंतर्गत किसी भी व्यवसाय फर्म की तरह अपनी स्वयं की लागत एवं कीमत व्यवस्था, लाभदेता के मापदंड एवं नियंत्रण तंत्र का विकास करने की स्वायत्ता भी होनी चाहिए। वित्तीय जवाबदेही का एक पहलू यह भी है कि सार्वजनिक उपक्रमों से अधिकतम अच्छे परिणाम सुनिश्चित कर लेनी चाहिए।

11.4.1 स्वायत्तता के पहलू

संयुक्त राष्ट्र पैम्फलेट के अनुसार स्वायत्तता के प्रमुख पहलू इस प्रकार हैं-

1. उपक्रमों के संचालन- व्ययों के लिए वार्षिक बजट प्रावधानों से स्वतंत्रता;
2. संचालनात्मक राजस्व प्राप्त करने और रखने की आवश्यकता;
3. संचालन व्ययों की पूर्ति के लिए, संचालनात्मक राजस्व के उपयोग की स्वतंत्रता;
4. सामान्य सरकारी प्रतिबंधो, विशेषतया व्यय क्षेत्र के प्रतिबंधों से स्वतंत्रता;
5. सामान्य सरकारी विनियोजन के लेखन की स्वतंत्रता;
6. सामान्य सरकारी अंकेक्षण से स्वतंत्रता;
7. केंद्रीय खरीद तथा अनुरोध-अनिवार्यताओं से स्वतंत्रता;
8. एवं अन्य सम्बद्ध स्वतंत्रताए प्रदान करना, जैसे- ऋण लेने की स्वतंत्रता, नियुक्ति एवं विमुक्ति की स्वतंत्रता, इच्छित वेतन प्रशासन की स्वतंत्रता, दीर्घकालीन नियोजन को नियंत्रित करने की स्वतंत्रता आदि।

साधारण शब्दों में किसी भी संगठन की वित्तीय सहायता से कई बाहरी तत्व भी जुड़े होते हैं। अर्थात सार्वजनिक उपक्रमों की कार्यप्रणाली इस स्वायत्तता को निर्धारित करती है। अतः वित्तीय स्वायत्तता के अपने कुछ स्तर होते हैं या यूं कहें कि यह नियंत्रण स्थापित करने वाली कुछ संस्थाएं होती हैं, जो कुछ इस प्रकार से हैं- संसद, सरकार, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय, जनसंचार माध्यम तथा नागरिक।

यह जितने भी संस्थान होते हैं इनके पास वित्तीय स्वायत्तता के संबंध में एक स्पष्ट नीति उपस्थित होती है। इस नीति के द्वारा यह सार्वजनिक उपक्रमों को प्रभावी एवं कुशलता से कार्य करने के लिए उपलब्ध करा सकते हैं। सार्वजनिक उपक्रम क्योंकि सार्वजनिक संस्थाएं हैं, इसलिए इनके वित्तीय व्यापार के प्रत्येक पहलू पर नियंत्रण रखने के लिए एक स्पष्ट और प्रभावी नीति की आवश्यकता होती है। परंतु सार्वजनिक उपक्रमों को दिन प्रतिदिन के वित्तीय निर्णय निर्माण करने में सहायता प्राप्त होनी चाहिए। जैसे- सामान्य करें, लागत आवंटन, योग्य कीमत संरचना का विकास, वित्त के सही स्त्रोतों का चुनाव आदि। उपरोक्त वर्णित नियंत्रण की यह सभी संस्थाएं वित्तीय

निर्णय निर्माण के नीतिगत पहलुओं में हस्तक्षेप कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि संसद का है तो वह सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय निष्पादन, वित्तीय स्थिति, कीमत व्यवस्था, विदेशी सहयोग के वित्तीय पहलू एवं आंतरिक वित्त इत्यादि पर विचार विमर्श कर सकती है। सरकार एक निश्चित सीमा से अधिक वेतन पाने वाले अधिकारियों की नियुक्ति को स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार अपने पास आरक्षित रख सकती है एवं सार्वजनिक उपक्रमों को कुछ निश्चित सेवाएं वशिष्ठ मूल्यों पर प्रदान करने के निर्देश दे सकती है, चाहे वह किफायती हो या ना हो।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता को भंग करते हुए यह आदेश-निर्देश देने का अधिकार रखता है कि वे अपने खातों के प्रस्तुतीकरण एवं वित्तीय सूचनाओं की जानकारी देने के लिए एक निश्चित ढांचे को ही अपनाएं। जनसंचार माध्यम एवं नागरिक सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय निर्णय की आलोचना कर सकते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें इस मामले पर पुनर्विचार करना पड़ सकता है जो कि जन आक्रोश को आकर्षित करें। कभी-कभी सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबंधकों द्वारा लिए गए कुछ निर्णयों की सार्वजनिक जांच भी हो सकती है। उदाहरण के लिए 1970 में, सार्वजनिक उपक्रम समिति की सिफारिशों पर एक-एक व्यक्ति आयोग की स्थापना भारतीय तेल निगम द्वारा एक अमरीकी कंपनी को कुछ पाइप लाइन डालने के कार्य का अनुबंध देने की करने के लिए की गई थी।

सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय जवाबदेही मुख्य खाता संबंधी निर्णयों से भी संबंधित होती है। इसमें मूल्य ह्रास में वृद्धि, निविदा प्रक्रिया, तोर मूल्यांकन और प्रतिस्थापन में परिवर्तन आदि शामिल किए जाते हैं। कुछ आंतरिक संगठन संबंधी मामले भी होते हैं। इनमें आंतरिक लेखा-जोखा, माल को मंगवाने की प्रक्रिया, शक्तियों का प्रत्यायोजन, वित्तीय लेनदेन पर निकट पर्यवेक्षण, अनुशासन संबंधी मामलों के प्रावधान इत्यादि शामिल होते हैं। यह सभी मामले उपक्रम के भीतर ही सही रूप से विकसित होने के लिए छोड़ें जा सकते हैं। अर्थात इन सार्वजनिक उपक्रमों को इन मामलों में सहायता प्रदान की जा सकती है। व्यापक वित्तीय नीतियां भी वित्तीय जवाबदेही के मुख्य या मूलभूत पहलुओं में से एक हैI इसमें स्व-वित्त से संबंधित मामले,पूंजी विस्तार कार्यक्रमों की रूपरेखा एवं लाभांश की दर, विदेशी धन का प्रत्यावर्तन अथवा परामर्श शुल्क इत्यादि शामिल किए जाते हैं। सार्वजनिक उपक्रम वित्तीय परिणामों, उत्पादकता एवं वृद्धि के संबंध में विभिन्न संस्थाओं के प्रति जवाबदेह हो सकते हैं। समझौता ज्ञापन एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में उभर रहा है, जिसके द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों को एक वित्तीय वर्ष के भीतर अपने उद्देश्य एवं अपेक्षित लक्ष्यों को दर्शाना होता है।

11.4.2 पर्याप्त स्वतंत्रता की आवश्यकता

सार्वजनिक क्षेत्र में अथवा सार्वजनिक उद्योगों की निरंतर बढ़ती हुई संख्या, शक्ति, आकार आदि ने उत्तरदायित्व एवं स्वायत्ता की समस्या को जन्म दिया है। समुचित हिसाबदेयता या उत्तरदायित्व और साथ ही पर्याप्त स्वायत्ता के अभाव में सार्वजनिक उद्योगों से अपेक्षित सफलताओं की आशा नही की जा सकती है। पर्याप्त स्वायत्ता के अभाव में सार्वजनिक उद्योग केवल विभागीय संगठन बनकर ही रह जाएँगे। इस स्थिति में उनके निर्माण का मूलभूत उद्देश्य ही विफल हो सकता है। सार्वजनिक उद्योगों को पर्याप्त सहायता प्रदान करने की आवश्यकता के पक्ष में कुछ तर्क या कारण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो कुछ इस प्रकार से हैं-

1. किसी भी उपक्रम के लिए शीघ्र निर्णय लेना बहुत आवश्यक होता है। स्वायत्तता के अभाव में शीघ्र निर्णय कभी भी किसी भी संगठन द्वारा नहीं लिए जा सकते हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि कोई भी निर्णय लेने के लिए समुचित आदेशों और निर्देशों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। निर्णय में विलंब का उपक्रमों की कार्यकुशलता और उनकी विकास गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैI उपक्रम स्तर पर लिए गए निर्णय को शीघ्र कार्य भी किया जा सकता है और उपक्रम 'अवसर के लाभ' से भी वंचित नहीं होता है।

2. इसी क्रम में आगे यह कहा जा सकता है कि यदि किसी भी उपक्रम को उसके दैनिक कार्यकलापों के संपादन के लिए भी बार-बार आदेशों की प्रतीक्षा करनी पड़ी तो ऐसी स्थिति में संचालन व्यवस्था बड़ी अकुशल और प्रभावहीन हो जाएगी। कोई भी कार्य समय पर नहीं हो पाएगा। इस कारण से भी उपक्रमों के कुशल संचालन के लिए पर्याप्त सहायता की अत्यधिक आवश्यकता है।
3. वाणिज्यिक और औद्योगिक उपक्रमों में केवल शीघ्र निर्णय लेना ही पर्याप्त नहीं होता है, बल्कि आवश्यकता इस बात की भी होती है कि निर्णय यथासंभव कार्यस्थल के निकट ही लिए जाए। ऐसा तभी संभव है जब कि सार्वजनिक उद्योगों को परिचालन स्वायत्तता प्राप्त हो।
4. यदि सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान नहीं की गई और बार-बार हस्तक्षेप करने तथा आदेश देने की नीति को अपनाया गया तो इससे कर्मचारियों का मनोबल भी गिरता है और उनके कार्य के प्रति नीरसता भी पनपती है। कर्मचारियों के आत्म सम्मान को धक्का पहुंचता है और साथ ही साथ ऐसी स्थिति में वह अपने आप को पराधीन भी समझने लगते हैं। इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि उपक्रमों के कार्यों में शिथिलता आ जाती है तथा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती है।
5. स्वायत्तता से ही उत्तरदायित्व का उदय होता है। सार्वजनिक उद्योगों के अधिकारियों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक होता है कि उन्हें निश्चित कार्य करने के लिए पर्याप्त सहायता प्रदान की जाए। यदि कार्य करने की ही स्वायत्तता नहीं होगी तो अधिकारी को कार्य करने के लिए उत्तरदाई भी ठहराना कठिन होगा।
6. स्वायत्तता से उपक्रम के साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग भी संभव होता है। स्वायत्तता उपक्रम के अधिकारियों और कर्मचारियों के मन में उपक्रम के प्रति अपनत्व का भाव पैदा करती है, जिससे उपक्रम के संसाधनों का अधिकतम और श्रेष्ठतम उपयोग संभव हो पाता है।
7. जब सार्वजनिक उपक्रमों को नियमाधीन स्वायत्तता प्रदान कर दी जाती है तो वह निश्चित सीमाओं के भीतर कार्य करने हेतु अधिकृत हो जाता है और उसे अनावश्यक हस्तक्षेप से मुक्ति मिल जाती है। स्वायत्तता हस्तक्षेप की मात्रा को कम करती है। इससे उपक्रम राजनीतिक और प्रशासनिक दबाव से अधिक आतंकित नहीं रहता है।

11.4.3 उत्तरदायित्व की अवधारणा

बिजली की भांति ही, उत्तरदायित्व की परिभाषा देना कठिन है, लेकिन उसमें तत्काल जानकारी प्राप्त करने के कुछ तत्व अवश्य मौजूद होते हैं। एक तार को छूने पर उसमें बिजली की उपस्थिति का आभास तुरंत हो जाता है, उसे परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं होती। ठीक उसी प्रकार सरकार में भी उत्तरदायित्व की उपस्थिति का आभास हालांकि बिजली के जैसा तेज नहीं होता फिर भी जानकारी हो जाती हैं। भारतीय प्रशासन में उत्तरदायित्व एक जटिल जाल के समान संसद से लेकर नीचे तक फैला हुआ है। यह उत्तरदायित्व मंत्रिमंडल, विभागों, मंडलों एवं आयोगों आदि सभी में देखने को मिलता है। यह प्रशासनिक इकाइयां नौकरशाही के द्वारा संचालित की जाती है। उत्तरदायित्व का प्रवाह इस प्रशासनिक जाल से ही प्रसारित होता है, परंतु यह हमेशा केंद्रीय नियंत्रण अर्थात मंत्रिमंडल से संबंध बनाए रखता है। उत्तरदायित्व के दो पहलू हैं, जो अलग होते हुए भी आपस में संबंधित होते हैं। पहला मूलतः राजनीतिक और दूसरा प्रशासनिक होता है। पहले अर्थात राजनीतिक पहलू में कार्यपालिका अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदाई होती है। वहीं दूसरी और प्रशासनिक में कार्यपालिका विभागों के प्रशासकों और विभिन्न सार्वजनिक इकाइयों को अपने दायित्व का निर्वहन कैसे करना है इसके प्रति उत्तरदाई होते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और मिलकर दोनों उत्तरदाई सरकार के आधार स्तंभ है।

सामान्य शब्दों में सार्वजनिक उपक्रमों में उत्तरदायित्व का अर्थ है, उनके हिसाब के ब्यौरों की जानकारी जनता को देना। सार्वजनिक उत्तरदायित्व में लोकसभा द्वारा प्रत्यक्ष तथा मंत्रियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष नियंत्रण होता है। इस प्रकार इनका काम प्रबंधकों को मंत्रियों के प्रति और मंत्रियों के माध्यम से इनको लोकसभा के प्रति उत्तरदाई बनाना है। यहां नियंत्रण और उत्तर दायित्व में भेद को स्पष्ट करना आवश्यक है। वास्तव में नियंत्रण एक सक्रिय कार्य है, जबकि उत्तरदायित्व अक्रियाशील कार्य है। नियंत्रण एक सक्रिय, उद्देश्य पूर्ण तथा सकारात्मक कार्य है। इसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति अथवा संस्था को किसी कार्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति के लिए निर्देश देना, उनको उनकी सीमा में रखना तथा उत्प्रेरित करना। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नियंत्रण उत्तरदायित्व को सुविधाजनक बनाता है। व्यक्ति, जो उत्तरदाई होता है, के पास नियंत्रण करने की शक्ति होनी चाहिए। जहां तक सार्वजनिक उपक्रमों का संबंध है, यह समझा जाता है कि समस्त कार्य क्षेत्र के हिस्सेदार करदाता होते हैं। जिस प्रकार निजी उद्यमों में हिस्सेदारों को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे उपक्रम की कार्यप्रणाली के संबंध में जानकारी प्राप्त करें। उसी प्रकार लोक सभा को, जो कि करदाताओं की विश्वास पात्र है, यह अधिकार प्राप्त है कि वह सार्वजनिक उपक्रमों पर उचित नियंत्रण स्थापित रखें।

11.4.4 सार्वजनिक उपक्रमों के उत्तरदायित्व के कारण

सार्वजनिक उपक्रमों के उत्तरदायित्व के कुछ प्रमुख कारण होते हैं, जिनको निम्न बिंदुओं में दर्शाया जा सकता है-

1. सार्वजनिक उपक्रमों में जिस धन का निवेश किया जाता है, वह जनता का होता है। अतः सार्वजनिक संस्थाओं को जनता के प्रति उत्तरदाई होना आवश्यक है।
2. आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक आधारों पर भी सार्वजनिक उपक्रमों का उत्तरदाई होना आवश्यक है।
3. सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त शक्तियां प्राप्त होती हैं। इसके बदले में उन्हें अपने कार्यों के प्रति उत्तरदाई होना अनिवार्य होता है।
4. भारत जैसे विकासशील देशों में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना सरकार की नीति के साधन के रूप में की गई है। इस प्रकार उत्तरदायित्व को अन्य रूप में बदला नहीं जा सकता है।
5. सार्वजनिक उपक्रमों को पर्याप्त प्रेरणा उपलब्ध होती है, ताकि वे सभी जोखिमों से बचते हुए एक इकाई के रूप में कार्य कर सकें।

सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना विभिन्न उद्देश्यों को लेकर की जाती है, कुछ विशिष्ट होते हैं और कुछ सामान्य। नियंत्रण तथा उत्तरदायित्व का उद्देश्य यह देखना होता है कि जो लक्ष्य निश्चित किए जा चुके हैं वह उचित ढंग से तथा जनहित में पूरे किए जा रहे हैं या नहीं।

11.4.5 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने की पद्धतियां

सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए बाहरी एवं आंतरिक पद्धतियों को अपनाया जा सकता है। बाहरी नियंत्रण के तौर पर सरकार सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वतंत्रता से संबंधित विभिन्न अधिनियमों के पहलुओं को स्पष्ट करती है। सरकार अपने समझौता ज्ञापन में कीमत, निवेश एवं लाभदेयता के क्षेत्र में सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता की सीमा को इंगित करती है। सरकार द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वे सार्वजनिक उपक्रमों के दिन प्रतिदिन के मामलों में, जिनमें वित्तीय मामले भी शामिल होते हैं, हस्तक्षेप ना करने का प्रयास करती है। आंतरिक रुप से सार्वजनिक उपक्रम वित्तीय शक्तियों के विकेंद्रीकरण एवं प्रत्यायोजन को विभिन्न स्तरों पर लागू करके इस स्वायत्तता को सुनिश्चित करते हैं। कई सार्वजनिक उपक्रमों में समूह बैठक बुलाने की परंपरा का अनुसरण किया जाता है। इन बैठकों को संचार बैठकों के नाम से भी पुकारा

जाता है। इन बैठकों में सभी विभागाध्यक्ष को आमंत्रित किया जाता है। कर्मचारियों के प्रतिनिधि भी बुलाए जाते हैं। उसके बाद समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है तथा इन बैठकों में ही निर्णय ले लिए जाते हैं। यह माध्यम अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अधिक मात्रा में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। वित्तीय उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने के तरीकों को व्यापक रूप में दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- सांगठनिक प्रणालियां और बाहरी प्रणालियां।

सांगठनिक प्रणालियां कुछ ऐसी प्रणालियों के रूप में उभर कर सामने आ सकती है जो सार्वजनिक उपक्रमों को मेनका बेहतर वित्तीय हिसाब किताब देने के योग्य बना सकती है। बाहरी माध्यम या प्रणालियां सार्वजनिक उपक्रम के स्वायत्त संगठन का परिणाम हो सकते हैं, जो कि यह सुनिश्चित करें कि प्रबंधक जिनकी संपत्ति नहीं है, संसद के प्रति उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार करते हैं। सांगठनिक तौर पर वित्तीय जवाबदेही के कुछ साधन होते हैं, जैसे- सुस्पष्ट वित्तीय प्रक्रियाएं, कार्य कुशल आंतरिक लेखा जांच, निजी जांचकर्ताओं द्वारा व्यवसायिक लेखों की जांच, उपक्रम का सही आंतरिक संगठन, सरकार द्वारा अथवा सरकार की स्वीकृति द्वारा उपक्रम के वित्तीय सलाहकार की नियुक्ति, सरकारी नियंत्रण सार्वजनिक उपक्रमों के महा निदेशक मंडल के माध्यम से लागू किया जाता है। मुख्य कार्यकारी अधिकारी एवं पूर्णकालिक निदेशक सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। ज्यादातर उपक्रमों में निदेशक मंडल में सरकारी प्रतिनिधि मनोनीत निदेशकों के रूप में उपस्थित होते हैं। वह संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय अथवा वित्त मंत्रालय से होते हैं तथा मंडल में पदेन अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं। कुछ निश्चित वित्तीय मामलों को संघ अधिनियम अथवा सार्वजनिक उपक्रमों को शासित करने वाले अधिनियम के अंतर्गत, सरकारी स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखा जाना भी एक माध्यम होता है। सार्वजनिक उपक्रमों की महालेखा नियंत्रक परीक्षक द्वारा जांच भी वित्तीय जवाब देता का एक साधन ही माना जाता है। सार्वजनिक उपक्रमों में दोहरी लेखा जांच की व्यवस्था पाई जाती है। पहली तो सार्वजनिक उपक्रमों के खातों की लेखा जांच उपक्रम के वैधानिक लेखकों द्वारा की जाती है और फिर इसके निदेशक मंडल के द्वारा अनुमोदित हो जाने के बाद महालेखा नियंत्रक परीक्षक के द्वारा भी पूरक लेखा जांच की जाती है।

11.4.6 सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं जवाबदेही की वर्तमान स्थिति

सार्वजनिक उपक्रमों की वित्तीय स्वायत्तता का विषय केवल चर्चा मात्र का ही विषय है। सार्वजनिक उपक्रमों पर संसद और प्रशासनिक मंत्रालय अपने आदेशों के द्वारा अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगाते हैं। मंत्री सदैव इन सार्वजनिक उपक्रमों को कुछ ना कुछ औपचारिक निर्देश देता रहता है, क्योंकि उसे ऐसा अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा भी सरकार का सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा निर्धारित की जाने वाली लागतो और कीमतों के संदर्भ में भी हस्तक्षेप करने का आरोप लगता रहता है। संसद का इन सार्वजनिक उपक्रमों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण विद्यमान रहता है। सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा कुछ निश्चित प्रकार के निवेश किए जाने से पूर्व संसद द्वारा पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होता है और साथ ही इन उपक्रमों को समय-समय पर संसद के समक्ष अपने कुछ प्रतिवेदन भी प्रस्तुत करने होते हैं। यद्यपि यह नियम नई सेवाओं के लिए लागू होता है, अर्थात ऐसी गतिविधियां जो पहली बार की जाने वाली है उन्हीं पर यह लागू होता है। संसद बजट विवाद एवं प्रश्नकाल के दौरान ही सार्वजनिक उपक्रमों से संबंधित वित्तीय मुद्दों पर बहस कर सकती है। संसद की स्थाई समिति,सार्वजनिक उपक्रम समिति, सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय निष्पादन को देखने के लिए गठित की गई है। यह समिति सार्वजनिक उपक्रमों को अपनी वित्तीय मामलों के संबंध में एक उचित परिप्रेक्ष्य निरंतर आधार पर विकसित करने में मदद प्रदान करती है। सार्वजनिक उपक्रम पर सरकारी नियंत्रण वित्तीय जवाबदेही को एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया बना देता है। सार्वजनिक उपक्रमों के वित्तीय पहलुओं पर अनेक प्रतिवेदन और विवरण मासिक, त्रैमासिक एवं वार्षिक प्रकृति के होते हैं। इन उपक्रमों द्वारा यदि किसी भी प्रकार की हानि उठानी पड़ती है तो ऐसी स्थिति में इन्हें अपना राजस्व बजट भी प्रशासनिक मंत्रालय से स्वीकृत

कराना पड़ता है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक इन उपक्रमों के लिए न केवल वित्तीय बल की कार्य क्षमता एवं और सत्यता की जांच भी करते हैं। वार्षिक प्रतिवेदन इन उपक्रमों को निजी क्षेत्र में इनके सम रूपों की तुलना में प्रतिकूल स्थिति में रख देता है।

11.5 निष्कर्ष

प्रजातांत्रिक व्यवस्था में वित्तीय नियंत्रण एक महत्वपूर्ण तथ्य है। परंतु सार्वजनिक उपक्रमों के संबंध में यह नियंत्रण स्वायत्तता और उत्तरदायित्व के उचित समीकरण के आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। इन संस्थाओं पर स्थापित किए जाने वाला नियंत्रण इतना कठोर नहीं होना चाहिए कि वह इन की स्वायत्तता को हानि पहुंचा। यदि यह संस्थाएं स्वायत्त नहीं होंगी तो इनसे सफलतापूर्वक कार्य संचालन और उद्देश्य प्राप्ति की कल्पना करना बेईमानी होगा। इस संदर्भ में यह बात भी सत्य है किन सार्वजनिक उपक्रमों को जितनी भी वित्तीय स्वायत्तता प्रदान की गई है उसका इन उपक्रमों द्वारा उचित उपयोग नहीं किया गया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की और चेतना के संदर्भ में किन्ही दो तर्कों को प्रस्तुत कीजिए।
2. सार्वजनिक उपक्रमों की किन्ही दो समस्याओं को इंगित कीजिए।
3. सार्वजनिक उपक्रमों के नियंत्रण और उत्तरदायित्व का कार्य किसे सौंपा गया है?
4. सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता से क्या अभिप्राय है?
5. सार्वजनिक उपक्रमों पर वित्तीय नियंत्रण स्थापित करने वाली किन्हीं दो संस्थाओं के नाम बताइए।

11.6 सारांश

सार्वजनिक उपक्रमों के सफल संचालन हेतु वित्तीय स्वायत्तता की अत्यधिक आवश्यकता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया जाए। सार्वजनिक उपक्रमों को यदि सफल बनाना है तो उसके लिए उन्हें पर्याप्त वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने की आवश्यकता है। इन उपक्रमों को सरकार द्वारा जो स्वायत्तता प्रदान की जाए, उसका इन उपक्रमों के द्वारा संगठन के भीतर भी अनुपालन किया जाना चाहिए। अर्थात उपक्रम में काम करने वाले विभिन्न कर्मचारियों या प्रशासनिक स्तरों को भी पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए। सार्वजनिक उपक्रमों का उत्तरदायित्व निश्चित करने के साथ-साथ उन पर नियंत्रण की भी एक समुचित व्यवस्था किए जाने की आवश्यकता है।

11.7 शब्दावली

लाभांश- लाभ का वह भाग जो सरकार अथवा किसी व्यक्ति के द्वारा उस कंपनी के अंश धारी के रूप में प्राप्त किया जाता हैI

संघ की धाराएं- यह उन शर्तों का उल्लेख करती है जिस पर अंशधारी इस बात के लिए सहमत होते हैं कि कंपनी का व्यापार किस प्रकार से चलाया जाए।

नियमावली- प्रपत्र, जिसमें विभिन्न गतिविधियों को चलाने हेतु प्रक्रियाओं का विस्तृत विवरण होता है।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सरकार का नियंत्रण और समाजवादी समाज की स्थापना, **2.** परियोजना संबंधी समस्याएं, संस्थागत समस्याएं, **3.** संसद को, **4.** मर्यादित एवं विशिष्ट सीमाओं के भीतर रहकर अपने तरीके से कार्य करने की स्वतंत्रता, **5.** संसद और सरकार

11.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अवस्थी एवं अवस्थी,2016, भारतीय प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
2. अवस्थी एवं अवस्थी,2014, भारत में लोक प्रशासन; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. कटारिया, सुरेंद्र, 2009भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
2. लेखी, आर. के, 2009 लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सार्वजनिक उपक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना कीजिए।
2. सार्वजनिक उपक्रमों की स्वायत्तता तथा उत्तरदायित्व की समस्या पर एक निबंध लिखिए।
3. सार्वजनिक उपक्रमों में वित्तीय स्वायत्तता एवं उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने की पद्धतियों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 12 शहरी शासन का वित्तीय प्रशासन

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 स्थानीय शासन का अर्थ
12.2.1 नगरीय/शहरी स्थानीय संस्थाएं
12.2.2 नगरीय शासन की विशेषताएं
12.3 स्थानीय वित्त
12.3.1 आर्थिक विकास में स्थानीय वित्त की भूमिका
12.3.2 स्थानीय वित्त के सिद्धांत
12.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन
12.4.1आय के स्रोत
12.4.1.1 करों से आय
12.4.1.2 करों के अतिरिक्त आय
12.4.2 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का बजट
12.4.3 लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण
12.5 निष्कर्ष
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

जिस प्रकार राज्य तथा संघ का संबंध है, ठीक उसी प्रकार से राज्य तथा अन्य संस्थाओं के बीच भी संबंध है। स्थानीय संस्थाओं तथा राज्यों के बीच भी साधनों का अलग-अलग बंटवारा कर दिया गया है, जो अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से अपने संसाधनों का संग्रह करते हैं। जिस प्रकार की समस्याएं केंद्र और राज्यों के बीच जन्म लेती हैं, ठीक उसी प्रकार की समस्याएं राज्य तथा स्थानीय संस्थाओं के बीच भी जन्म लेती है। अंतर सिर्फ इतना है कि स्थानीय संस्थाओं का आकार और व्यय का रूप तथा व्यय की तीव्रता राज्यों से कम होती है। संघ और राज्यों के बीच की जो प्रवृत्ति है वही प्रवृत्ति है। कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उद्देश्य अपने नागरिकों को अधिकतम सामाजिक लाभ प्रदान करना है। यही उद्देश्य स्थानीय संस्थाओं का भी है। प्रस्तुत अध्याय में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन के संदर्भ में विस्तार से विवेचना करेंगे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- स्थानीय शासन का अर्थ, नगरीय स्थानीय शासन संस्थाओं का अर्थ तथा उनकी विशेषताओं के बारे में विस्तार से जान पाएंगे।
- स्थानीय वित्त, आर्थिक विकास में उसकी भूमिका एवं स्थानीय नृत्य के विभिन्न सिद्धांतों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- नगरीय स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तार से जान पाएंगे।

12.2 स्थानीय शासन का अर्थ

शहरी शासन के वित्तीय प्रशासन को जानने से पहले आवश्यक है की यह समझा जाए की इन शहरी संस्थाओं का अस्तित्व कहां से आया? तथा यह शासन केंद्रीय और राज्य सरकारों के शासन से किस प्रकार से भिन्न है?

जैसा कि आप जानते हैं सभी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता यह होती है कि इनमें जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन की नीतियों, कानूनों और नीतियों में अपनी भूमिका निभाती है। जनता की यह भूमिका कई स्तरों पर हो सकती है। भारत में केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सरकार (पंचायती राज तथा नगरीय संस्थाएं) शासन के तीन स्तर हैं। जिन देशों में संघीय शासन व्यवस्था ना होकर केवल एकात्मक शासन है (जैसे- ब्रिटेन, फ्रांस), वहां केंद्र सरकार के बाद शासन का दूसरा स्तर ग्रामीण तथा नगरीय सरकारों में बांटा रहता है। प्रायः विश्व के सभी देशों में स्थानीय सरकारें दो स्वरूपों, जैसे, ग्रामीण और नगरीय सरकारों की बंटी रहती है। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि स्थानीय शासन, स्थानीय प्रशासन, स्थानीय संस्थाएं तथा स्थानीय स्वशासन चार ऐसे शब्द है जो समानार्थी ना होते हुए भी पर्यायवाची शब्दों के रूप में इस्तेमाल किए जाने लगे हैं। स्थानीय शासन से तात्पर्य उन नगरीय तथा ग्रामीण संस्थाओं से है जो जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित होती है। वास्तव में यह 'स्थानीय स्वशासन' है। भारत के संविधान में 'स्थानीय शासन' शब्द प्रयुक्त किया गया है।भारत में स्थानीय संस्थाएं दो स्वरूपों में विभक्त की जा सकती हैं- नगरीय तथा ग्रामीण।

शहरों या नगरों में स्थानीय संस्थाओं की उच्च निम्न श्रेणियां अथवा इनका पदसोपान नहीं होता है, बल्कि अधिकार शहरों में आवश्यकतानुसार एक या कई प्रकार की नगरी संस्थाएं होती है। जबकि दूसरी तरफ ग्रामीण क्षेत्रों की पंचायती राज संस्थाओं में क्रमशः उच्च, मध्य तथा निम्न स्तरीय संस्थाएं बनी हुई हैं जो अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं। प्राय छोटे नगरों में एक ही प्रकार की नगरी संस्था होती है, जबकि बड़े नगरों, जैसे- दिल्ली में दिल्ली नगर निगम, नई दिल्ली नगरपालिका, दिल्ली छावनी बोर्ड तथा दिल्ली विकास प्राधिकरण कार्यरत हैं जो अपने अपने निर्धारित क्षेत्र में कार्य निष्पादित करते हैं।

12.2.1 नगरीय/शहरी स्थानीय संस्थाएं

मानव सभ्यता के विकास को प्रमाणित करने वाली सिंधु घाटी, दजला-फरात, मेसोपोटामिया, चीन तथा मिस्र की प्राचीन सभ्यताएं इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि मानव सभ्यता के आरंभिक चरण में नदियों के किनारे शहरी बस्ती के रूप में रहना अधिक पसंद किया था। इन नगरों में शासन करने वाले राजा को नगर की दैनिक समस्याओं से मुक्त रखने तथा साथ ही नगर के प्रशासन को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए, स्थानीय संस्थाएं या नगरपालिकाएं कार्यरत होती थीं। मेगस्थनीज की 'इंडिका' वे इस बात का वर्णन मिलता है कि तत्कालीन मौर्य वंश के शासन के दौरान पाटलिपुत्र में नगर कोतवाल, अन्य अधिकारियों तथा समितियों द्वारा स्थानीय प्रशासन का संचालन होता थाI प्राचीन भारत में 'समिति' तथा 'सभा' नामक संस्थाएं कई राजाओं के शासनकाल में कार्य करती रही। ऐसी ही व्यवस्था प्राचीन रोम में भी थी।

स्वतंत्रता के उपरांत भारत के संदर्भ में,1961की जनगणना रिपोर्ट में उन स्थानों को नगरीय क्षेत्र परिभाषित किया गया है जहां- एक स्थानीय प्राधिकरण तथा नगर पालिका, अधिसूचित क्षेत्र समिति हो, तथा अन्य सभी स्थान जिनकी जनसंख्या कम से कम 5,000 हो, जिनमें पुरुष जनसंख्या का कम से कम 75 प्रतिशत गैर-कृषि कार्यों में लगा हुआ हो तथा प्रतिवर्ग किलोमीटर जनसंख्या घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति हों।

"उपयुक्त मापदंड के अतिरिक्त राज्य सरकार किसी स्थान को नगरीय क्षेत्र घोषित कर सकती है। यदि नगरीय चिन्ह विशिष्ट तौर पर तथा सुविधाएं विद्यमान हों; जैसे- नए स्थापित औद्योगिक क्षेत्र, विशाल आवासीय बस्तियां तथा पर्यटन महत्व के स्थान।"

आधुनिक प्रकृति की नगरी संस्थाओं का उदय ब्रिटिश काल में प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम 1687 में अंग्रेजों ने मद्रास नगर निगम की स्थापना की। महानगर निगमों की स्थापना चार्टर एक्ट के अधीन 1793 में मद्रास, कोलकाता तथा बम्बई में की गई थी। भारत में सन 1882 में लॉर्ड रिपन के द्वारा स्थानीय स्वशासन के विकास में रुचि लेने तथा गंभीर प्रयासों के कारण भारत में स्थानीय स्वशासन का जनक भी माना जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात नगरीकरण की तेज प्रक्रिया, नगरीय समस्याओं में निरंतर वृद्धि तथा कार्यों में अप्रत्याशित बढ़ोतरी के कारण नगरी प्रशासन जटिल और कठिन हो गया है। स्वतंत्रता के बाद नगरी सरकारी न केवल नगरीय सेवाओं एवं सुविधाओं, जैसे- जल आपूर्ति, मल-निकास, कचरा प्रबंधन, यातायात, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, मनोरंजन की व्यवस्था बल्कि राष्ट्रीय एवं प्रांतीय विकास कार्यक्रमों का भी संचालन करती है। अब नगरी सरकार से विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय सहयोग प्राप्त करने की भी आशा की जाती है। नगरीय शासन स्थानीय लोगों के लिए अनिवार्य सेवाएं प्रदान करने के साथ-साथ नगरीय विकास तथा नियोजन का आवश्यक अंग बन गया है। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ मनुष्य की जीवन यापन के लिए आवश्यक न्यूनतम सुविधाओं के संबंध में धारणा बदल गई है। अतः नगरीय शासन का उत्तरदायित्व उन सब सुविधाओं को जिताना है, जो शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को अधिकाधिक अच्छा बनाने के लिए आवश्यक होती हैं। इस प्रकार आजकल लोगों के दैनिक जीवन में नगर शासन का प्रांतीय अथवा केंद्रीय शासन से भी अधिक महत्व है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि भविष्य में नगर शासन के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने की संभावना बढ़ रही है। विलियम ए. रॉब्सन ने उचित ही कहा है, "आज स्थानीय प्राधिकरण को काम करने का पहले से कहीं अधिक सुअवसर उपलब्ध है। यदि केंद्रीय शासन की शक्तियां बढ़ रही हैं तो अन्य निकायों के कार्यों में भी निरंतर वृद्धि हो रही हैं।"

12.2.2 नगरीय शासन की विशेषताएं

नगरी शासन की विशेषताओं को निम्नलिखित बिंदुओं में दर्शाया जा सकता है-

1. नगरीय शासन का स्वरूप संवैधानिक होता है अर्थात अधिनियम द्वारा इनकी रचना की जाती है।
2. नगरीय शासन अपने क्षेत्राधिकार में रहने वाले लोगों पर कर लगाकर वित्त एकत्र करने का अधिकार रखता है।
3. नगरीय शासन को केंद्रीय नियंत्रण से मुक्त रहकर काम करने का अधिकार होता है।
4. नगरीय शासन का स्वरूप एक उद्देश्य ना होकर सामान्य उद्देश्य हुआ करता है।
5. नगरीय शासन का कार्य क्षेत्र एक निर्दिष्ट सीमा तक होता है।
6. नगरीय शासन राज्य सरकार के अधीन होता है, जिसे इसके ऊपर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण का अधिकार प्राप्त होता है।

इस प्रकार नगरीय स्थानीय प्रशासन को अपने क्षेत्र में अपनी विशिष्ट स्वरूप के साथ कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक संपादन करना होता है, जिसके लिए विभिन्न अधिनियमओ के अंतर्गत नगरीय स्थानीय शासन की विभिन्न

संस्थाओं को विधायी, प्रशासकीय, वित्तीय एवं निर्वाचन संबंधी शक्तियां प्रदान की गई हैं। विधायी शक्ति के अंतर्गत नगर निकायों को नियम, उप नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। प्रशासनिक शक्तियों में, अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति, निरीक्षण-परिवीक्षण तथा दंडित करना, दिन प्रतिदिन के प्रशासनिक मामलों पर निर्णय लेना, संविदा की अनुमति देना, करों की वसूली, नियमों का उल्लंघन करने वालों को दंड देना या उनके विरुद्ध कार्यवाही करना आदि अनेक शक्तियां दी गई हैं।

वित्तीय शक्तियों के अंतर्गत करारोपण, फीस वसूल करने, बजट बनाने और धन के व्यय की शक्ति प्राप्त है।

नगरीय स्थानीय स्वशासन से संबंधित संस्थाएं अथवा संगठन अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे- नगर निगम, नगर परिषद व नगर पालिका, नगर पंचायत, कस्बा क्षेत्र समिति, अधिसूचित क्षेत्र समिति, छावनी मंडल, एकल उद्देश्य अभिकरण। 74वें संविधान संशोधन में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के केवल तीन ही प्रकारों- नगर निगम, नगर परिषद तथा नगर पंचायत का वर्णन किया गया है।

नगरीकरण की तेज प्रक्रिया, नगरीय समस्याओं में निरंतर वृद्धि तथा कार्यों में अप्रत्याशित बढ़ोतरी के कारण नगरीय शासन जटिल और कठिन हो गया है।

12.3 स्थानीय वित्त

संघ तथा राज्यों के वित्त की जो प्रवृत्ति है वही प्रवृत्ति स्थानीय वित्त की भी है। पिछले अध्यायों के अध्ययन के आधार पर आप इस बात को तो समझ ही गए होंगे कि कल्याणकारी राज्य का मुख्य उद्देश्य अपने नागरिकों को अधिकतम सामाजिक लाभ प्रदान करना होता है। यही उद्देश्य स्थानीय संस्थाओं का भी है। स्थानीय संस्थाओं का कार्यक्षेत्र भले ही अपने स्थानीय क्षेत्र तक सीमित हो, परंतु उनके दायित्व बहुत अधिक होते हैं। लोग स्थानीय संस्थाओं से तुरंत व पर्याप्त प्रतिपल की आशा करते हैं। यह संस्थाएं आज प्रजातंत्र का मुख्य आधार बन गई है। यह राजनीतिक चेतना को जागृत करने तथा प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था के संचालन का केंद्र बनती जा रही है। श्री जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि, ''स्थानीय प्रशासन प्रजातंत्र की प्रकृति का सच्चा आधार है। हमें ऐसी आदत पड़ गई है कि प्रजातंत्र के बारे में सदैव सबसे ऊपर के स्तर पर सोचते हैं, नीचे के स्तर के बारे में नहीं। ऊपरी स्तर पर प्रजातंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता है, जब तक कि यह नीचे से सुधरी पर आधारित ना हो।''

12.3.1 आर्थिक विकास में स्थानीय वित्त की भूमिका

स्थानीय संस्थाओं के विषय में, राजनीतिक दृष्टिकोण से, यह काफी पहले से ही स्वीकार किया गया है कि उनका महत्व इस बात को लेकर है कि वे प्रजातंत्र के पनपने के लिए शिक्षा प्रदान करती है। मतदाताओं को यह शिक्षा मिलती है कि आसानी से समझ में आने वाले स्थानीय विषयों पर किस प्रकार मत दिया जाए। इससे उत्तरदायित्व पूर्ण नेतृत्व का विकास होता है, लेकिन आर्थिक विकास के परिपेक्ष्य में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका की बात द्वितीय विश्वयुद्ध काल से ही की जाती रही है इसलिए इसे एक नया विकास कहा जाता है।

वित्त के क्षेत्र में स्थानीय संस्थाओं की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण है। स्थानीय संस्थाओं को स्वायत्तता तथा उत्तर दायित्व मिलने पर इस बात की संभावना बढ़ जाती है कि स्थानीय साधनों के माध्यम से होने वाले विनियोग के परिमाण बढ़ जाएंगे। दूसरी बात यह है कि स्थानीय लोक निर्माण कार्यों के लिए अनिवार्य श्रम सेवा में वृद्धि होगी। इस बात के प्रमाण यह है कि स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए गए कार्य ना केवल कल्याणकारी रहे हैं, बल्कि उत्पत्ति में वृद्धि करने वाले भी। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि तीव्र आर्थिक विकास से अतिरिक्त आय की सृष्टि होती है। इस आय के एक हिस्से का संग्रह स्थानीय संस्थाओं द्वारा होना चाहिए, अन्यथा मुद्रास्फीति में वृद्धि होगी या भुगतान शेष का असंतुलन काफी बढ़ जाएगा। अल्प विकसित देशों में राजकोषीय नीति द्वारा यह कार्य संभव नहीं है। इसका कारण यह है कि इन देशों में प्रत्यक्ष कर से अनेक प्रकार की आय को छूट मिलती है।

साथ ही बड़ी मात्रा में करों की चोरी होती है। परोक्ष करो का प्रभाव सभी वर्ग के लोगों पर पड़ता है तथा इनका भार प्रतिगामी हो सकता है, जिससे धनी वर्ग पर कर का अपेक्षाकृत कम भार पड़ता है। ऐसे लोगों पर स्थानीय कर प्रभावी ढंग से लगाया जा सकता है।

विकासशील देशों में नगरीय क्षेत्रों के विस्तार के कारण स्थानीय व्यक्ति के महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। शासकीय नगरों के विकास के कारण स्थानीय संस्थाओं की समस्याएं भी बढ़ गई हैं। जहां पहले कोई शहर नहीं था वहां नगरों की स्थापना की जा रही है। इन नगरों में गंदी बस्तियां भी बढ़ती जा रही है जहां स्थानीय सेवाओं का स्तर अत्यधिक निम्न हैं।

12.3.2 स्थानीय वित्त के सिद्धांत

स्थानीय वित्त के कुछ सिद्धांत होते हैं जिनका वर्णन निम्नानुसार है-

1. **अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धांत-** स्थानीय वित्त की समस्याएं राष्ट्रीय वित्त के समान होने के कारण स्थानीय वित्त व्यवस्था का उद्देश्य भी अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना है। स्थानीय संस्थाओं का हमेशा से यही उद्देश्य रहा है कि वह अपने सीमित साधनों के बावजूद लोगों को अधिक से अधिक सुख सुविधाएं प्रदान करना चाहती हैं। यह संस्थाएं प्रायः ऐसी मदों पर व्यय करती हैं, जिनका लाभ जनसामान्य को मिले,विशेषकर निर्धनों के स्तर को ऊंचा उठाने के हर संभव प्रयत्न किए जाते हैं।
2. **लाभ का सिद्धांत-** स्थानीय संस्थाओं के द्वारा लाभ के सिद्धांतों को अधिक महत्व दिया जाता है। इन संस्थाओं को जो राशि प्राप्त होती है, उस राशि को तुरंत लोगों के हितार्थ खर्च कर देती है। स्थानीय वित्त व्यवस्था " जैसे को तैसा" किस सिद्धांत पर चलती है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ऐसा संभव नहीं होता है। इस संदर्भ में डॉक्टर मिश्रा का कहना है कि, "स्थानीय वित्त राष्ट्रीय वित्त से भिन्न है। स्थानीय वित्त की धारणा मौलिक है। यद्यपि सरकार का कर लगाने का उद्देश्य प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से करदाताओं को उचित सेवाएं प्रदान करना होता है, तो भी एक व्यक्ति के मामले में अदा किए हुए कर तथा प्राप्त किए गए लाभ के बीच कोई संबंध नहीं होता है। स्थानीय करारोपण में कुछ दशकों में प्राप्त किए गए लाभ को नापना तथा उसका अदा किए गए कर से सह संबंध स्थापित करना संभव होता है।" स्थानीय वित्त का कार्य क्षेत्र सीमित है, इसलिए करदाता को कर से प्राप्त होने वाला लाभ तुरंत मिल जाता है। उदाहरण के लिए, करदाता अपनी नगरपालिका को कर देता है और नगर पालिका उत्तर दाता को प्रतिदिन सफाई, पानी व रोशनी की सुविधा प्रदान करती है, जो कर के भुगतान के बदले उसे प्राप्त होता है।
3. **योग्यता का सिद्धांत-** अर्थशास्त्रियों का मत है कि लाभ का सिद्धांत स्थानीय वित्त में पाया जाता है, जबकि योग्यता का सिद्धांत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में होता है। परंतु कैनन जैसे अर्थशास्त्रियों ने स्थानीय वित्त में योग्यता के सिद्धांत को लागू करने के लिए कहा है। उनका मत है कि किसी स्थान के निवासियों के द्वारा वहां की स्थानीय संस्थाओं को अपनी योग्यता अनुसार कर का भुगतान करना चाहिए; इसलिए स्थानीय संस्थाओं के द्वारा जो कर लगाए जाते हों वे करदान-योग्यता के अनुसार होने चाहिए।
4. **उपयोगी एवं कष्ट कारक सेवाएं-** स्थानीय संस्थाओं के द्वारा कर से प्राप्त आय को व्यय करने के बाद करदाता को करो के त्याग की तुलना में लाभ अधिक मिलता है, तो ऐसी दशा में उनको हम उपयोगी सेवा कहेंगे। यदि व्यय से मिलने वाली उपयोगिता कर भार से कम है तो यह सेवाएं कष्ट कारक कही जाएंगी।

12.4 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

सामान्य तौर पर बजट आय और व्यय दोनों का पूर्वानुमान होता है। इसी संदर्भ में यदि किसी भी नगरीय स्थानीय शासन की इकाई के वित्तीय प्रशासन को जानना हो तो एकीकृत रूप से उसके बजट के अवलोकन के द्वारा उसको समझा जा सकता है। स्थानीय कार्यों के वित्तीय प्रशासन को स्पष्ट रूप से समझने के लिए इस पूरे अध्ययन को तीन भागों में विभक्त करके भली भांति समझा जा सकता है- आय के स्त्रोत, बजट का निर्माण और उसमें व्यय की विभिन्न मदें, तथा लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण।

12.4.1 आय के स्त्रोत

भारत के संविधान के द्वारा करारोपण की शक्तियों का विभाजन केंद्रीय सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारों के मध्य विभाजित किया गया है। इस विवरण में ऐसे करो का उल्लेख नहीं है जो अन्य रूप से स्थानीय शासन के लिए ही हो। स्थानीय शासन अपनी वित्त व्यवस्था का संचालन राज्य सरकार की सहायता से तथा उसके द्वारा निर्धारित की गई सीमा के अंतर्गत ही करता है। इस प्रकार स्थानीय शासन को प्रभुत्वहीन करके उसे संबंधित राज्य सरकार का एक निकाय या इकाई मात्र बना दिया गया है। राज्य सरकारें स्वयं भी राज्य सूची में वर्णित विषय पर ही कर लगाने हेतु स्वतंत्र होती है। इस प्रकार से राज्य सरकार का स्वयं का वित्तीय क्षेत्र सीमित होने के कारण राज्य की यह नगरीय सरकारें भी वित्त की कमी से प्रभावित होती है।

स्वतंत्रता के पश्चात देश के विकास की सबसे मुख्य समस्या ही शहरीकरण की है। चेहरों के बढ़ते हुए आकार और उन पर जनसंख्या के दबाव ने स्थानीय संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले कार्य और उनकी महत्ता को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया है। यही कारण है कि स्थानीय संस्थाओं को अपनी प्रतिष्ठा बचाने एवं अपने उत्तरदायित्व के कुशलता पूर्वक संचालन के लिए बहुत अधिक साधन जुटाने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है।

नगरीय स्थानीय शासन की इकाइयों के आय के साधनों को भी आगे विभिन्न क्षेत्रों के अंतर्गत विभाजित करके देखा जा सकता है जो कुछ इस प्रकार से हैं- करों से आय तथा करों से अतिरिक्त आय।

12.4.1.1 करों से आय

स्थानीय शासन द्वारा लगाए जाने वाले पर ही उनकी आय का मुख्य स्रोत होते हैं। स्थानीय संस्थाओं की आय का यह स्त्रोत स्थानीय शासन की राज्य सरकार पर निर्भरता को कम करता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो यह स्थानीय संस्थाएं अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व खोकर राज्य सरकार के एक विभाग मात्र बनकर रह जाएंगी। जिस संस्था के पास करारोपण की शक्तियां अधिक होती है, वह संस्था राजनीतिक दृष्टि से उतनी ही अधिक स्वायत्तता का उपयोग करती है। भारत में नगरीय संस्थाओं द्वारा आरोपित किए जाने वाले करो में कोई एकरूपता दिखाई नहीं देती है। इसके पीछे कुछ कारण हैं- पहला कारण तो यह है कि नगरीय स्थानीय शासन की इकाइयां राज्य सरकारों के नियंत्रण में होती है, अतः सभी राज्य सरकारें इस संबंध में अलग-अलग प्रकार से निर्णय लेती है। दूसरा कारण यह है कि नगरों में पाई जाने वाली इन संस्थाओं की प्रकृति भी एक जैसी नहीं होती है। कहीं पर नगर निगम होता है तो कहीं नगर परिषद और कहीं कहीं अन्य प्रकार की संस्थाएं पाई जाती है। इस प्रकार विभिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न प्रकार की इन नगरी संस्थाओं द्वारा लगाए जाने वाले करों में असमानता दिखाई पड़ती है।

स्वतंत्र भारत में निरंतर यह मांग की जाती रही है कि नगरीय संस्थाओं के लिए वित्त की व्यवस्था संविधान के द्वारा ही कर दी जानी चाहिए। जिस प्रकार संविधान द्वारा आय के संसाधनों का केंद्र एवं राज्य सरकारों के बीच विभाजन किया गया है, ठीक उसी प्रकार स्थानीय संस्थाओं के लिए भी संविधान में समुचित अनुमोदन के माध्यम से यह व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अभाव में आज यह स्थानीय संस्थाएं आज राज्यों पर पूर्ण रूप से निर्भर है।

वर्ष 1953-54 के कर जांच आयोग के अनुसार, नगर पालिकाओं की आय का मुख्य स्रोत कर ही था और इससे उन्हें औसतन 63.2 प्रतिशत आय मिली। नगरीय स्थानीय संस्थाओं के द्वारा जो कर आरोपित किए जाते हैं उन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- अनिवार्य कर और विवेकाधीन कर

1. **अनिवार्य कर**- विभिन्न प्रकार के करों की श्रेणी में आने वाले करों के बारे में विस्तृत रूप में जाने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि, स्थानीय शासन राज्य सूची का एक विषय है अर्थात विभिन्न राज्यों में स्थानीय शासन की प्रकृति किस प्रकार की होगी और किस प्रकार के करों को किस श्रेणी में दिया जाएगा यह बात संबंधित राज्य सरकारों पर ही निर्भर करती हैI यही कारण है कि 74 वे संवैधानिक संशोधन अधिनियम के द्वारा की गई व्यवस्थाओं के अतिरिक्त बहुत सारे ऐसे विषय हैं जो राज्य सरकारों की इच्छा पर निर्भर करते हैंI नगरीय स्थानीय संस्थाओं को प्रदान किए जाने वाले कर एवं उनकी प्रकृति भी विभिन्न राज्य सरकारों की इच्छा पर ही निर्भर करती हैI अतः पूरे देश में पाई जाने वाली विभिन्न नगरीय स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन भी अलग-अलग प्रकार का होता हैI परंतु फिर भी सामान्य तौर पर विभिन्न नगर पालिकाओं के द्वारा जो कर लगाए जाते हैं उनमें से प्रमुख कर कुछ इस प्रकार से हैं-

- संपत्ति पर कर; खाली भूमि सहित भवन एवं भूमि पर कर, सामान्य दर तथा सेवा कर, संपत्ति के हस्तांतरण पर कर।
- वस्तुओं पर कर; चुंगी तथा सीमा कर।
- व्यक्ति कर; पेशे, व्यापार,रोज़गार पर कर, संपत्ति पर कर, यात्री कर तथा तीर्थ कर।
- वाहन तथा जानवर पर परI
- थिएटर कर।

उपरोक्त वर्णित करों के अतिरिक्त कुछ राज्यों में नगर पालिकाओं को राज्य के मनोरंजन करते प्राप्त राजस्व में भी कुछ कितना मिलता है। यद्यपि इस प्रकार के करों के बारे में विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा अपने अधिनियम में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के लिए अनिवार्य कर निर्धारित कर दिए जाते हैं, किंतु असल में यह नगरीय स्थानीय संस्थाएं इन कारों का आरोपण नहीं कर सकती। ऐसा इसलिए, क्योंकि इनको लगाने की शक्ति राज्य सरकार में निहित होती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि इन करों का आरोपण राज्य सरकार के द्वारा किया जाता है और इनकी उगाही या एकत्रीकरण नगरीय स्थानीय संस्थाओं के द्वारा किया जाता है। इन करों की दर तथा करारोपण की तिथि का निर्धारण भी राज्य सरकार द्वारा ही किया जाता हैI अधिनियम में उल्लेखित अनिवार्य कर अनिवार्य की हो ऐसा जरूरी नहीं होता है।

वर्षों से पूर्ववर्ती संपत्ति कर, जिसे नगरीय निकायों में ग्रहकर के नाम से भी आरोपित किया जा रहा था, विभिन्न कारणों से आलोचना का विषय बना हुआ था। राजस्थान सहित विभिन्न राज्यों की लोकप्रिय सरकारों ने इस कर को या तो समाप्त करने का वादा जनता से कर दिया था या उसे समाप्त की घोषित कर दिया थाI विभिन्न राज्यों में, आरोपित होने के बावजूद यह कर पूरी तरह वसूल भी नहीं किया जा रहा था। इसी संदर्भ में यदि उदाहरण देखा जाए तो राजस्थान सरकार का देखा जा सकता है, जिसने समस्त विसंगतियों एवं आलोचनाओं को दूर करते हुए, अपनी एक अधिसूचना के माध्यम से नया कर लगा दिया और उसके लिए प्रथक से नियम भी जारी कर दिए। इन नियमों में यह कहा गया कि नगरीय विकास कर किसी भी नगरीय निकाय क्षेत्र में राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर जारी की गई अधिसूचना में निर्देश और तारीख से वार्ड के अनुसार ग्रहण किया जाएगा।

2. **विवेकाधीन कर**- संपूर्ण देश की विभिन्न स्थानीय संस्थाएं अपनी संबंधित राज्य सरकार के किन्हीं सामान्य या विशिष्ट आदेशों के अधीन कुछ विवेकाधीन करो का आरोपण भी कर सकती है। जैसे- नगरपालिका के भीतर चलाए जाने वाले यानों पर कर, रोशनी पर कर, सभाओं पर कर, अग्नि कर, स्टांप शुल्क पर कर, तीर्थ यात्रियों और पर्यटकों पर कर, विज्ञापन के लिए होर्डिंग लगाने या किसी अन्य संरचना निर्मित करने हेतु उपयोग में ली गई भूमिया भवन पर कर आदि। क्योंकि इस प्रकार के सभी कर विवेकाधीन होते हैं। अतः निर्वाचित स्थानीय निकाय मतदाताओं की नाराजगी के डर से इन करों के आरोपण में ज्यादा रुचि नहीं रखती हैं। इस कारण इस प्रकार के विवेकाधीन करो का नगरीय स्थानीय निकायों की आय में योगदान नगण्य होता है। प्रथम राज्य वित्त आयोग ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि विवेकाधीन करों सा नगरीय स्थानीय संस्थाओं की आय में केवल 0.5प्रतिशत योगदान है। इसे बढ़ाने के लिए नगरीय निकायों को चाहिए कि वे इन कारों के दायरे में अधिकाधिक स्थानीय निवासियों को लाए। इसके लिए उन्हें कुछ चुने हुए छात्रों पर कर लगाने चाहिए। जैसे- सफाई की समस्या को दूर करने के लिए उन्हें सब्जी मंडियों, निजी अस्पतालों, डिस्पेंसरीयों, नाई की दुकानों, सड़क किनारे स्थापित रेस्टोरेंट्स, भावों तथा उद्योगों पर सफाई कर लगाया जा सकता है। पार्किंग और होर्डिंग कर भी नगरीय निकायों की आय के अच्छे साधन हो सकते हैं।

12.4.1.2 करों के अतिरिक्त आय

करों के अतिरिक्त आय में फीस,शास्तियाँ, भूमि क्रय विक्रय से आय, संपत्तियों से आय, ऋण तथा सहायता को माना जा सकता हैI अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से करो के अतिरिक्त आय को दो भागों में बांटा जा सकता है- आंतरिक स्रोत और बाहरी स्रोत।

1. **आंतरिक स्रोत**- नगरीय निकायों की आंतरिक आय के कुछ मुख्य स्रोत होते हैं। जैसे- संपत्ति से आय,भूमि के विक्रय से आय, शास्तियाँ फ़ीस, शुल्क जैसे- होटल, रेस्टोरेंट्स, डेयरी, वर्कशॉप फैक्ट्री आदि पर नगरीय निकायों द्वारा लाइसेंस शुल्क लगाया जाता है। इसके अलावा शहर में एकत्र खाद्य सामग्री के बेचने से प्राप्त आय और कहीं-कहीं नगरीय निकाय द्वारा बनाए गए वाणिज्यिक स्थलों के उपयोग से होने वाली आय, आवास गृहों या विश्राम गृहों के किराए की आय, बाजार की मुख्य दुकानों से बाहर या खुले में सड़क पर अस्थाई वस्तुएं बेचने के लिए लगने वाली दुकानों से आए एवं अनेक प्रकार की फ़ीस जिसमें केरोसिन, ईंधन, सब्जियां, लोहा और इसी प्रकार के अन्य वाणिज्यिक कार्यों के लिए दिए जाने वाले लाइसेंस से नगरीय निकायों को आमदनी होती है। इस मद में फीस और जुर्माने से होने वाली आमदनी भी शामिल होती है। उदाहरण के लिए शहर में लगने वाले विज्ञापन पट्टों को बेचने से नगरीय निकायों को आमदनी होती हैI विभिन्न प्रकार के लाइसेंस का नवीनीकरण ना कराने या उस में विलंब होने पर नगरीय निकायों द्वारा उन पर निश्चित दर से जुर्माना आरोपित कर दिया जाता है। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रों में बूचड़खाना को चलाने की अनुमति भी निश्चित फीस लेकर नगरी निकाय भी प्रदान करता है। बड़े किस्म के नगर निकाय कुछ उपयोगी वस्तुओं, जैसे- कुकिंग गैस, विद्युत, दूध वितरण और नगर बस सेवा इत्यादि का कार्य अपने हाथ में ही ले सकते हैं और इस प्रकार इन सुविधाओं के संचालन से यदि कोई बचत होती है तो वह नगरीय निकाय के कोष में आमदनी मानी जाती है।

   अर्थात निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि आमदनी के उपरोक्त स्रोत कुछ ऐसे हैं जो करों से तो भिन्न है, परंतु यह इतने विविध प्रकार के हैं कि प्रत्येक मद में कुछ ना कुछ आमदनी नगर निकाय के कोष का एक महत्वपूर्ण भाग बनती है।

2. **बाहरी स्रोत-** बाहरी स्रोत से आय को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- राज्य सरकार द्वारा आरोपित तथा संग्रहित करो में से हिस्सा; सरकारी अनुदान; तथा ऋण या उधार।

- **राज्य सरकार द्वारा आरोपित तथा संग्रहित करो में से हिस्सा-** ऐसे कर जिन्हें राज्य सरकार आरोपित करती है और राज्य सरकार स्वयं ही एकत्र करती है, उनमें से कुछ भाग राज्य सरकार द्वारा स्थानीय शासन की नगरीय निकायों को दे दिया जाता है। ऐसे करों में प्रायः मनोरंजन कर, वाहन कर और भू-राजस्व को शामिल किया जाता है। मोटर वाहन कर आय के अनुपात में वितरण किया जाता है। इसी प्रकार राज्य सरकार के द्वारा ड्रामा, सर्कस, दौड़ प्रतियोगिता आदि के लिए जो कर संपूर्ण राज्य के लिए लगाया जाता है और उसी के द्वारा एकत्र किया जाता है, उसमें से कुछ राशि स्थानीय निकायों को प्रदान की जाती है। इस मद में राज्य सरकार की आय निरंतर बढ़ रही है। इसीलिए आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु एवं कर्नाटक राज्य में तकनीकी तौर पर इस कर को स्थानीय निकायों को हस्तांतरित कर दिया गया है, लेकिन व्यवहार में यह राज्य दस से साढ़े बारह प्रतिशत राशि नगरीय निकायों को दी जाती हैI परंतु अब स्थिति यह है कि महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा दिल्ली इस कर की संपूर्ण राशि नगरीय निकायों को लौटा देते हैं। आंध्र प्रदेश में यह 90 प्रतिशत लौटया जाता है और शेष राशि राज्य सरकार द्वारा अपने पास रख ली जाती है, ताकि इस कर के एकत्रण में उसका भी जो प्रशासनिक व्यय हुआ है उसकी भरपाई की जा सके।
- **सरकारी अनुदान-** स्थानीय संस्थाओं के बढ़ते हुए व्यय और उसकी तुलना में उन्हें प्राप्त करारोपण की शक्तियों के कम होने के कारण स्थानीय संस्थाओं की राज्य सरकार पर वित्तीय निर्भरता बढ़ी है। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को साकार करने की दिशा में स्थानीय संस्थाओं को राज्य द्वारा ज्यादा से ज्यादा दायित्व दिए जा रहे हैं। अतः इन संस्थाओं को सहायक अनुदान देना राज्य सरकार का एक नैतिक कर्तव्य बन जाता है। इसके अलावा राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं को अनुदान देना, इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि राज्य सरकार के पास सारे प्रमुख वित्तीय स्रोत होते हैं और इस नाते इन्हें स्थानीय संस्थाओं को हर प्रकार से संरक्षण प्रदान करना आवश्यक होता है। राज्य सरकार के द्वारा स्थानीय नगर शासन को अनुदान देने के मूल में मुख्य उद्देश्य स्थानीय निकायों के साधनों में बढ़ोतरी करना है, ताकि वे अपने उत्तरदायित्व को संतोषप्रद रूप से संपन्न कर सकें। हमारे देश में स्थानीय निकायों की यह एक मुख्य विशेषता रही है कि वे वित्तीय कमी से सदैव प्रभावित रहे हैं। इसके अलावा अनियंत्रित शहरी विकास की समस्या को और बढ़ावा दे रहा है। स्थानीय संस्थाओं पर दायित्व अधिक होने के कारण जय अधिक पड़ता जा रहा है और वह घाटे का शिकार हो रही है। राज्य सरकार द्वारा दिया जाने वाला अनुदान हमेशा दर्द एवं उसके विवेकाधीन होता है तथा इस बात पर निर्भर करता है कि सरकारी कोष में धनराशि है या नहीं? स्थानीय निकायों को अनुदान की राशि निरंतर और निश्चित रूप से मिलती रहे और उसके दिए जाने की प्रक्रिया सरल होनी चाहिए।
- **उधार या ऋण-** जैसा कि आप अब तक के अध्ययन से समझ ही गए होंगे कि स्थानीय निकायों के राजस्व स्रोत नगर में विकास की गतिविधियों को संचालित करने के लिए पर्याप्त नहीं होते। यही कारण है कि उधार या ऋण को भी इन नगरीय स्थानीय निकायों के द्वारा अपनी आय के एक साधन के रूप में गिनना पड़ता है। भारत के स्थानीय निकायों द्वारा ऋण लेने की शक्ति का विनियमन केंद्रीय सरकार द्वारा पारित स्थानीय प्राधिकरण ऋण अधिनियम, 1914 द्वारा होता है। कुछ राज्य सरकारों ने भी इस विषय पर अलग से अधिनियम बना लिए हैं, किंतु वह सब केंद्रीय अधिनियम के नमूने पर ही

आधारित है। इस केंद्रीय अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत स्थानीय निकायों को राज्य सरकार या अन्य किसी स्रोत से ऋण लेने की शक्ति कुछ निर्दिष्ट उद्देश्यों के लिए ही की गई है। जैसे- नगर पालिकाओं के निर्माण कार्य के लिए, भूमि के अधिग्रहण हेतु, अभाव, अकाल के समय सहायता कार्यों के संचालन और उनके विनियमन हेतु, किसी महामारी या खतरनाक रोग की रोकथाम के कार्यक्रम हेतु तथा स्थानीय शासन में सुधार, संकटकालीन कार्यों तथा पुराने ऋण के भुगतान हेतु।
इस प्रकार यदि नगरीय निकाय अपने नियमित उसे अपने दायित्वों को पूरा नहीं कर पाता है तो भी उनकी पूर्ति हेतु ऋण भी ले सकते हैं। सभी स्थानीय निकायों को ऋण लेने के लिए राज्य सरकार की अनुमति लेनी होती है। अधिनियम में यह भी प्रावधान किया गया है की ऋण रकम ₹500000 से और उसे वापस अदा करने की अवधि 30 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि इन दिनों में राज्य स्तर पर कोई परिवर्तन करना आवश्यक समझा जाता है तो इसके लिए केंद्रीय सरकार की स्वीकृति लेनी आवश्यक होगी। नगर निगम चूँकि नगरीय स्थानीय शासन के सर्वोच्च एवं अत्यधिक शक्ति प्राप्त निकाय होते हैं। अतः उन्हें उधार लेने के मामले में अधिक स्वतंत्रता मिली होती है। वे अपनी अचल संपत्ति और करों कि जमानत पर ऋण भी जारी कर सकते हैं। भारतवर्ष में स्थानीय निकायों द्वारा ऋण लेने के प्रावधान का अधिक उपयोग इसलिए नहीं किया जा सका, क्योंकि ना तो केंद्रीय सरकार और ना ही राज्य सरकार स्थानीय निकायों को ऋण लेने के मामले में अधिक स्वतंत्रता प्रदान कर सकती है। वस्तुतः उनके द्वारा ऋण लेने की शक्ति को सरकार द्वारा संदेह की दृष्टि से ही देखा जा सकता है। वैसे भी वह केंद्र सरकार और अधिकांश राज्य सरकारें ऋण भार से इतनी दबी हैं कि वे शासन के तीसरे स्तर की संस्थाओं को ऋण लेने के मामले में कोई उधार दृष्टि प्रस्तुत नहीं कर पायी है।

12.4.2 नगरीय स्थानीय संस्थाओं का बजट

जैसा की आपको विदित है कि बजट वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण आयाम माना जाता है। प्रायः सभी नगरीय संस्थाएं अपना बजट तैयार करती है। यह संस्थाएं राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र में अपना बजट तैयार करती है और उसमें केंद्र तथा राज्य सरकार की भांति ही गत वर्ष की वास्तविक आंकड़े, चालू वर्ष के अनुमानित आंकड़े, उपलब्ध वास्तविक आंकड़े एवं आगामी वर्ष के अनुमानित आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं। यह बजट वार्षिक होता है और समूची इकाई का एक ही बजट बनता है। समस्त नगरीय संस्थाएं अपना बजट तैयार करके राज्य सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत करती है। राज्य सरकार के स्वायत्त शासन निदेशालय और उसके बाद स्वायत शासन विभाग द्वारा इस बजट की जांच की जाती है। राज्य सरकार अपनी इस जांच किया बजट परीक्षा में यह सुनिश्चित करती है कि बजट में ऋणों की अदायगी की व्यवस्था की गई है या नहीं, और बजट को उन सिद्धांतों के अनुरूप और उसी तरह बनाया गया है जिस तरह राज्य सरकार में प्रस्तावित किया हुआ है। जिन संस्थाओं पर ऋण का भार कम होता है या भार नहीं होता है वह बजट निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता का उपयोग कर पाती हैं। किंतु जो संस्थाएं ऋणग्रस्त हैं उन्हें राज्य सरकारों के अधिक कठोर नियंत्रण की प्रक्रिया से गुजरना होता है। नगर निगम को बजट निर्माण में अधिक स्वतंत्रता होती है, उन्हें ना तो बजट पर राज्य सरकार की स्वीकृति प्राप्त करनी होती है और ना ही व्यक्ति राशियों के संबंध में राज्य सरकार के आदेशों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

12.4.3 लेखा पालन तथा लेखा परीक्षण

लेखा पालन की प्रक्रिया के माध्यम से ही किसी संस्थान की वित्तीय स्थिति का सटीक आकलन किया जा सकता है और आसानी से यह भी पता लगाया जा सकता है कि उसके द्वारा आरोपित कर कितनी मात्रा में वसूल किए जा

रहे हैं और कितनी मात्रा में बकाया रह गए हैं? यह सभी राज्यों में जिस अधिनियम के अधीन स्थानीय संस्थाओं की संरचना की जाती है उसी अधिनियम में लेखा पालन से संबंधित प्रावधान भी सम्मिलित किए जाते हैं और स्थानीय इकाइयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे लेखा पालन से संबंधित अपने कर्तव्य का निर्वहन पूरी प्रावधानों के अनुरूप करें। संस्थानों के लेखा पालन से संबंधित नियमों में, लेखक से संबंधित विभिन्न अधिकारियों जैसे लेखाधिकारी, लेखापाल एवं वित्तीय प्रशासन से संबंधित अन्य अधिकारियों के अधिकारों तथा कर्तव्यों की विवेचना की जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है जिससे पूरे राज्य में स्थानीय संस्थाओं के लेखा पालन में एकरूपता स्थापित की जा सके। ऐसा कर दिए जाने से राज्य सरकार और उसकी पर्यवेक्षक इकाईयां राज्य में कार्यरत विभिन्न स्थानीय संस्थानों का केवल तुलनात्मक मूल्यांकन कर सकती है, बल्कि उन पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने में भी सक्षम हो जाती है। लेखा पालन के अपने कर्तव्य के निष्पादन में यह संस्थाएं अपने द्वारा वसूल करो की राशि का ब्यौरेवार विवरण रखती है।

किसी भी प्रशासनिक संस्थान में यह देखना कि धन का व्यय उचित रूप से बजट में निर्धारित उद्देश्यों के लिए ही किया गया है, राज्य सरकार के संदर्भित आदेशों की पूर्णता अनुपालन की गई है, धन का व्यय अधिकृत अधिकारियों द्वारा ही किया गया है, और बजट में स्वीकृत धनराशि बिना स्वीकृति के एक मद से दूसरे मद में व्यय नहीं की गई है, लेखा परीक्षण के आवश्यक उद्देश्य माने जाते हैं। स्थानीय संस्थाओं के लेखा परीक्षण का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर होता है। यही कारण है कि राज्यों में लेखा परीक्षण की प्रक्रिया में कुछ अंतर पाए जा सकते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात प्रायः सभी राज्यों में स्थानीय शासन के लेखा परीक्षण का कार्य स्थानीय निधि लेखा परीक्षक द्वारा किया जाता है। प्रायः हर राज्य में एक स्थानीय निधि लेखा परीक्षक है। वह राज्य सरकार का अधिकारी है और राज्य सरकार के वित्त विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करता है। स्थानीय निधि लेखा परीक्षा के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत राज्य के समस्त स्थानीय संस्थाएं आती हैं। लेखा परीक्षण का प्रतिवेदन दो भागों में तैयार किया जाता है। इसके प्रथम भाग में प्रशासकीय दृष्टि से की गई वित्तीय अनियमितताओं का वर्णन होता है, जिसे परीक्षण नोट कहते हैं। और दूसरे भाग में ऐसी आपत्तियों का विवरण दिया जाता है जिन पर संस्थागत उत्तर पर प्रशासनिक कार्यवाही अपेक्षित होती है। इस दूसरे भाग को आपत्ति विवरण कहा जाता है। यदि लेखा परीक्षण के दौरान किसी अधिकारी अथवा कर्मचारी की लापरवाही या दायित्व से संस्था को आर्थिक होने का मामला सामने आता है तो ऐसी स्थिति में निधि लेखा परीक्षक को यह अधिकार होता है कि वह संबंधित अधिकारी या कर्मचारी को क्षति पूर्ति के लिए उत्तरदाई ठहराए।

12.5 निष्कर्ष

स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय संरचना तत्वों पर निर्भर करती है, जिनमें प्रमुख हैं- स्थानीय शासन की राजनीतिक संरचना, स्थानीय इकाइयों का स्तर और आकार,उसके द्वारा प्रदत्त सेवाएं और कार्य तथा उन पर सरकार का नियंत्रण। वस्तुतः स्थानीय संस्थाओं के वित्त की संरचना और उसके क्षेत्र को निर्धारित करने में इन समस्त तत्वों का सम्मिलित योगदान होता है। यदि किसी स्थानीय संस्था की वित्तीय स्थिति कमजोर होती है और अपनी आय की तुलना में व्यय अधिक होता है तो इससे उनके कामकाज में केंद्रीय या राज्य सरकार का हस्तक्षेप बनता है जिसके परिणाम स्वरुप उनकी स्थानीय स्वायत्तता संकुचित हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नगरीय स्थानीय संस्थाओं की आय का मुख्य स्रोत क्या हैं?
2. नगर पालिकाओं के बजट की प्रारंभिक जांच किसके द्वारा होती है?
3. नगरीय स्थानीय संस्थाओं द्वारा ऋण अदायगी की अधिकतम अवधि कितनी होनी चाहिए?

4. नगरीय शासन संस्था की करो के अतिरिक्त आय के कितने स्रोत होते हैं?
5. स्थानीय वित्त के कोई दो सिद्धांत बताइए।

12.6 सारांश

भारतवर्ष में संघीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। यहां संघ तथा राज्य सरकारों के वित्तीय अधिकारों का अलग-अलग उल्लेख किया गया है। दोनों के बीच समन्वय बना रहे, इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में संघ तथा राज्यों के लिए अलग-अलग आय के साधन निश्चित कर दिए गए हैं। जिस प्रकार हम और राज्यों का संबंध है, बिल्कुल उसी प्रकार राज्य तथा स्थानीय संस्थाओं के बीच भी संबंध है। स्थानीय संस्थाओं और राज्यों के बीच भी साधनों का अलग-अलग बंटवारा कर दिया गया है, जो अपने अपने क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से अपने संसाधनों का संग्रह करते हैं। जिस प्रकार की समस्याएं केंद्र और राज्यों के बीच जन्म लेती हैं, ठीक उसी प्रकार की समस्याएं राज्य और स्थानीय संस्थाओं के बीच भी जन्म लेती है। सिर्फ अंतर इतना है कि स्थानीय संस्थाओं का आकार और व्यय का रूप तथा व्यय की तीव्रता राज्यों से कम होती है। इतने पर भी स्थानीय संस्थाओं के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है, क्योंकि अपने क्षेत्र में इन संस्थाओं को अनेक अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं।

12.7 शब्दावली

नगरीकरण- गांव से नगर बनने की प्रक्रिया, निर्दिष्ट- निर्देश किया गया, परीवीक्षण- अच्छी तरह देखना, करारोपण- कर लगाना

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लगाए जाने वाले कर, **2.** स्वायत्त शासन निदेशालय, **3.** 30 वर्ष, **4.** दो (आंतरिक स्रोत, बाहरी स्त्रोत), **5.** अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धांत, योग्यता का सिद्धांत

12.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, अशोक.2019, भारत में स्थानीय प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर पब्लिशर्स ,जयपुर।
2. सिंह, एस.के., 2009, लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त; साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. पंत,जे.सी.2005, लोक अर्थशास्त्र; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लेखी, आर.के., 2009, लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।
2. कटारिया, सुरेंद्र, 2009, भारतीय लोक प्रशासन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नगरीय स्थानीय शासन से आप क्या समझते हैं उसकी विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. स्थानीय को समझाते हुए आर्थिक विकास में स्थानीय वित्त की भूमिका को समझाइए।
3. नगरीय स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

इकाई- 13 ग्रामीण शासन का वित्तीय प्रशासन

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की पृष्ठभूमि
13.3 पंचायती राज संस्थाओं के कार्य
13.4 ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन
13.4.1 पंचायती राज संस्थाओं की आय के स्रोत
13.4.1.1 ग्राम पंचायत की आय के स्रोत
13.4.1.2 पंचायत समिति की आय के स्रोत
13.4.1.3 जिला परिषद की आय के स्रोत
13.4.2 पंचायती राज संस्थाओं का बजटन
13.4.3 पंचायती राज संस्थाओं के लेखे एवं अंकेक्षण
13.4.4 वित्तीय प्रशासन संबंधी कमियां/समस्याएं
13.5 निष्कर्ष
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13 .9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

स्थानीय शासन की संस्थाओं की सफलता उनके पास उपलब्ध वित्तीय स्रोतों एवं सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था पर ही निर्भर करती है। किसी भी अन्य संस्था की भांति ही स्थानीय स्वशासन संस्थाएं भी अपनी मूलभूत दायित्वों का उचित निष्पादन तब तक नहीं कर सकती है, जब तक कि उनके पास सपने इन कार्यों को संपन्न करने के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन उपलब्ध ना हो। लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को अपनाने के साथ ही लोक प्रशासन से जनसाधारण की अपेक्षाएं और आकांक्षाएं बहुत बढ़ गए हैं। यही कारण है कि भारत में भी स्थानीय निकायों के कार्यों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो गया है और लोगों की उनसे अपेक्षाएं भी उसी मात्रा में बढ़ गई है। परंतु वास्तविकता यह है कि इन स्थानीय संस्थाओं के पास अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए उचित मात्रा में वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं होते हैं। गांवों तथा शहरों की बढ़ती जनसंख्या इन स्थानीय संस्थाओं के पास उपलब्ध वित्तीय संसाधनों को भी अपर्याप्त बना देती है। प्रस्तुत अध्याय में हम ग्रामीण स्थानीय शासन के वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे।

- पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न कार्यों को जान पाएंगे।
- ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन को विस्तार से जान पाएंगे।

13.2 भारत में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की पृष्ठभूमि

नगरीय स्थानीय संस्थाओं के संदर्भ में अपने पिछले अध्याय में विस्तार से जाना। पिछले अध्याय में भारत में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के विकास के संदर्भ में आपने जाना कि किस प्रकार अंग्रेजो के द्वारा 1687 में मद्रास में नगर पालिका की स्थापना की गई थी। स्थानीय स्वशासन की ग्रामीण इकाइयों के संदर्भ में ग्राम पंचायतों का इतिहास बहुत प्राचीन है, परंतु अंग्रेजों ने इन संस्थाओं को पुनर्गठित और पुनर्जीवित किया। चूँकि भारत में नगरीय स्थानीय संस्थाओं निर्माण तो बहुत पहले ही किया जा चुका था, परंतु 1919 से नगर पालिकाओं का नियंत्रण सरकार के अधीन आ गया और अब ग्राम पंचायतों के बारे में नियम बनाए जाने लगे। 1935 में अनेक राज्यों में अंतरिम सरकार बनी और उन सरकारों के बनते ही ग्राम पंचायतों और स्थानीय संस्थाओं की मांग जोर पकड़ने लगी।

भारत स्वतंत्र हुआ, राष्ट्रीय सरकार बनी और इसके बाद तुरंत पंचायतों के बारे में फिर से सोचा जाने लगा तथा इस दिशा में नियम बनाए जाने लगे। नवीन संविधान बनाया गया, जिसमें ग्राम पंचायतों को 'निर्देशक सिद्धांतों' के अंतर्गत शामिल किया गया। यह व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद- 41 में की गई है। आज ग्राम पंचायतें प्रजातंत्र का मुख्य आधार बन चुकी है। नीचे से ऊपर की ओर विकास करने के उद्देश्य से ग्राम पंचायतों के महत्व को स्वीकार किया गया है। ग्राम पंचायतों का महत्व आज प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में बहुत बढ़ गया है। ग्राम पंचायत के अंतर्गत एक या एक से अधिक गांव आते हैं पर्वतीय क्षेत्र को छोड़कर पंचायतों का गठन जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। इस संस्था का मुखिया प्रधान या सभापति होता है, तथा प्रत्येक गांव से या गांव के मोहल्लों से अन्य सदस्यों का निर्वाचन प्रजातांत्रिक आधार पर किया जाता है। यह चुनाव कभी-कभी निर्विरोध भी हो सकता है। चुने गए सदस्य तथा सभापति सब मिलकर गांव की समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं तथा गांव के लिए नीतियों का निर्धारण करते हैं।

1993 में पंचायती राज या ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन के संबंध में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान में एक नया भाग, भाग- 9 तथा एक अनुसूची, 11वीं अनुसूची जोड़ी गई है और 'पंचायत राज व्यवस्था' को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। यह अधिनियम 25 अप्रैल,1993 को लागू हो गया। अधिनियम में प्राथमिक स्तर पर ग्राम सभा की व्यवस्था की गई है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की प्रत्यक्ष लोकतंत्र संस्था है। इस अधिनियम में ग्राम सभा के अतिरिक्त त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की व्यवस्था की गई है- ग्रामीण स्तर पर ग्राम पंचायत, विकास खंड पर खंड समिति या पंचायत समिति, और जिला स्तर पर जिला परिषद।

स्थानीय स्वायत्त शासन प्रणाली का औचित्य वित्तीय संघवाद के सिद्धांत से प्रारंभ होता है। कुछ सेवाएं जैसे सुरक्षा, संचार का केंद्रीय सरकार के पास होना आवश्यक है। परंतु कुछ कार्य ऐसे हैं जो स्थानीय सरकार के लिए ही उचित है, क्योंकि स्थानीय स्वायत्त शासन के स्तर पर घनिष्ट संबंध स्थापित किया जा सकता है और यह कार्य बदली हुई परिस्थितियों में भली प्रकार से पूरे किए जा सकते हैं। कई बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर समन्वय तथा भिन्नता होती है। स्थानीय करों को, लाभों के सौहार्दपूर्ण मिश्रण से प्राप्त सिद्धांत, सेवा पर लागत के सिद्धांत तथा कर देयता की क्षमता के सिद्धांत पर आधारित करना आसान है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर की सरकार की तुलना में, स्थानीय स्तर पर संबंधित कर देयता क्षमता निर्धारित करने में सहायक होती है। इस समय हमारे देश में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं को को एकत्रित करने के लिए कर लगाने के अधिकारों के अनुसार तीन भागों में

वर्गीकृत किया जा सकता है- ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियां एवं जिला परिषदें। इस संदर्भ में नगरीय संस्थाओं का अध्ययन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं।

13.3 पंचायती राज संस्थाओं के कार्य

जैसा कि आपने उपरोक्त अध्ययन में जाना कि भारत में 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के बाद तीन प्रकार की पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया-ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद। इन पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन को विस्तार से जानने से पूर्व आइए एक नजर में ग्रामीण या पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों का उत्तरदायित्व पर ही डालें। ग्रामीण स्तर की इन तीनों संस्थाओं को संबंधित स्थानीय क्षेत्रों के विकास का उत्तर दायित्व सौंपा गया। इन तीनों संस्थाओं को अपने-अपने क्षेत्रों में अनिवार्य एवं एच्छिक दोनों प्रकार के कार्यों का संपादन करना होता है। ग्राम पंचायतों को देश के अधिकतम भागों में स्थापित किया गया है। ग्राम पंचायत स्थानीय प्रशासन की आधारभूत तथा आरंभिक इकाई है। एक गांव में प्रायः एक पंचायत होती है। परंतु इस संबंध में कोई स्थाई नियम नहीं है। कई बार इसका अधिकार क्षेत्र दो या इससे अधिक गांवों तक बढ़ाया जा सकता है, यदि गांव की जनसंख्या न्यूनतम हो। कई बार जनसंख्या एवं राजस्व के आधार पर पंचायतों को कुछ श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। उच्च श्रेणी की पंचायतें कर लगाने की अधिक शक्तियां रखती हैं।

ग्राम पंचायतों के कार्यों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- अनिवार्य कार्य, एच्छिक कार्य। ग्राम पंचायतों द्वारा किए जाने वाले कार्य एक प्रांत से दूसरे प्रांत में भिन्न होते हैं। एक पंचायत द्वारा मुख्य के नगरीय कार्य किए जाते हैं, जैसे- जल पूर्ति का प्रबंध, सफाई, सड़क रोशनी, सड़कों की संभाल, जन्म मृत्यु संबंधी आंकड़े एकत्रित करना। इसके अलावा पंचायतें और भी कई प्रकार के कार्य करती हैं। जैसे- न्यायिक, पुलिस, आर्थिक एवं सामाजिक कार्य। बहुत से प्रांतों में छोटे-मोटे झगड़े पंचायतों द्वारा सुलझाएं जाते हैं। इसके एच्छिक कार्यों के अंतर्गत कई प्रांतों में ग्राम विकास से संबंधित कार्य भी ग्राम पंचायतों के द्वारा संपन्न किए जाते हैं। ग्राम पंचायतें अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए गलियों एवं सड़कों के किनारे वृक्ष लगाती हैं। ग्राम पंचायत द्वारा पशुओं की सुधरी हुई नस्ल,उनका उपचार तथा उन्हें संक्रमण रोगों से बचाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाते हैं। सहकारी संस्थाओं का विकास, सार्वजनिक पुस्तकालय की देख रेख, प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम, सामाजिक सामंजस्य की परियोजनाओं का प्रबंधन आदि भी ग्राम पंचायतों के द्वारा संपन्न किए जाते हैं।

खंड स्तर पर पंचायत समिति का गठन किया जाता है। पंचायत समिति शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सफाई जैसे कार्य सामाजिक सेवा के रूप में करती है। उसके साथ ही विकास से संबंधित कार्य व्यक्ति कृषि तथा पशु, सिंचाई, सहकारिता का विकास, लघु उद्योगों तथा कुटीर उद्योगों का विकास आदि के साथ-साथ राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर प्रदान किए जाने वाले कार्यों का भी संपादन करती है। इन सब कार्यों के अतिरिक्त पंचायत समिति ग्राम पंचायतों के कार्यों की निगरानी भी करती है। ग्राम पंचायत के बजट की जांच परख भी करती है। कई राज्यों में तो यह ग्राम पंचायतों के बजट को स्वीकृति भी देती है।

जिला परिषद के कार्य भी अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार के होते हैं। कई राज्यों में यह समन्वय पैदा करने वाली संस्था के रूप में जानी जाती है, जो पंचायत समितियों के कार्यों की निगरानी करती है। यह विकास योजनाओं के क्रियान्वयन के संबंध में सरकार को परामर्श भी देती है। इन कर्तव्यों के कुछ राज्यों में जिला परिषद के कुछ वैज्ञानिक कार्यकारी होते हैं। जिला परिषद माध्यमिक व्यवसायिक तकनीकी स्कूलों की स्थापना, संभाल एवं विस्तार के कर्तव्य भी निभाती है। इन सबके अलावा भी जिला परिषद के कार्यों की सूची भी अत्यधिक लंबी है।

यहां इन सब पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों की सूची को जानने का अभिप्राय यही है कि इतने सारे कार्य को संपन्न करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन का मूल्यांकन करने में आसानी होगी।

13.4 ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय प्रशासन

स्वतंत्रता के बाद जब हमारे देश में संविधान का प्रवर्तन हुआ उस समय स्थानीय शासन संविधान द्वारा सृजित सोपान नहीं था। संविधान में किए गए 73वें संवैधानिक संशोधन के परिणाम स्वरूप पंचायती राज संविधान का हिस्सा बन गया है। परंतु इस स्थिति के बाद भी संविधान द्वारा इन पंचायती राज संस्थाओं की आय के लिए कोई प्रथक से स्रोत नहीं बताए गए हैं, जिसके कारण शासन की इस तीसरी इकाई को करारोपण, आय और व्यय के स्रोत और वित्तीय प्रबंध के कोई स्पष्ट अधिकार नहीं मिल सके हैं। संविधान संशोधन के बाद इस दिशा में एक सकारात्मक कदम उठाया गया है कि केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों के विनियमन के लिए जिस तरह वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया हुआ है, ठीक उसी प्रकार से राज्य सरकारों और दोनों प्रकार की स्थानीय संस्था अर्थात ग्रामीण एवं नगरीय के मध्य वित्तीय संबंधों के विनियमन और संबंधित पक्षों पर सुझाव देने के लिए राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान कर दिया गया है। अब पंचायती राज संस्थाएं करारोपण आदि के संदर्भ में राज्य वित्त आयोग की अनुशंसाओं के अनुरूप राज्य सरकार द्वारा दिए गए दिशा निर्देशों के अनुसार काम करती हैं। यह संस्थाएं जो भी नए कर अपने क्षेत्र में आरोपित करना चाहेंगे, इसके लिए उन्हें राज्य वित्त आयोग के मार्गदर्शक ओं को ध्यान में रखने के अलावा राज्य सरकार की पूर्व अनुमति भी लेनी होगी।

वित्तीय प्रशासन के संचालन के लिए ग्राम पंचायत के स्तर पर कोई अलग से तंत्र या कार्मिक वर्ग उपलब्ध नहीं कराया गया है। पहले यह कार्य सरपंच के द्वारा निष्पादित किया जाता था। अब यह कार्य सरपंच के निर्देशन में ग्राम पंचायत के समूह सचिव के द्वारा निष्पादित किया जाता है। पंचायत समिति स्तर पर यह दायित्व विकास अधिकारी अपने कार्यालय स्टाफ की मदद से करता है। इसी तरीके से जिला परिषद में मुख्य कार्यकारी अधिकारी अपने अधीनस्थ लेखा कर्मचारियों की सहायता से वित्तीय प्रशासन का संचालन करता है।

पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन को आसानी से समझने के लिए इसको दो भागों में विभक्त करके समझा जा सकता हैं- विभिन्न संस्थाओं की आय के स्रोत जिसमें करारोपण की शक्तियां भी शामिल है, और विभिन्न संस्थाओं की निर्माण एवं लेखा प्रणाली तथा अंकेक्षण की प्रणाली के द्वारा।

13.4.1 पंचायती राज संस्थाओं की आय के स्रोत

इस अध्याय के अगले कुछ पृष्ठों में हम विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं जैसे- ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद के वित्तीय प्रशासन के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

सन 1957 में बलवंत राय मेहता कमेटी ने सुझाव दिया था कि स्थानीय स्वायत्त शासन के लिए साधनों की खोज के प्रयत्न किए जाने चाहिए। श्री मेहता के सुझावों के अनुसार ग्राम पंचायतों के लिए साधनों का मुख्य स्रोत केंद्रीय सरकार है। गृह-कर, मंडियों एवं वाहनों पर कर, चुंगी अथवा सीमावर्ती कर, संरक्षण कर, जल तथा बिजली कर, पशुओं के तालाब से आय, बेचे गए पशुओं के पंजीकरण से शुल्क, पंचायत समितियों से अनुदान और प्रांतीय सरकार से अनुदान ग्राम पंचायतों के आय के साधनों के अन्य स्रोत हैं। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि ग्राम पंचायत का प्रयोग भूमि कर एकत्रित करने वाली एजेंसी के रूप में किया जाए तथा ग्राम पंचायत को इसके लिए कमीशन भी दिया जाए। परंतु पंचायतें दक्षता के एक न्यूनतम स्तर को संतुष्ट करें। ग्राम पंचायतों को पंचायत समितियों से कानूनी रूप में निर्धारित शुद्ध भूमि राजस्व का 75 प्रतिशत भाग प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, ग्राम पंचायत का बजट, पंचायत समिति द्वारा निरीक्षण तथा स्वीकृति पर आधारित होना चाहिए।

पंचायती राज संस्थाओं पर अध्ययन करने वाले दल ने सुझाव दिया कि ग्राम पंचायत की आय के साधन गृह कर, व्यवसायिक कर तथा वाहन पर अनिवार्य करों के रूप में होने चाहिए तथा इनके अंतिम सीमा दर भी निर्धारित होनी चाहिए। चुंगी कर को अन्य प्रगतिशील करों- जैसे पशुओं पर कर, श्रम कर, राजस्व पर विशेष कर, कुछ विशेष विकास परियोजनाओं को पूरा करने के लिए ग्रह कर आदि से बदल देना चाहिए। इस दल का यह भी सुझाव था कि प्रांतीय सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों से इकट्ठा किया मनोरंजन कर का भाग पंचायत के साथ बांटना चाहिए। स्टांप मुद्रांक पर सरचार्ज लगाया जाए तथा उसके प्राप्त आय पंचायतों एवं समितियों में बांटी जाए। आर्थिक यात्रा-कर पंचायत समिति व जिला परिषद द्वारा लगाई जाए तथा उससे प्राप्त कुल आय का कुछ भाग पंचायतों को दिया जाए। पंचायत समिति एवं जिला परिषद की शुद्ध आय का एक निश्चित भाग पंचायतों को दिया जाए। अध्ययन दल ने यह सुझाव भी दिया कि ₹1 प्रति व्यक्ति के हिसाब से न्यूनतम अनुदान प्रत्येक पंचायत को अनुरक्षण अनुदान के रूप में दिया जाए तथा इसके लिए वित्त प्रांत एवं केंद्रीय सरकारों द्वारा एक सामान बांटा जाए।

13.4.1.1 ग्राम पंचायत की आय के स्रोत

ग्राम पंचायत की आय के साधनों को मोटे तौर पर निम्न तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- 1. करों एवं शुल्कों से आय, 2. सरकार से प्राप्त अनुदान से आय तथा 3. ऋण,उधार या दान से आय।

1. **करों एवं शुल्कों से आय-** कुछ राज्यों में ग्राम पंचायतों को स्वयं के स्रोतों से आय होती है, उसे करों एवं करों से अतिरिक्त आय के अंतर्गत देखा जा सकता है।
    - **करों से आय-** राजस्थान समेत कई राज्यों में ग्राम पंचायतें निजी भवनों पर कर, तीर्थयात्री कर, पेयजल के प्रदान करने की व्यवस्था के लिए कर, वाणिज्यिक फसलों पर कर, पंचायत सर्कल के भीतर उसमें उपभोग के लिए लाए गए पशु या माल पर चुंगी आदि जैसे कर लगा सकती है। इस प्रकार लगाए जाने वाले सभी कर राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार ही लगाए एवं संग्रहित किए जाते हैं।
    - **करों के अतिरिक्त आय-** ग्राम पंचायतों को करों के अलावा कुछ अन्य साधनों जैसे कि फीस एवं शास्ति तथा जन सहयोग और भूमि विक्रय थे जो आय होती है उसे इसके अंतर्गत रखा जा सकता है।
2. **केंद्र/ राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान से आय-** ग्राम पंचायतों को सरकार द्वारा मिलने वाला अनुदान भी उनकी आय का एक स्रोत माना जाता है। ग्राम पंचायतों के लिए राजस्थान में ही व्यवस्था की गई है कि अब सामान्य अनुदान की राशि के रूप में प्रति व्यक्ति ₹11 प्रति वर्ष प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ स्कूल भवनों, सड़कों और दूसरी ग्रामीण संपत्तियों के रखरखाव के लिए भी ₹5000 वार्षिक की एक राशि एकमुश्त अनुदान के रूप में निर्धारित की गई है। इसके अलावा अपनी स्वयं की आय बढ़ाने वाली तथा उत्कृष्ट सेवा करने वाली तीन ग्राम पंचायतों का चयन कर प्रत्येक ज़िला स्तर पर उन्हें क्रमशः ₹200000,100000 एवं ₹50000 के तीन प्रोत्साहन पुरस्कार भी अनुदान के रूप में दिए जाने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार अन्य राज्यों में भी सरकार द्वारा ग्राम पंचायतों को अनुदान की राशि विभिन्न मदों में प्रदान की जाती है जो उनके वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण भाग होता है।
3. **ऋण, उधार या दान से आय-** विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्था अपने निर्धारित उद्देश्यों और योजनाओं की क्रियाविधि के लिए सरकार से या उसकी स्वीकृति से बैंकों या अन्य वित्तीय संस्थाओं से धन भी उधार ले सकती है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सादिक अली ने अपने प्रतिवेदन में यह अनुशंसा की थी कि पंचायती राज संस्थाओं के लिए छोटे उद्योग-धंधों और कार्यों को हाथ में लेने की ना केवल अनुमति देनी चाहिए, बल्कि इस हेतु ऋणों की व्यवस्था किया जाना भी उचित होगा। जहां तक ग्राम पंचायतों की वास्तविक आर्थिक स्थिति का संबंध है प्रायः यह अनुभव किया गया है कि उनकी

आय के स्रोत, उनसे अपेक्षित कार्यों की तुलना में बहुत कम होते हैं। अतः उनकी आर्थिक स्थिति को अतिरिक्त आय स्रोतों के विकास द्वारा उन्नत बनाए जाने की आवश्यकता है।

13.4.1.2 पंचायत समिति की आय के स्रोत

भारत के अधिकतर राज्यों में 'पंचायत समिति' पंचायती राज व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। खंड स्तर पर स्थित यह इकाई राज्य सरकार की अभिकर्ता के रूप में कार्य करती है और एक रूप में उसे बेहतर कार्य करने पड़ते है। जिन्हें राज्य सरकार समय-समय पर विशिष्ट रूप से उन्हें सौंपती है। पंचायत समिति अपने क्षेत्र के अंतर्गत स्थित ग्राम पंचायतों के कार्यों का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करती है। वह पंचायतों को आवश्यक तकनीकी और वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराती है। इन सब कारणों से पंचायती राज पर बने सभी अध्ययन दलों ने यह सिफारिश की थी कि सभी प्रमुख वित्तीय स्रोत पंचायत समिति को स्थानांतरित कर दिए जाने चाहिए। अधिकांश राज्यों ने इन सिफारिशों पर सकारात्मक प्रतिक्रिया भी की। इसी पृष्ठभूमि में ग्राम पंचायतों की भांति ही पंचायत समिति के आय के स्त्रोतों को भी मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है- 1.पंचायत समिति द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय, 2. सरकार से प्राप्त अनुदान से आय और तथा 3. ऋण,उधार या दान से आय।

1. **पंचायत समिति द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय-** भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 276 के उपबंधों और राज्य सरकार के किन्हीं साधारण या विशेष आदेशों के अधीन पंचायत समिति निम्नलिखित में से सभी या किन्हीं करों को लगा सकती है एवं लगाकर उनकी वसूली भी कर सकती है- व्यापार, आजीविकाओं,व्यवसायों या उद्योगों पर कर, प्राथमिक शिक्षा पर उपकर तथा पंचायत समिति क्षेत्र में आयोजित मेलों पर कर। राज्य सरकारें अपने अधिनियमों के माध्यम से अपने राज्य की विभिन्न पंचायत समितियों को विभिन्न करो को आरोपित करने एवं उनसे संबंधित आय को अपने पास रखने का प्रावधान करती हैं।
2. **करों के अतिरिक्त आय-** कुछ राज्यों में पंचायत समितियों को करेतर संसाधनों से जो आए होती है, उनका उल्लेख कुछ इस प्रकार से किया जा सकता है- चल व अचल संपत्ति पर कर, हांड्डियों के ठेकों से आय तथा ग्राम पंचायत के निर्णय की अपील पर शुल्क।
3. **सरकार से प्राप्त अनुदान से आय**- विभिन्न कार्यों के संपादन के लिए पंचायत समितियों को राज्य सरकार के द्वारा अनुदान दिया जाता है। सामान्य अनुदान के रूप में प्रत्येक पंचायत समिति को कार्यालय तथा इससे संबंधित अन्य कार्यों के लिए अनुदान दिया जाना होता है। वर्ष 1995 से पंचायत समितियों के मंत्रालयिक और तकनीकी कर्मचारियों में वृद्धि के साथ उसी वर्ष से इन्हें संस्थापन अनुदान दिया जाने लगा है। पंचायत समितियों को प्रतिवर्ष ₹10000 इसके स्वामित्व के भवनों के रखरखाव के लिए दिए जाने लगे हैं। पंचायत समितियों को मैचिंग अनुदान भी दिया जाता है। निर्माण कार्यों या अन्य किसी विशेष सेवा कार्य हेतु पंचायत समिति द्वारा स्वयं के साधन जुटा लेने पर उतनी ही राशि मैचिंग अनुदान के रूप में देने का प्रावधान कर रखा है।
4. **ऋण या उधार या दान से आय**- विभिन्न राज्यों में पंचायत समितियां पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से अपने द्वारा बनाई गई योजनाओं और उनके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार से किया उनकी पूर्व स्वीकृति से बैंकों या अन्य संस्थाओं से धन उधार ले सकती है।

13.4.1.3 जिला परिषद की आय के स्रोत

जिला परिषद की आय के साधन, जिला परिषद को सौपे गए कार्यो के आधार पर निर्भर करते हैं। यह सब कार्य विभिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न होते हैं। उन प्रांतों में जहां इसके कार्य समन्वय संस्था के रूप में होते हैं वहां के साधन सीमित होते हैं। इसके प्रतिकूल जहां जिला परिषद के कार्य कार्यकारी होते हैं, वहां पर साधनों की बड़ी सीमा तक

आवश्यकता होती है। जैसे कि आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र में है। पंचायती राज व्यवस्था की अन्य दो संस्थाओं की भांति ही जिला परिषद की आय के स्त्रोतों को भी निर्णय तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है- 1. जिला परिषद द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय, 2. सरकार से प्राप्त अनुदान से आय और 3. ऋण,उधार या दान से आय।

1. **जिला परिषद द्वारा लगाए जाने वाले करों से आय-** विभिन्न राज्यों में जिला परिषदों को संबंधित अधिनियम के द्वारा कुछ कर आरोपित एवं एकत्रित करने का अधिकार प्रदान किया जाता है। यह कर विभिन्न राज्यों में अलग अलग हो सकते हैं। जैसे- किसी मेले की अनुज्ञप्ति के लिए फीस, जल दर, व्यवसायिक व्यापार व्यापारों पर कर, सार्वजनिक मनोरंजन कर, भूमि तथा भवनों पर कर, जिला परिषद मंडी शुल्क, दलालों पर लाइसेंस शुल्क, आढ़तियों, तोलने तथा मापने वालों पर शुल्क तथा बाजार में बिक्री के लिए वस्तुएं प्रदर्शित करने पर मंडी शुल्क आदि होते हैं।
2. **सरकार से प्राप्त अनुदान से आय-** जिला परिषद की आय का एक बड़ा भाग प्रांतीय सरकार के अनुदानों से प्राप्त होता है। जिला परिषद की पर्यवेक्षक की स्थिति को देखते हुए राजस्थान में प्रथम राज्य वित्त आयोग ने जिला परिषदों को दिए जाने वाले अनुदानों को सामान्य, संधारण या रखरखाव अनुदान तथा प्रोत्साहन अनुदान के रूप में विभक्त किया। इन अनु संस्थाओं से पहले जिला परिषदों को राजस्थान राज्य सरकार से कोई अनुदान प्राप्त नहीं होता था, बल्कि उन्हें अपने कार्यो के संचालन के लिए अधीनस्थ पंचायत समितियों के अंशदान पर निर्भर रहना पड़ता था।
3. **ऋण,उधार या दान से आय-** जिला परिषद अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों की पूर्ति के लिए राज्य सरकार से या सरकार की पूर्व अनुमति से किसी बैंक से या अन्य किसी अन्य वित्तीय संस्थाओं से धन उधार ले सकती है।

देश के विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं के उपलब्ध आंकड़ों का आकलन करने से यह सिद्ध होता है कि पूरे देश भर में पंचायती राज संस्थाओं की स्वयं की आय कम हो गई है, विशेषकर ग्राम पंचायतों की स्वयं की आय का प्रतिशत बहुत अधिक गिरा है जिसका प्रमुख कारण, राज्य सरकार द्वारा चुंगी और ग्रह कर समाप्त कर दिया जाना है। अन्य कर लगाने से यह संस्थाएं स्वयं कतराती है। राज्य सरकार द्वारा प्रदत अनुदान पर निर्भरता इन संस्थाओं की स्वतंत्रता और प्रशासनिक कुशलता की दृष्टि से ठीक नहीं कही जा सकती है। जब से राज्य वित्त आयोग का गठन हुआ है पूरे भारत में पंचायती राज संस्थाओं की कुल आय में वृद्धि दर्ज की गई है, लेकिन इन संस्थाओं की कुल आय आवश्यकताओं से अभी भी कम ही है। जब तक इन संस्थाओं की स्वयं की आय समुचित नहीं हो जाए प्रशासनिक स्थिति ठीक नहीं हो सकती है।

13.4.2 पंचायती राज संस्थाओं का बजट

पंचायती राज संस्थाएं यद्यपि संविधान द्वारा निर्मित स्वायत्तशासी संस्थाएं हैं, फिर भी अन्य सरकारी संस्थाओं की तरह ही इनमें बजट निर्माण, लेखा संधारण और अंकेक्षण की व्यवस्था पाई जाती है। इन संस्थाओं द्वारा अपने बजट का निर्माण करके संबंधित संस्था के सम्मुख स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। संबंधित संस्था द्वारा उसके पास किए जाने के पश्चात उच्च स्तर पर बजट समवीक्षार्थ भेजा जाता है। अधिकांश राज्यों में ग्राम पंचायत का बजट पास करके ग्राम सभा के सम्मुख विचार-विमर्श हेतु प्रस्तुत किया जाता है। ग्राम सभा के सुझावों, टीका टिप्पणी और आलोचना समालोचना पर, विचार करते हुए ग्राम पंचायत द्वारा पुनः बजट पर विचार करके उसे स्वरूप प्रदान करके आगे संबंधित अधिकारी के पास भेजा जाता है। ग्राम सभा के सुझाव ग्राम पंचायत के लिए मानना बाध्यकारी नहीं है। पंचायत समिति द्वारा पारित बजट समवीक्षार्थ जिला परिषद के मुख्य कार्यपालक अधिकारी को और जिला परिषद का बजट निदेशक, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास को प्रेषित किया जाता है। विकास

अधिकारी, मुख्य कार्यपालक अधिकारी और निदेशक पंचायती राज द्वारा ऐसे बजट अनुमानों की समीक्षा की जाती है और संवीक्षा के पश्चात ग्राम पंचायत का बजट पंचायत समिति को, पंचायत समिति का बजट जिला परिषद को और जिला परिषद के बजट को निदेशक, पंचायती राज के मंजूरी के लिए प्रेषित किया जाता है।
बजट अनुमान प्राप्त होने पर मंजूरी अधिकारी बजट को मंजूरी प्रदान कर सकता है या उपांतरण के सुझाव एवं उपांतरण के संबंध में अपनी टिप्पणियों के साथ संबंधित पंचायती राज संस्थाओं को लौटा सकता है। मंजूरी अधिकारी को बजट अनुमान निर्धारित समयावधि के भीतर वापस करना होता है। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है तो संबंधित पंचायती राज संस्था को यह अधिकार होता है कि वह- प्रतिबद्ध मदों पर अपने स्त्रोत जुटा ले, और उनके क्रियान्वयन पर व्यय उपगत कर ले।
लेकिन पंचायती राज संस्था द्वारा व्यय की ऐसी किसी भी मद पर,जिसके लिए मैचिंग ग्रांट प्राप्त करनी है, कोई भी व्यय उस समय तक नहीं करें, जब तक कि बजट को मंजूरी प्राधिकारी द्वारा लौटा नहीं दिया जाता है। वित्तीय वर्ष के दौरान बजट में फेरबदल का भी प्रावधान है। बजट में कोई भी परिवर्तन, उसकी प्राप्ति हो या इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ व्यय की जाने वाली रकम के वितरण के संबंध में करना आवश्यक समझे तो बजट संबंधी उपरोक्त रीति से ही कोई अनुपूरक या पुर्नरीक्षित बजट विचारित,पारित, प्रस्तुत और उपांतरित किया जा सकता है।

13.4.3 पंचायती राज संस्थाओं के लेखे एवं अंकेक्षण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-273 'अ' में यह प्रावधान है कि समय-समय पर पंचायती राज संस्थाओं के लेखों की जांच एवं अंकेक्षण किया जाएगा। इस संबंध में राज्य विधान मंडलों को अधिकृत किया गया है। पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों पर लेखे संबंधी नियम राज्य सरकार ने बनाकर इनके लिए प्रारूप निर्धारित कर रखे हैं। उन्हीं प्रारूपों पर है तरीके से लेखे रखे जाते हैं। पंचायती राज संस्थाओं के अंकेक्षण के लिए स्थानीय निधि-अंकेक्षण निदेशालय अलग से गठित हैं जो एक निदेशक के अधीन कार्यरत हैं। स्थानीय संस्थाओं के लेखा परीक्षण के उद्देश्य से राजस्थान राज्य में तो एक स्थानीय निधि अंकेक्षण, (संपरीक्षा अधिनियम), 1954 प्रभावी है। यह निदेशालय पंचायती राज संस्थाओं का लगभग नियमित रूप से शत-प्रतिशत अंकेक्षण करता है। इन संस्थाओं का सांकेतिक अंकेक्षण का कार्य भारत का नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक करता है। संविधान के अनुच्छेद- 273 'अ' में यह प्रावधान है कि, समय-समय पर पंचायती राज संस्थाओं के लेखों का अंकेक्षण किया जाएगा तथा इस संबंध में राज्य विधानमंडल व्यवस्था करेगा। पंचायत समिति और जिला परिषद के मुख्यालय पर स्थानीय निधि अंकेक्षण निदेशालय की टीम जाकर लेखा परीक्षण के लिए संबंधित मुख्यालय पर बुला लिया जाता है, पंचायत सचिव संपूर्ण दस्तावेज लेकर निर्धारित तिथि को पंचायत समिति पहुंचकर इस कार्य में सहयोग करने के लिए उत्तरदाई होता है। दस्तावेजों की जांच के कुछ समय पश्चात अंकेक्षण प्रतिवेदन तैयार करके संबंधित संस्था अपने से ऊपर की संस्था को एक-एक प्रति भेज देती है। प्रतिवेदन के प्राप्त होने के 2 माह की अवधि के अंदर अनुपालना प्रतिवेदन भेजा जाना चाहिए।

13.4.4 वित्तीय प्रशासन संबंधी कमियां/समस्याएं

वित्तीय प्रशासन संबंधी कमियों या समस्याओं का अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से करते हैं-

1. **करों को लगाने की इच्छा शक्ति का अभाव-** पूरी भारतीय राजनीति, चाहे वह राज्य स्तरीय हो या फिर स्थानीय, इस समस्या से ग्रस्त है कि सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा जिन करो से आय बढ़ाई जा सकती है, उसे प्रभावी रूप से लागू करने की इच्छाशक्ति की जनप्रतिनिधियों में कमी पाई जाती है। फिर पंचायती राज संस्थाएं मतदाताओं से भौगोलिक रूप से अत्यंत गरीब भी होती हैं,इस कारण भी संस्थाएं कर लगाने से ज्यादा कतराती हैं। जनप्रतिनिधि कर लगाकर अपने मतदाताओं का रोष मोल लेना नहीं चाहते हैं,

बल्कि स्थिति यह है कि जो भी कर या फीस लगा रखी होती है, उसे और समाप्त करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। गृह कर और चुंगी इसके ज्वलंत उदाहरण है। यदि पंचायती राज संस्थाएं कर और फीस लगाएंगी ही नहीं तो इनकी स्वयं की आय पर्याप्त नहीं हो सकती है।

2. **करों और फीस की वसूली का अभाव-** पंचायती राज संस्थाओं की एक और बड़ी समस्या यह भी है कि जो कर या पीस लगा भी रखी होती है, उसे समय पर पूर्ण रूप से उगाहने के प्रति गंभीरता इन संस्थाओं में नहीं पायी जाती है। कर और फीस वसूली में कुछ तो इनके कार्मिक ढिलाई बरतते हैं और कुछ जनप्रतिनिधियों की शह से इस काम में और ढ़िलाई होती है।
3. **अव्यावहारिक कर प्रणाली-** इन संस्थाओं की कर प्रणाली कुछ और व्यवहारिक सी प्रतीत होती है। जैसे वाहन कर।पंचायतों द्वारा कृषि कार्यों के अलावा अन्य वाहनों पर कर लगाने का प्रावधान होता है। भारतीय ग्रामीण पर्यावरण में यह एक अव्यावहारिक प्रावधान नजर आता है। गांव में कृषि के कार्यों के अलावा निजी वाहनों की सुविधा कितने लोगों के पास है, बहुत कम ही लोग होंगे जिनके पास ऐसे वाहनों की सुविधा है। इस प्रकार दूरदराज के क्षेत्रों में तीर्थयात्री कर लगाया जाना भी अव्यवहारिक सा प्रतीत होता है।
4. **अनुदान की अपर्याप्तता एवं उसका समय पर ना मिल पाना-** जिस अनुपात में इन संस्थाओं के कार्य, उत्तरदायित्व एवं चुनौतियां बढ़ रही हैं, उस अनुपात में अनुदान नहीं बढ़ रहा है। राज्य द्वारा दिया जाने वाला अनुदान इन संस्थाओं के बढ़ते हुए दायित्वों के निर्वहन के लिए ना काफी होता है। इसके अलावा एक समस्या यह भी होती है कि जो भी अनुदान इन संस्थाओं को दिया जाता है, वह सरकार द्वारा समय रहते उपलब्ध भी नहीं कराया जाता है। देर से प्राप्त होने वाली राशि को जैसे-तैसे इन संस्थाओं के द्वारा मार्च की समाप्ति से पहले खत्म करना होता है। अतः ऐसे में नियम और कायदों की अवहेलना होती है और धन का सदुपयोग नहीं हो पाता है।
5. **पर्याप्त वित्तीय स्रोतों के हस्तांतरण का अभाव-** संविधान में बताए गए 29 विषयों में से 18 से 20 विषय अधिकांश राज्यों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित करने की घोषणा कर दी गई थी, कभी इन विषयों में कुछ विषय और जोड़ दिए जाते हैं तो कभी कुछ घटा दिए जाते हैं। प्रायः यह शिकायत सामने आती है कि इन संस्थाओं को विषयों के सौंपे जाने की घोषणा मात्र की जाती है, उनको कुशलतापूर्वक करने के लिए ना तो इन संस्थाओं को कर्मचारी ही प्रदान किए जाते हैं और ना वित्तीय एवं अन्य संसाधन उपलब्ध कराए जाते हैं। ऐसे में इन पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा अपने दायित्वों का सफलता से निर्वहन करने की समस्या खड़ी हो जाती है।
6. **पर्याप्त स्वायत्तता और स्वतंत्रता का अभाव-** संविधान संशोधन के पश्चात इन संस्थाओं को केंद्र तथा राज्य सरकार के द्वारा विशिष्ट कार्यक्रमों और योजनाओं के लिए राशि उपलब्ध कराई जाती है, जिसके साथ अनेक शर्तें और पाबंदियां भी रहती है। इन संस्थाओं को निर्धारित शर्तों और पाबंदियों के साथ कार्यक्रम विशेष पर ही राशि व्यय करनी होती है। पंचायती राज संस्थाओं को समुचित स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता प्राप्त नहीं होने के कारण उस पैसे का उपयोग अन्य किसी कार्य में नहीं किया जा सकता है।
7. **राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को लागू करने की बाध्यता का ना होना-** राज्य वित्त आयोग की प्रति 5 वर्षों में नियुक्ति की संवैधानिक बाध्यता होने से इनकी नियुक्ति राज्य सरकारों द्वारा कर दी जाती है, लेकिन इन आयोगों की सिफारिशें लागू करने संबंधी कानूनी बाध्यता इन राज्य सरकारों पर नहीं होती। इस कारण इन वित्त आयोग की सिफारिशों को भी गंभीरता से नहीं लिया जाता है। कुछ सिफारिशों को लागू करने से इंकार कर दिया जाता है तो कुछ को आगे पीछे लागू कर देते हैं, तो कुछ की दर में परिवर्तन कर दिया जाता है। साथ ही एक शिकायत यह भी रहती है कि वित्त आयोग को राज्य सरकार

द्वारा समुचित वित्तीय और कार्मिक सेवा उपलब्ध नहीं कराई जाती है, जिससे आयोग का कार्य विपरीत रूप से प्रभावित होता है।

8. **नैतिकता की कमी एवं प्रशासनिक अनियमितताएं-** पंचायती राज संस्थाओं में चुनाव लड़ने वाले व्यक्तियों में प्रायः नैतिक सोच सही नहीं होती है। इन संस्थाओं में बहुत से लोग तो इनमें अपना कैरियर तलाशते हैं। चुनाव में सभी पदों पर धन बहुत व्यय तो नैतिक और अनैतिक तरीक़े से उस पैसे को जल्दी से जल्दी वसूल करने की प्रवृति भी पायी जाती है। नैतिक और अनैतिक तरीके से उस पैसे को जल्दी से जल्दी वसूल करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। जनप्रतिनिधि और इन में कार्यरत कार्मिक मिलकर धन का दोहन करने में लगे रहते हैं। भ्रष्ट तरीके से पैसा बनाने के फेर में जो कुछ भी पैसा है, इन संस्थाओं के पास उसकी लीकेज और दुरुपयोग आम है। इन संस्थाओं में प्रत्येक कार्य के लिए जनप्रतिनिधि और कार्मिक गण अपना हिस्सा प्राप्त करने में ही लगे रहते हैं। कार्यों की गुणवत्ता से समझौता करके लोग पैसा बनाते हैं।

13.5 निष्कर्ष

वित्त को प्रशासन रूपी वाहन का ईंधन माना जाता है। जिस प्रकार ईंधन के बिना वाहन नहीं चल सकता उसी प्रकार वित्त के अभाव में प्रशासन का पत्ता भी नहीं हिलता। किसी भी प्रशासनिक इकाई की तरह पंचायती राज संस्थाओं की कुशलता और प्रभावीपन वित्तीय प्रशासन पर निर्भर करते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के लिए संविधान में कौन सा संशोधन लाया गया है?
2. ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की आय के क्या-क्या स्रोत होते हैं?

13.6 सारांश

स्थानीय शासन की संस्थाओं की सफलता एक निर्णायक सीमा तक उनके पर्याप्त वित्तीय स्रोतों एवं सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। कोई भी संस्था या संगठन अपनी मूलभूत दायित्वों का उचित निष्पादन तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि उन कार्यों को संपन्न करने के लिए उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन उपलब्ध ना हो। स्थानीय शासन की संस्थाओं को वित्त के अभाव में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। संविधान के प्रवर्तन के समय तो स्थानीय शासन संविधान द्वारा सृजित सोपान ही नहीं था। संविधान में किए गए 73वें संशोधन के परिणाम स्वरूप पंचायती राज अप संविधान का हिस्सा बन गया है। किंतु इस स्थिति के पश्चात भी संविधान द्वारा पंचायती राज संस्थाओं की आय के कोई प्रथम स्रोत चिन्हित नहीं किए गए हैं। फलतः शासन की यह तीसरी इकाई को करारोपण, आय या व्यय के स्रोत और वित्तीय प्रबंध के कोई स्पष्ट अधिकार नहीं मिल सके हैं। संविधान संशोधन के बाद इस दिशा में एक सकारात्मक कदम यह उठाया गया है कि केंद्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों को विनियमन के लिए जिस तरह वित्त आयोग के गठन का प्रावधान किया हुआ है, उसी तर्ज पर राज्य सरकारों व दोनों प्रकार की स्थानीय संस्थाओं (ग्रामीण तथा नगरीय) के मध्य वित्तीय संबंधों के विनियमन और संबंधित पक्षों पर सुझाव देने के लिए राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान कर दिया गया है। अब पंचायती राज संस्थाएं करारोपण इत्यादि के संदर्भ में राज्य वित्त आयोग की अनुशंसा ओं के अनुरूप राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार काम करती है। यह संस्थाएं जो भी नए क्षेत्र में आरोपित करना चाहती हैं, उसके लिए उन्हें राज्य वित्त आयोग के मार्गदर्शक ओं का ध्यान रखने के राज्य सरकार की पूर्व अनुमति लेनी होगी।

13.7 शब्दावली

स्वायत्तता- निर्णय लेने की स्वतंत्रता, करारोपण- कर लगाना

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 73वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम, **2.** करों से प्राप्त आय, सरकारी अनुदान और ऋण

13.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, अशोक, 2019, भारत में स्थानीय प्रशासन; आर. बी. एस. ए. पब्लिशर पब्लिशर्स,जयपुर।
2. सिंह, एस.के., 2009, लोक वित्त के सिद्धांत तथा भारतीय लोक वित्त; साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
3. पंत,जे.सी., 2005. लोक अर्थशास्त्र; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
4. शर्मा, रविंद्र, 2010, भारत में स्थानीय प्रशासन; पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लेखी, आर.के., 2009, लोक वित्त; कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।
2. कटारिया, सुरेंद्र, 2009, भारतीय लोक प्रशासन; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में पंचायती राज संस्थाओं के उद्भव पर एक लेख लिखिए।
2. ग्राम पंचायतों के कार्य तथा वित्तीय प्रशासन पर एक निबंध लिखिए।
3. ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन तथा उनकी समस्या पर एक निबंध लिखिए।